"चौदहवीं पंद्रहवीं शताब्दी के हिन्दी साहित्य में चित्रित भारतीय स्त्रियों की दशा"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की डिग्री हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ0 हेरम्ब चतुर्वेदी

शोध कर्ता

अर्चना भटनागर

मध्य एवं आधुनिक इतिहास विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

2001

विषय - सूची

प्राक्कथन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी फिल उपाधि हेतु यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है, जिसका विषय है "चौदहवी-पन्द्रहवी शताब्दी के हिन्दी साहित्य मे चित्रित भारतीय स्त्रियो की दशा"।

उत्तर भारत मे चौदहवी – पन्द्रहवी शताब्दी भारत वर्ष मे तुर्की सल्तनत के सुदृढीकरण का काल था। अलाउद्दीन खिलजी के प्रशासनिक सिद्धान्तो और राजनीतिक परीक्षणो के चलते अनेक महत्वपूर्ण सामाजिक, आर्थिक, संस्थाओ का भी विकास हुआ था। इसी काल में राज्य के सुद्धणीकरण के साथ उसके साम्राज्य मे परिणत होने पर कार्य भी पूर्ण हुआ था। जब दक्षिण और ध्रुव दक्षिण के राज्य दिल्ली सल्तनत के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अंग बन गये थे। इसी काल में राज्य सत्ता से पूर्णतया विमुख सूफी सतो व भक्त कवियो द्वारा आय जनता का मार्ग प्रशस्त किया गया । जहाँ एक तरफ दरबारी इतिहासकार राज्य से आश्रय अथवा धन लोलुपता मे राज्य केन्द्रित अथवा राजनीतिक केन्द्रित इतिहास लिख रहे थे, वही आम जन के इतिहास की रचना ये ही सन्त आदि कर रहे थे।

अत: उपरोक्त कारणो के चलते इस समाज का अध्ययन अपने आप मे महत्वपूर्ण हो जाता है। किन्तु किसी भी समाज के अध्ययन के लिए स्त्रियो की स्थिति का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है। क्योकि उसकी स्थिति मे परिवर्तन सामाजिक व सास्कृतिक परिवर्तनों का वास्तविक द्योतक होता है।

साहित्य और समाज का सबध सदैव अनन्य और अपूर्व माना जाता है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है, इस उक्ति के साथ साहित्य और समाज के एक दूसरे का प्रतिरूप और आदर्श माना जाता है। सार रूप मे साहित्य किसी भी देश,

काल, युग के विशिष्ट जनो एव सामान्य जनो दोनो के विचारो, व्यवहारो, कार्यो और सुख दु:ख की अनुभूतियो का चित्रण करता है, अत: साहित्य को समकालीन समाज की जीवन धारा चेतना, आदर्श, मूल्य, व्यवहार और प्रगति अवनति का एक सामान्य एव बेबाक लेखा-जोखा माना जा सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे चौदहवी - पन्द्रहवी शताब्दी के हिन्दी साहित्य मे चित्रित भारतीय स्त्रियो की स्थिति को साहित्यिक साक्ष्यो से खोजने एव उसके रूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

यह मेरा पुनीत कर्तव्य है कि मै उन सभी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ, जिन्होने मेरे इस शोध कार्य की पूर्ति मे अमूल्य सहयोग दिया। इनमे अग्रणी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्वान ''डा0 हेरम्ब चतुर्वेदी'' है जिनसे मुझे इस शोध प्रबन्ध के विषय की प्रेरणा मिली तथा नितान्त व्यस्तता मे भी उनकी मुझ पर अनुकम्पा रही।

उनके योग्य मार्ग दर्शन तथा बहुमूल्य निर्देशन के लिए मै उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उनका स्नेह एव आर्शीवाद मुझे सदा ही प्राप्त होता रहा है । श्रीमती आभा चतुर्वेदी पत्नी श्री हेरम्ब चमुर्वेदी की भी मै आभारी हूँ जिनका असीम स्नेह व आर्शीवाद मुझे मिलता रहा है, तथा उन्होने मुझे घर का एक सदस्य मानकर मेरा समय-समय पर उत्साह वर्धन किया।

अध्ययन काल के सामाजिक जीवन का वर्णन करने वाले दस्तावेजो, साक्ष्यो और ग्रन्थो को प्राप्त करने, अध्ययन करने और सार तत्व निकालने के लिए सदा से भारत में प्रसिद्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से अभूतपूर्व सहायता मिली, साथ ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन, ईश्वरी प्रसाद शोध संस्थान, इलाहाबाद हिन्दुस्तानी एकेडेमी, राजकीय पुस्तकालय, इलाहाबाद आदि से सबधित सामग्री की कार्यपूर्ति और प्रस्तुतीकरण हेतु इन पुस्तकालयो के प्रति मै नि:सन्देह आभारी हूँ।

यह भी मेरे लिए एक गौरवपूर्ण एव असीम प्रसन्नता की बात है कि मै अपनी विभागाध्यक्षा (डा0 रेखा जोशी) तथा अन्य अध्यापक, अध्यापिकाओ के प्रति भी आभार प्रदर्शित करूँ, जिन्होने समय-समय पर शोध कार्य के लिए प्रोत्साहित किया एव इसकी सम्पूर्णता के लिए आर्शीवचन प्रदान किया।

इसके साथ ही मै अपने श्वसुर श्री चन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव, सास श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव एव अपने पति श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव का हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके सहयोग एव प्रोत्साहन से यह शोध कार्य सरलता से पूर्ण हो सका।

मुझे अपनी माता श्रीमती चन्दा भटनागर एव पिता श्री आदर्श कुमार भटनागर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है, जिनकी प्रेरणा एव स्नेहाशीष से प्रस्तुत शोध कार्य सम्पन्न हो सका।

इसके साथ ही मै अपने भाइयो श्री अखिलेश कुमार भटनागर एव विशाल कुमार भटनागर, एव बहन कु0 वन्दना भटनागर के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ ।

परिवार के सभी सदस्यो के प्रति आभार व्यक्त करना दिखावा सा प्रतीत होता है किन्तु पग-पग पर दिये गये सहयोग एव सहपरामर्शो को भुलाया नही जा सकता है।

अन्त मे मै श्रृद्धा तथा उत्साह के अवलम्बन में पूज्य माँ को अपना यह शोध कार्य समर्पित करती हूँ ।

अर्चना भटनागर

अर्चना भटनागर

अध्याय - प्रथम

पृष्ठभूमि : ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं सामाजिक

चौदहवी शताब्दी भारतीय इतिहास मे महत्वपूर्ण एव अनेक मायनो मे दिलचस्प अध्याय है। यह भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण सक्रमण एव सधिकाल है। इलबारी तुर्कों की राज्य स्थापना के बाद अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316 ई0) द्वारा राजनीतिक दृष्टिकोणो मे तथा प्रशासनिक तत्र मे अनेक मौलिक सुधार किये गये । ये परिवर्तन इतने आधार भूत थे कि इन्ही के परिणाम स्वरूप खिलजी द्वारा सत्ता ग्रहण को खलजी क्रान्ति की सज्ञा दी जाती है इस काल मे अलाद्दीन खिलजी ने न केवल विद्रोहो के स्थाई उन्मूलन का प्रयास किया अपितु बाजार नियत्रण के विशेष सदर्भ मे उसके वित्तीय सुधार, सैन्य सुधार प्रशासनिक परिवर्तन तथा साम्राज्य प्रसार एव उसके सुदृढीकरण की प्रक्रिया पूरे काल मे साथ-साथ चलते रहे । अत· यह काल अपने आप में महत्व पूर्ण है। इसके विषय मे हम विस्तार से अध्ययन करेगे। 1320 ई0 मे खलजी वश के पश्चात ग्यासुद्दीन तुगलक ने तुगलक वश की नीव डाली। जिसका एक शासक मुहम्मद बिन तुगलक अपनी विद्वता व ज्ञान के लिए प्रसिद्ध था। उसने चार महत्वाकाक्षी योजनाए बनाई किन्तु अधिकारियो के अव्यवहारिक क्रियान्वयन के कारण इतिहास कारो के मध्य वह एक विवादास्पद व्यक्तित्व के रूप मे चित्रित हुआ। फिरोज तुगलक (1351—1388 ई0) अपनी सार्वजनिक निर्माण कार्य तथा उदारवादी सुधारो के लिए प्रसिद्ध है, जिन्होने अन्तत: उसके तथा उसके वश के पतन की नीव रखी। इस वश के आतरिक ढहते ढाँचे को तैमूर के वाह्य

आक्रमण ने पूरी तरह से धूल धूसरित कर दिया। उनके परवर्ती तुगलक तथा सैय्यद वश के उत्तराधिकारी ऐतिहासिक रूप से महत्वहीन है । 15वी शताब्दी का उत्तरार्ध बहलोल लोदी के शासन की स्थापना के साथ 1451 ई0 से राजनैतिक स्थायित्व का काल पुनः स्थापित होता है । इसी वश के अतिम शासक इब्राहीम लोदी 1517–1526 ई0 को परास्त करके बाबर 16वी शताब्दी मे मुगल काल की नीव रखता है।

अलाउद्दीन, जलालुद्दीन खिलजी का भतीजा तथा दामाद था, वह अपने आप मे एक उद्योगी तथा उत्साही सैनिक था। अलाउद्दीन बहुत ही महत्वाकाक्षी था। 1290 ई0 मे अलाउद्दीन को अपने चाचा के सिहासन पर बैठने के उपरान्त अमीर-ए-तुजुक का पद मिला। कुछ समय बाद इलाहाबाद के निकट कडा मानिकपुर का इक्तादार नियुक्त कर दिया गया था। खिलजी सैनिक जो शक्ति तथा धन प्राप्त करने की महत्वाकाक्षा रखते थे, वह भी अलाउद्दीन को अनुकूल नेता मानते थे और उनको विश्वास था कि दिल्ली के सिहासन को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है।

1292 ई0 मे अलाउद्दीन ने मालवा पर आक्रमण किया और भिलसा के नगर को जीतकर अपार धन एव बहुत सी बहुमूल्य वस्तुए लूट कर लाया। लूट का एक भाग उसने सुल्तान के पास भिजवा दिया, जिससे प्रसन्न होकर जलालुद्दीन ने उसे अवध का भी इक्तादार बना दिया, साथ ही उसे राज्य का सैन्य मत्री अथवा 'आरिज -ए-मुमालिक' बनाया गया। इस पद का लाभ उठाते हुए उसने बडी सख्या मे नये सैनिको की भर्ती की। मालवा के आक्रमण के दौरान उसे दक्षिण के देवगिरी राज्य की समृद्धि की सूचना मिली थी अतः वह इस राज्य को

यदि नये शासक इब्राहीम को उचित समर्थन प्राप्त होता तो वह अलाउद्दीन का कट्टर प्रतिद्वदी होता। इसके अलावा शक्तिशाली हिन्दू सामन्त भी जिन्हे तुर्की प्रभुत्व का जुआ असहनीय हो रहा था, वे इससे मुक्त होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उधर मगोल दिल्ली सल्तनत के उत्तर-पश्चिम प्रवेश द्वार पर प्रहार कर रहे थे। इसलिए परिस्थिति भयकर दिखाई पड रही थी और यदि अलाउद्दीन कम साहस वाला व्यक्ति होता तो उसका दिल टूट जाता। अलाउद्दीन ने अनेक कठिनाइयो के बावजूद दिल्ली पर कब्जा करने की जुगत मे हमेशा लगा रहा, जब अलाउद्दीन को यह खबर मिली की जलालुद्दीन के वंशजो व समर्थको में फूट पड गयी तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और दिल्ली की ओर अपनी सेना के साथ कूच कर गया, मार्ग मे दक्खिन का धन जनता मे लुटाता चला गया।

3 अक्टूबर 1296 ई0 को अलाउद्दीन ने बगैर इब्राहीम से युद्ध किये विजय प्राप्त की चूकि इब्राहीम के अधिकतर सैनिक अलाउद्दीन से जा मिले थे। अलाउद्दीन ने साठ हजार अश्वारोही एवं साठ हजार पैदल सैनिको के साथ बलबन के लाल किले पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार वह दिल्ली के तख्त पर आसीन हुआ। अलाउद्दीन ने तख्त पर बैठते ही सबसे पहला कार्य जनता को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया जिससे उसके सभी अपराधो को जनता भूल जाए इसके लिए अलाउद्दीन ने जो धन लूटा था, उसको जनता मे पानी की तरह बहाया। यह नियम दिल्ली मे कुछ रोज तक चलता रहा। इस प्रकार अलाउद्दीन के विश्वासघातो को भूलकर जनता उसकी उदारता की प्रशसा करने लगी। सभी महत्वपूर्ण पदाधिकारी उसके पक्ष मे हो गये, इन अमीरो और पदाधिकारियो की सहायता से तथा चतुर कूटनीति द्वारा अपने दुश्मनो एवं समर्थको को अपने मार्ग से हटाकर स्वय अलाउद्दीन सिहासन पर आसीन हुआ।

ऐसा कहा जाता है कि जो अपनों का सगा नही होता को दूसरो का सगा कभी नही हो सकता, इस बात को अलाउद्दीन ने अपने दिमाग मे रखा था । सिहासन पर बैठते ही उसने सबसे पहला काम उन अमीरो और पदाधिकारियो को जो इब्राहिम को छोड कर आये वे कुछ को तो मृत्यु दण्ड की सजा दी कुछ को अधा करवा दिया, और जो शेष बचे उनको कारागार मे डाल दिया । इन अमीरो और पदाधिकारियो पुत्र एव स्त्रियो की सम्पत्ति को अपने कब्जे मे करने के उपरान्त उन्हे दर दर की ठोकर खाने के लिए विवश कर दिया । अलाउद्दीन का यह सिद्धान्त था कि सबसे पहले विश्वासघातियो से लाभ उठाना चाहिए जो कि स्वयं के हित मे हो उसके उपरान्त जब अपना काम निकल जाए तो उन्हे दण्ड देना चाहिए ।

अलाउद्दीन के शासन काल के प्रारम्भिक दिनो मे विद्रोह का कारण अशान्ति थी। प्रथम विद्रोह मगोलो का हुआ। जोकि भारत मे जलालुद्दीन फिरोज के समय से थे, वो लोग नये मुसलमान कहे जाते थे। 1299 ई0 मे जब गुजरात के आक्रमण की सफलता के बाद सेना लौट रही थी तो रास्ते मे लूट के सामानो के बटवारे से असन्तुष्ट होकर उन्होने अलाउद्दीन के एक भतीजे एव नसरत खॉं के भाई को मौत के घाट उतार दिया। अलाउददीन ने जब यह सुना तो उसने विद्रोहियो के दिल्ली मे रह रहे परिवार की स्त्रियो तथा बच्चो का कत्ल करवा कर अपने भाई एव पुत्र की मौत का बदला लिया।

दूसरा विद्रोह अकतखखॉं ने किया था जो सुल्तान के भाई का बेटा था। सुल्तान जब रणथम्भौर जा रहा था, तो रास्ते मे तिलापट के निकट शिकार के लिए रूका जब वह शिकार के लिए रूका तो एक रोज वह बिल्कुल अकेला था इसका

फायदा उठाकर अकतख खॉं ने अपने सैनिकों के सहयोग से सुल्तान पर आक्रमण कर दिया जिस वक्त आक्रमण हुआ सुल्तान के अगरक्षक मौके पर पहुच गये और वीरतापूर्वक उन्होने दुश्मनो का सामना किया, किन्तु अकतख खॉं ने यह समझा कि सुल्तान की मौत हो गयी है, और इसकी घोषणा लौटकर सेना मे कर दी। सुल्तान के निवास पर कब्जा करने की नियत से अकतख खॉं ने अपने सैनिको के साथ आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया, किन्तु सुल्तान बच गया था। सुल्तान ने अपने सैनिको के साथ मिलकर अकतख खॉं और उसके साथियो को मौत के घाट उतार दिया। इसके बाद तीसरा विद्रोह इससे भी अधिक भयकर हुआ, जब सुल्तान रणथम्भौर का घेरा डाले हुए था उस समय उसके दो भानजो 'अमीर उमर' और 'मगू खॉं' ने बदायूँ तथा अवध मे विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया किन्तु वफादार सूबेदारो ने उन्हे पराजित करके बदी बना लिया । चौथा विद्रोह सुल्तान की राजधानी दिल्ली मे ही हुआ, जिसमें 'हाजी मौला' नामक एक विद्रोही अफसर ने एक विरोधी फौज बनाकर दिल्ली के 'तमार्दी' कोतवाल को मार डाला और अपनी सफलता का फायदा उठाने के उद्देश्य से उसने सीरी के कोतवाल को मारने की कोशिश की लेकिन इसमे उसे सफलता नही मिली, उसने अपने उम्मीदवार को दिल्ली के सिहासन पर बैठाकर राज्य की शक्ति हासिल करने की कोशिश की। किन्तु मलिक हमीदुद्दीन नामक एक स्वामिभक्त अफसर ने विद्रोही को मार गिराया । यह विद्रोह एक के बाद एक कुछ ही प्रारम्भिक वर्षो मे हुए। इसलिए सुल्तान को लगने लगा कि शासन व्यवस्था मे कुछ दोष अवश्य है।

सुल्तान ने इन विद्रोहो के कारणो को जानने के लिए अपने मित्रो एव सलाहकारो के साथ बैठकर ''मजलिस-ए-खलबत'' या ''मजलिस-ए-खास'' मत्रणा की । इस मत्रणा से यह निष्कर्ष निकला की शासन व्यवस्था मे कुछ मौलिक

कमियाँ है। विद्रोह के निम्नवत कारण थे — (1) सुल्तान के जो गुप्तचर थे वह अयोग्य थे जिससे सुलतान को अपने पदाधिकारियो एव जनता के बारे मे सही जानकारी नही हो पाती थी (2) मद्यपान सभी एक साथ बैठकर किया करते थे जिससे आपस मे एक दूसरे के प्रति भाई चारे की भावना उत्पन्न हो जाती थी, जिससे विद्रोह तथा षडयत्र के लिए बल मिलता था, (3) सामाजिक मेल-मिलाप, आपस मे विवाह सबध, अमीरो का एक साथ उठना बैठना, इससे सुल्तान के विरूद्ध सभी सगठित हुए, (4) कुछ गणमान्य लोगों के अधिकार मे बहुत ज्यादा धन होने के कारण उन्हें सोचने एव विद्रोह करने का समय मिलता था ।

प्रशासनिक उपाय :

जैसे ही अलाउद्दीन की स्थिति मजबूत हो गई उसके अन्दर विश्वास भी मजबूत होता गया। अलाउद्दीन चाहता था कि जो कानून हो वह उसका स्वय का रहे । अलाउद्दीन का यह भी सिद्धान्त था कि ''राजा का कोई संबधी नही होता राज्य में जितने लोग रहते है वो सभी उसके सेवक तथा प्रजा है,'' अलाउद्दीन ने जिस वक्त नीति निर्धारित करने की योजना बनाई उस वक्त उसने किसी भी व्यक्ति या विशेष दल से प्रभावित हो कर नही किया।

तेरहवी शताब्दी तक सुल्तान दो वर्गो के प्रभाव मे थे, एक वर्ग अमीर और दूसरा वर्ग उलेमा का था। सुल्तान यह कभी नही चाहता था, कि पुराने अमीर फिर से राज्य मे अपनी शक्ति की स्थापना करे । वह सभी को अपना सेवक बनाकर रखना चाहता था। सुल्तान ने उन लोगो को इतना आतकित कर दिया था कि किसी भी दरबारी मे इतना साहस न था, कि वह सुलतान को कोई राय दे सके, या जनता के लिए किसी प्रकार की रियायत के लिए कह सके। सिर्फ एक

ही व्यक्ति था जो कि स्वय सुल्तान का दोस्त तथा दिल्ली का कोतवाल था, जिसका नाम 'अला-उल-मुल्क' था जो सुल्तान को राय देने का साहस कर सकता था।

अलाउद्दीन ने यह भी कहा कि "मै यह बिल्कुल नही जानता कि कानून की दृष्टि मे क्या उचित है और क्या अनुचित, मै अपने राज्य की भलाई के लिए जो उचित समझूँगा उसी कार्य को करने की आज्ञा देता हूँ "। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अलाउद्दीन राज्य का पहला सुल्तान था जिसने कि धर्म पर राज्य का नियन्त्रण स्थापित किया। अलाउद्दीन ने खलीफा की सत्ता को मान्यता दी, उसने "यास्मीन -उल-खिलाफत-नासिरी-अमीर-उल-मुमिनिन" की उपाधि धारण की। जबकि अलाउद्दीन शिक्षित नही था, फिर भी उसमे व्यवहारिक ज्ञान की कमी नही थी। वह राज्य की राजनीति मे धर्मान्ध उलेमा की सलाह के अनुकरण को अव्यवहारिक समझता था, क्योकि अन्तिम न्याय के दिन उसका क्या होगा उसे इस बात की चिन्ता नही थी। उसने काजी 'मुगीसुद्दीन' से कहा "यद्यपि मुझे कोई ज्ञान नही है और न मैने कोई पुस्तक पढी है फिर भी मै जन्म से मुसलमान हूँ और मेरे पूर्वज कई पीढियो से मुसलमान है। विद्रोह रोकने के लिए, जिनमे हजारो व्यक्तियो की मृत्यु होती है, मै जनता को ऐसे आदेश देता हूँ जो राज्य और उनके हित के लिए उचित होते है किन्तु आजकल के लोग बडे घृष्ट और सुनी-अनसुनी करने वाले होते है और मेरे आदेशो का पालन भली भाँति नही करते । अत मेरे लिए आवश्यक है कि मै उन्हे कठोर दण्ड दूँ ताकि वे   आज्ञाकारी बने । मै यह नही जानता कि 'शरीयत' मे उसकी अनुमति है या नही"।

समकालीन इतिहासकार सुल्तान को   ईश्वर का 'नायब' या 'खलीफा'

मानते थे । उनका मत था कि ''सुल्तान को परिस्थिति के अनुसार कठोर अथवा दयालु होना चाहिए''। लोगो मे न्याय का प्रचार करने के लिए शक्ति और सत्ता सपन्न शासक की आवश्यकता है, और शासक के ऊपर किसी का अधिपत्य नही होना चाहिए । उसने योग्यता के आधार पर पदो का वितरण किया। उसने किसी धर्मयुद्ध की कल्पना भी नही की, और धार्मिक उद्देश्यो पर बल न देकर समयानुकूल और व्यावहारिक शासन व्यवस्था की विवेक पूर्ण ढग से स्थापना की ।

बाजार नियन्त्रण के विशेष संदर्भ में राजत्व नीति :

अलाउद्दीन के पास बहुत ही विशाल सेना थी। अलाउद्दीन को राजद्रोह का दमन ही नहीबल्कि विद्रोह का उन्मूलन भी करना था एव मगोलो से युद्ध भी होता था जो कि हर वर्ष राज्य की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर धावा बोला करते थे। अलाउद्दीन की एक इच्छा यह भी थी कि वह सपूर्ण भारत को विजय करना चाहता था।

गल्ला मण्डी मे भाव की स्थिरता अलाउद्दीन की यह महत्वपूर्ण उपलब्धि थी जब तक वह जीवित रहा इन मूल्यों मे तनिक भी वृद्धि नही हुई। कीमते कम या नीचे कर दी गयी। कीमते निश्चित करके सुल्तान ने अनाज का बाजार और सरकारी अनाज विक्रयालय स्थापित किये।

सरकार सामन्तो एव 'खालसा भूमि' से राजस्व उपज के रूप मे वसूल करती थी इस प्रकार अलाउद्दीन ने अन्य कर वसूल करके अपनी स्थिति को मजबूत किया । किसी भी व्यक्ति को किसानों से सीधे अनाज खरीदने की आज्ञा नही थी। दिल्ली के सभी व्यापारियो को 'शाहना-ए-मण्डी' नामक पदाधिकारी

के दफ्तर मे अपना नाम पजीकरण कराना पडता था। राज्य की तरफ से यह सुविधा थी कि जिन व्यापारियो के पास पर्याप्त धन नही होता था उन्हे राज्य की ओर से अग्रिम धन दिया जाता था। इन व्यापारियो को निश्चित दर पर सामान बेचने की आज्ञा थी। इस नियम को किसी भी व्यापारी को तोडने की आज्ञा न थी। जो व्यापारी जनता को निश्चित मूल्यो पर सामान मुहैय्या नही कराता था और यदि सामानो को कम तौलता था तो उस व्यापारी के शरीर का उतना ही मास काट दिया जाता था। राज्य मे सट्टेबाजी दलाली और चोर बाजारी को खत्म कर दिया गया था तथा द्वाबा के पदाधिकारियो से यह लिखित मे गारटी ली जाती थी कि कोई भी व्यापारी अनाज को चोरी से गोदामो मे जमा नही करेगा। किसी भी व्यापारी को अनाज एव वस्तुओ को खरीदने से पहले प्रमुख व्यक्ति अमीरो एवं पदाधिकारियो को 'शाह-ने-मण्डी के दफ्तर से परमिट लेना पडता था। इस नियम को राज्य मे कठोरता से लागू किया गया था। अगर इन नियमो का कोई उल्लघन करता था तो उसे कठोर से कठोर दण्ड दिया जाता था। इन सभी सुधारो के परिणाम स्वरूप सभी वस्तुए बहुत ही सस्ती हो गयी थीं। यहॉ तक कि राज्य मे घोडे, पशुओ, नौकर-चाकर एव गुलामो का मूल्य भी बहुत कम हो गया था। अलाउद्दीन के इस कार्य की लगभग सभी समकालीन इतिहासकारो ने भूरि भूरि प्रशसा की है। अलाउद्दीन के इस नियम को पूरे साम्राज्य मे लागू किया गया था या सिर्फ दिल्ली तक ही यह नियम सीमित थे । इस विषय मे लेखको मे आपस मे मतैक्य नही है। फिर भी अलाउद्दीन की प्रशसा करनी होगी कि उसने इस कठिन समस्या को हल करने की कोशिश की। इन सभी सुधारो से यह प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन का उद्देश्य बिल्कुल साफ था। उसे सिर्फ इतने से ही सतोष नही था, कि, बाजार नियत्रण तथा रहन-सहन का खर्च कम करने से सारी समस्याऐ हल होगी।

सुल्तान यह भी चाहता था, कि राजस्व मे आर्थिक वृद्धि भी हो और इसके लिए सुल्तान ने अपने राजस्व विभाग के सुधार की ओर ध्यान दिया।

इसके अतिरिक्त गैर मुसलमानो को 'जजिया' देना पडता था। इसके लिए सुल्तान ने भूमि की नाप करवायी और वास्तविक उपज के आधार पर भू-राजस्व निर्धारित किया।

अलाउद्दीन ने सर्वप्रथम उन सभी भूमि अनुदानो को वापस ले लिया जो अमीर वर्ग, शासकीय कर्मचारियो, विद्वानों और धर्मशास्त्रियो के पास राज्य की ओर से दी गई भेट, अनुदान या पुरस्कार के रूप मे थी। ये छोटी अक्ताओं के समान थे, अर्थात विभिन्न व्यक्तियो को दिये गये ऐसे भूखण्ड थे, जिनका राजस्व उनके वेतन या पुरस्कार के समान माना जाता था। अलाउद्दीन ने एक अन्य अध्यादेश द्वारा उपज का पचास प्रतिशत भूमिकर (खराज) के रूप मे निश्चित किया। अलाउद्दीन पहला ऐसा मुस्लिम शासक था, जिसने भूमि की वास्तविक आय के आधार पर राजस्व निश्चित किया। इस पद्धति के अन्तर्गत सभी की भूमि पर पचास प्रतिशत की स्वीकृति दर से लगान वसूल किया जाता था। इसके अतिरिक्त गैर मुलसमानो से लिया जाने वाला कर था।

अलाउद्दीन ने सबसे पहले भूमि का बन्दोबस्त करने के पहले पटवारियो और अभिलेखो से पता लगाया कि राज्य के गॉव मे कितनी भूमि खेती के लिए उपयुक्त है और उस पर कितना लगान उचित होगा इसके लिए अलाउद्दीन ने योग्य एव ईमानदार राजस्व पदाधिकारियों की नियुक्ति की। इन सभी सुधारो से परिणाम यह हुआ कि राज्य की आय मे पर्याप्त वृद्धि हुई। इन सभी का बोझ व्यापारियो भूमिकरो, किसानो और जनता के सभी वर्गो पर पडा।

सुल्तान सैनिको को वेतन के बदले जागीर देने के पक्ष मे बिलकुल नही था फिर भी सुलतान के समय मे अनेक व्यक्ति इक्तो का उपयोग करते थे इनस प्रथा को एकदम से खत्म करना या नष्ट करना सम्भव नही था। विशेष कर कि उन राज्यो मे जो नवविजित थे।

सेना का गठन -

अलाउद्दीन जैसे महत्वाकाक्षी साम्राज्यवादी सुल्तान के लिए एक शक्तिशाली सेना को रखना अनिवार्य था। क्योकि अपने उपयुक्त नियमो को लागू करना राजस्व सबधी कार्या को कार्यान्वित करना, तथा अपनी विजय की महत्वाकाक्षा सतुष्ट करने के लिए एव देश को मगोलो के हमेशा आक्रमण से बचाने के लिए एक सुदृढ़ शक्तिशाली सेना का गठन करना आवश्यक था। इन सभी उद्देश्यो को ध्यान मे रखते हुए अलाउद्दीन नें अपनी सैन्य सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया । अलाउद्दीन पहला दिल्ली का सुल्तान था जिसने स्थाई सेना की नीव डाली, जो हमेशा राजधानी की सेवा के लिए तैयार रहती थी। फौज मे सेना की भर्ती 'सेना मत्री' द्वारा की जाती थी। सेना को राजकीय कोष से नकद वेतन मिलता था। एक सैनिक का वेतन दो सौ चौतीस टका प्रति वर्ष था और जो सैनिक अतिरिक्त घोडा रखते थे उन्हे 78 टका अधिक मिलता था । सेना को युद्ध की सारी सामग्री राज्य के खर्चे पर मिलती थी। अलाउद्दीन ने भ्रष्टाचार को रोकने के लिए सेना मत्री के रजिस्टर मे प्रत्येक सैनिको का ''हुलिया'' (आकृति का विवरण) लिखने की परम्परा जारी किया चूँकि सैनिक लोग अच्छे घोडो की जगह खराब घोडे रखकर राज्य को धोखा दिया करते थे इसके लिए अलाउद्दीन ने घोडो के शरीर पर निशान लगाने की प्रथा शुरू किया इसे 'दाग प्रथा' के नाम से जाना

जाता है। यह नियम काफी पुराने थे। भारत तथा और भी देशो मे इस प्रथा का प्रचलन था। इतिहासकार 'फरिश्ता' के अनुसार सेना मे चार लाख पचहत्तर हजार अश्वारोही थे"। किसी भी लेखक ने पैदल सेना की सख्या का वर्णन नही किया है फिर भी यह माना जाता है कि अश्वारोही सैनिको से कही अधिक पैदल सेना रही होगी। अलाउद्दीन सेना के सगठन साज सज्जा एव अनुशासन की ओर खुद बहुत सचेत रहता था।

उत्तर भारत की विजय -

अलाउद्दीन की सैन्य विजयो को हम दो भागो मे बॉट सकते है । अलाउद्दीन का उत्तर पर विजय अभियान, गुजरात, रणथम्भौर, चित्तौड, मालवा, मारवाड, एव जालौर मुख्य है। 1299 ई0 मे अलाउद्दीन ने एक शक्तिशाली सेना को 'उलूग खॉं ' एव 'नसरत खॉं' की देख रेख मे गुजरात पर विजय प्राप्त करने भेजा इस राज्य पर कई बार तुर्की सेनाओं ने आक्रमण किया था परन्तु एक भी विजय के लक्ष्य पर नही पहुच सकी उ्स समय 'बघेल राजा कर्ण' गुजरात पर शासन किया करता था। अलाउद्दीन की सेना मे अन्हिलवाडा को चारो ओर से घेर कर उस पर कब्जा कर लिया। कर्ण की रानी कमलादेवी आक्रमणकारियो के अधिकार मे आ गई थी। परन्तु राजा कर्ण अपनी बेटी देवल देवी को लेकर वहा से भाग निकला और जाकर के देवगिरी के राजा रामचन्द्र के यहा शरण ले ली, इस प्रकार से आक्रमणकारी सेनाओ ने पूरे गुजरात राज्य पर अपना कब्जा कर लिया । युद्ध मे जो माल लूटा गया था उसके बटवारे को लेकर के जो नये मुसलमान (भारत मे बसे हुए मगोलो) थे, ने विद्रोह कर दिया। विजेताओ के विजय की

खुशी मे इन नये मुसलमानो ने विध्न डालने की कोशिश की, जिसको विजयी सेनाओ ने क्रूरता पूर्वक दमन कर दिया।

अलाउद्दीन ने उत्तर की विजय को आगे बढाते हुए अपना दूसरा आक्रमण रणथम्भौर के किले पर किया । रणथम्भौर जो कि राजस्थान मे मुसलमानो की सैनिक चौकी थी, परन्तु अलाउद्दीन के आक्रमण के समय वहाँ का राजा पृथ्वीराज चौहान द्वितीय का वशज 'हम्मीर देव' राज्य किया करता था। अलाउद्दीन का रणथम्भौर पर आक्रमण करने का दो कारण था पहला कारण ऐसे किलो को जीतना जो कि दिल्ली का अंग रह चुके थे। दूसरा कारण हम्मीर देव ने कई विद्रोही मुसलमानो को अपने यहाँ शरण दिया था। इस कारण अलाउद्दीन ने उसको दण्ड देना उचित समझा । जिस वक्त उलूग खाँ एव नुसरत खाँ को हम्मीर देव के विरूद्ध आक्रमण पर भेजा गया था उन लोगों ने झैनपर अधिकार करके रणथम्भोर को चारो ओर से घेर लिया था। परन्तु इस युद्ध मे नुसरत खाँ मारा गया और अलाउद्दीन के सैनिक पराजित हुए एक बार पुनः राजपूतो ने रणथम्भौर पर अपनी विजय प्राप्त की। इन सबको देखते हुए अलाउद्दीन ने फैसला किया कि वह रणथम्भौर के आक्रमण पर जाएगा अलाउद्दीन ने पूरे एक वर्ष तक रणथम्भौर को चारो तरफ से घेरे रखा, किन्तु विजय की कोई किरण नजर नही आ रही थी इसलिए अलाउद्दीन ने छल का प्रयोग किया । इस प्रकार 'हम्मीर देव' के प्रधान मत्री रनमल को अपनी ओर मिलाया। रनमल की सहायता से जुलाई 1301 ई0 को घेरे को सफलता पूर्वक खत्म करते हुए किले की दीवारो पर चढ गये एव हम्मीर देव तथा उसके परिवार बच्चे एव बचे हुए सैनिको को अपनी तलवार से मौत के घाट उतार दिया । अलाउद्दीन के हुकुम से हीरनमल को भी मौत की सजा दिया चूँकि रनमल ने स्वयं अपने स्वामी को धोखा दिया था इसलिए ये आदमी

विश्वास के काबिल नही था, इसलिए अलाउद्दीन 'रणथम्भौर' पर विजय प्राप्त करके दिल्ली लौटा ।

1303 ई0 के शुरूआत मे अलाउद्दीन ने चित्तौड को जीतने का मन बना लिया । 28 जनवरी को दिल्ली से कूच कर के चित्तौड को घेर लिया। अलाउद्दीन पूरे भारत पर राज्य करने की योजना बना रहा था। लेकिन मेवाड के स्वतत्र रहते हुए इस योजना का पूरा होना नामुमकिन था। इसलिए चित्तौड पर आक्रमण करने का यह पर्याप्त कारण था। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ के किले को घेरने के उपरान्त चित्तौड नामक पहाड़ी पर अपना आसन जमा लिया फिर भी वह किले को अपने कब्जे मे नही कर सका यह घेराव लगभग पाच माह तक चलता रहा लेकिन राजपूतो की बहादुरी की प्रशसा करनी होगी कि उन्होने शत्रुओ को अपने किले पर कब्जा नही करने दिया राणा रतन सिह ने अलाउद्दीन की इतनी बलशाली सेना के आगे युद्ध करना उचित नही समझा। अत मे राणा रतन सिंह ने 26 अगस्त 1303 ई0 को हथियार डाल दिया, लेकिन राजपूतो की स्त्रियो ने अपने सम्मान की रक्षा के लिए भीषण जौहर किया। अलाउद्दीन विजयी हुआ और विजय के उन्माद में उसने राजपूतो के नरसहार की आज्ञा दे दी। अमीर खुसरो जिसने कि यह अपनी आंखो के सामने होता हुआ देखा। उसने लिखा है कि " एक रोज मे 30 हजार राजपूत मारे गये। अलाउद्दीन चित्तौड पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त चित्तौड का नाम बदल कर खिजराबाद रख दिया और अपने पुत्र को वहा का शासक बनाकर दिल्ली लौट आया राजपूतो ने नये शासक को बहुत कष्ट पहुचाया, इसलिए 1311 ई0 मे अलाउद्दीन का पुत्र खिज्र खॉं जो चित्तौड का शासक था अपने पद से स्वय हट गया। इस प्रकार अलाउद्दीन ने अपना विजय अभियान प्रारम्भ रखते हुए 1305 ई0 मे मालवा के प्रान्त जो कि राजस्थान से लगा हुआ है।

जिसका अधिकाधिक भाग दिल्ली सलतनत मे समाहित हो चुका था उसके जीतने के उद्देश्य से 'आइन-उल-मुल्क मुलतानी' को जालौर तथा उज्जैन पर अक्रमण करने के लिए 9 दिसम्बर 1305 ई0 को राजा हरनद के विरूद्ध भेज दिया। इस युद्ध मे राजा हर नन्द पराजित हुए। इस विजय के उपरान्त उज्जैन चन्देरी, माडू, धार पर दिल्ली सेना का कब्जा हो गया। इस प्रकार अलाउद्दीन ने मालवा पर विजय हासिल की।

अलाउद्दीन ने इसके बाद 1308 ई0 मे मारवाड़ पर कब्जा करने की योजना बनाई, क्योकि राजस्थान मे केवल वही एक प्रदेश था जिसने तुर्को की विजय को हमेशा पराजय मे बदला, सुल्तान की सेना ने राजस्थान के इस शक्ति शाली दुर्ग सिवाना को चारो तरफ से घेर लिया। यह घेराव काफी समय तक चलता रहा परन्तु अलाउद्दीन को सफलता की कोई किरण नजर नहीं आ रही थी। अलाउद्दीन का धैर्य टूट गया। अलाउद्दीन ने अपने आप पर काबू न रखते हुए तीव्रता से अपनी सेना का सचालन किया, इसका परिणाम यह हुआ कि मारवाड के राजा शीतल देव को मजबूर होकर अलाउद्दीन से सधि करनी पडी । राजा को अलाउद्दीन के सामने उपस्थित होने की आज्ञा दी गयी लेकिन उसके किले को उसी के अधिकार मे रहने दिया गया। परन्तु राजा के राज्य को छीन कर दिल्ली सल्तनत के अमीरो मे बॉंट दिया गया । अलाउद्दीन ने भी खलीफा की सत्ता को मान्यता दी। उसने 'यास्मिन-उल-खिलाफत नासिरी- अमीर-उल-मुमिनिन' की उपाधि धारण की।

अलाउद्दीन पहला ऐसा मुस्लिम शासक था जिसने भूमि की वास्तविक आय के आधार पर राजस्व निश्चित किया। बरनी मापन की पद्धति और उसके

उपकरणो के सम्बन्ध मे ज्यादा नही रहा। फिर भी वह बिस्वा के आधार पर राजस्व एकत्र करने की बात कहता है। इस पद्धति के अर्न्तगत सभी की भूमि पर पचास प्रतिशत की स्वीकृति दर से लगान वसूल किया जाता था। इसके अतिरिक्त जजिया गैर मुस्लिमो से लिया जाने वाला कर था।

1305 ई0 मे राजा कनेरदेव ने अलाउद्दीन की अधीनता स्वीकार कर ली थी। मगर अपनी जुबान पर काबू न रख सका और हमेशा अपनी बहादुरी की चर्चा किया करता था इससे अलाउद्दीन का क्रोध भडक उठा। उसने राजा को नीचा दिखाने के लिए अपने महल की नौकरानी के नेतृत्व मे एक सेना भेजदी। उस स्त्री ने जालौर को चारो तरफ से घेर लिया। इन सब को देखते हुए कनेर देव पर काफी दबाव पडा। कनेरदेव आत्म समर्पण करने जा ही रहा था कि अचानक गुलेबी हिश्त की मृत्यु हो गयी। राजपूतों ने उसके पुत्र को पराजित किया और मौत के घाट उतार दिया। जब कमालुद्दीन गुर्ग के नेतृत्व में कुछ कुमुक जालौर पहुच गयी तो दिल्ली सल्तनत की सेना ने राजा को परास्त कर दिया। राजा को और उसके सबधियो को मौत के घाट उतार दिया गया। तथा जालौर को दिल्ली की सल्तनत मे समाहित कर लिया गया इस प्रकार अलाउद्दीन ने उत्तरी भारत पर पूर्ण विजय हासिल की।

दक्षिण नीति :

अलाउद्दीन ने उत्तर की सीमा को जीतने के उपरान्त दक्षिण राज्य को भी जीतने का सकल्प लिया। अलाउद्दीन दिल्ली का पहला सुलतान था जिसने विन्ध्याचल पर्वत को पार करके दक्षिण पर विजय प्राप्त करने की कोशिश की ।

भारत मे उस समय दक्षिण मे चार शाक्तिशाली राज्य थे :-

1 पश्चिम मे देवगिरी का यादव राज्य जिसमे महाराष्ट्र सम्मिलित था और देवगिरी (आधुनिक दौलताबाद) जिसकी राजधानी थी, राजा राम चन्द्र देव यहाँ के शासक थे ।

2 पूरब मे तैलगाना का काकतीय राज्य जिसकी राजधानी वारंगल थी, यहा के राजा प्रताप रूद्र देव द्वितीय थे।

3 कृष्णा नदी के दक्षिण मे स्थित होयसल राज्य जिसमें आधुनिक मैसूर तथा कुछ अन्य जिले सम्मिलित थे और जिसकी राजधानी द्वार समुद्र थी, होयसल में राजा बीर बल्लाल देव का राज्य था ।

4 सुदूर दक्षिण का पांड्य राज्य जिसकी राजधानी मदुरा थी। यहाँ पर राजसिहासन के लिए वीर पाड्य तथा सुन्दर पाड्य नामक दो भाइयो मे सघर्ष चल रहा था। सुन्दर पाड्य अपने भाई वीर पाड्य से पराजित होकर दिल्ली चला गया था और अलाउद्दीन से अपना सिहासन प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करने लगा ।

अलाउद्दीन सिर्फ यह चाहता था कि जो दक्षिण के राजा हैं वह उसकी अधीनता मे हो और हर वर्ष कर दे यदि इन शर्तो को दक्षिण के राजा स्वीकार करे तो अलाउद्दीन उनके राज्यो को उनके अधिकार मे छोड़ने को तैयार था। अलाउद्दीन का मकसद सिर्फ इतना था कि उस प्रदेश से अधिक से अधिक कर हासिल करे।

अलाउद्दीन ने 1294 ई0 में देवगिरी के यादव राज्य को अपने हक मे करके वहा के राजा को अपना सामन्त बना लिया और बहुत अधिक मात्रा मे उससे धन वसूल किया। अलाउद्दीन नसरत खाँ के भतीजे छज्जू को दक्षिण के दूसरे राज्य तैलगाना को लूटने के लिए भेज दिया। किन्तु वहा के राजा प्रताप रूद्र देव ने उसे पराजित किया ।

1294 ई0 मे एलिचपुर का प्रान्त राजा रामचन्द्र देव ने अलाउद्दीन को सौप दिया था। रामचन्द्र देव ने तीन साल से राजस्व नही दिया था इसलिए अलाउद्दीन ने उसका दमन करने के लिए 1306 ई0 - 1307 ई0 में एक सेना सल्तनत के नाइब मलिक काफूर के नेतृत्व मे भेजी थी। मलिक ने एलिचपुर पर कब्जा कर लिया और वहा का सूबेदार एक तुर्की को बना दिया और खुद देवगिरी पर आक्रमण किया। राम चन्द्र देव ने उसके सामने आत्मसमर्पण कर दिया और दिल्ली जाकर अलाउद्दीन के सामने बहुत सा धन भेट स्वरूप दिया। अलाउद्दीन ने राम चन्द्र देव को ' रायरायन' की उपाधि से नवाजा और उसके राज्य को उसी के अधिकार मे रहने दिया। इन सबके अलावा नौसारी का जिला अलाउद्दीन ने रामचन्द्र देव को व्यग्तिगत जागीर के तौर पर दिया ।

1303 ई0 मे अलाउद्दीन ने तैलगाना पर धावा बोला था किन्तु उस युद्ध मे वो असफल रहा। यह बात अलाउद्दीन के दिल मे हमेशा खटका करती थी और वह जल्दी से जल्दी इस असफलता का जो कलक अलाउद्दीन पर लगा था उसको मिटाना चाहता था। 1308 ई0 मे अलाउद्दीन ने मलिक काफूर को इस की जिम्मेदारी दी और उसको जल्द से जल्द रवाना होने के लिए कहा। काफूर ने वारगल पहुँचकर उसको चारो आरे से घेर लिया । काफूर ने घेरने के उपरान्त

वारगल की भीतरी रक्षक सेना को काफी नुकसान पहुँचाया। वहाँ के राजा ने काफूर के सामने आत्म सर्मपण किया जिसमे तीन सौ हाथी, सात हजार घोडे एव काफी बहुमूल्य वस्तुए आक्रमणकारी को युद्ध की क्षति को पूरा करने के लिए भेट स्वरूप दिया और हर वर्ष कर देने का भी वचन दिया। वारगल को अपने अधीनस्थ करने के उपरान्त अलाउद्दीन ने 1310 ई0 मे दक्षिण के तीसरे शक्तिशाली राज्य को जीतने के लिए मलिक काफूर एव हाजी को विन्ध्य के उस पार एक बहुत ही विशाल सेना के साथ भेजा। 1309-10 ई0 मे देवागिरी का राजा शकर देव था। काफूर अपनी पूरी सेना के साथ वहाँ जा पहुचा दिल्ली के मार्ग को सुरक्षित रखने के लिए उसने गोदावरी नदी के पार एक रक्षा सेना को हमेशा तैनात रखा यह सावधानी इसलिए भी रखी गयी थी क्योकि काफूर को शकर देव की वफादारी पर शक था। काफूर ने देवगिरी से द्वार समुद्र की ओर कूच दिया । काफूर इतनी तेजी से आगे बढ़ा कि होयसल राजा को उसके आने की पूर्व सूचना न मिल सकी और वह चारो ओर से घिर गया तथा युद्ध में बुरी तरह से पराजित हुआ उसकी राजधानी पर आक्रमणकारियो ने कब्जा कर लिया। वहा के मदिर को लूटा गया। अत: ये होयसल राजा को मजबूर होकर भारी हरजाना देना पडा एव दिल्ली सुल्तान अलाउद्दीन की आधीनता स्वीकारनी पडी।

काफूर ने पाड्य राज्य के लिए द्वार समुद्र से कूच किया जो कि दक्षिण प्रायदीप के आखिरी किनारे पर स्थित था। वीर पाड्य तथा सुन्दर पाड्य दो भाइयो मे राजगद्दी के लिए सघर्ष चल रहा था। वीर पाड्य ने सुन्दर पाड्य को पराजित कर दिया इसलिए वहाँ गृह युद्ध प्रारम्भ हो गया। काफूर ने इसका फायदा उठाया और एक अपरिचित देश मे प्रवेश करने का साहस किया। वह मदुरा पहुँचा जिसे राजा वीर पाड्य छोडकर चला गयाथा। काफूर ने मदिरो को नष्ट करके नगर को लूटा।

रामेश्वरम् पहुँच कर उसने विशाल मदिरो को नष्ट कर दिया। वही पर उसने अलाउद्दीन के नाम पर एक मस्जिद का निर्माण कराया। 1311 ई0 में वह दिल्ली लौट गया और अपने साथ अपार धन सम्पदा ले गया जिसका मूल्य लगभग दस करोड टका था। इससे पूर्व इतना लूट का माल कोई भी अपने साथ दिल्ली नही ले गया था।

वारगल के प्रताप रूद्र देव ने सुल्तान को एक पत्र लिखा जिसमे लिखा था कि ''मेरी राजधानी दिल्ली से बहुत दूर है इसलिए कृपा करके किसी पदाधिकारी को यही भेज दीजिए। सुल्तान ने काफूर को देवगिरी भेज दिया। देवगिरी से वह गुलबर्गा पहूँचा और उस पर कब्जा जमा लिया इसके उपरान्त उसने कृष्णा तथा तुगभद्रा नदियो के बीच के राज्यो पर अधिकार प्राप्त किया । रायचुर तथा मुद्गल मे उसने अपनी रक्षा सेनाए तैनात कर दी।

इस प्रकार समस्त दक्षिण भारत पर दिल्ली का अधिकार हो गया।

मगोलो के आक्रमण के कारण अलाउद्दीन के शासन काल मे अत्यधिक अशान्ति रही। जिसके कारण पजाब, मुलतान तथा सिन्ध के साथ-साथ दिल्ली तथा गगा यमुना के उपजाऊ राज्यो के लिए भी असुरक्षा व मगोल आक्रमण का सकट पेदा हो गया। अलाउद्दीन एक योग्य और साहसी शासक था वह मगोलो को सफलता पूर्वक रोककर भारत के आन्तरिक आक्रमणकारी युद्धो को जारी रख सका। उसने मगोलो के कई आक्रमणो को असफल कर दिया था। अलाउद्दीन के शासन काल की शुरूआत से ही मगोलो ने उसे कष्ट देना शुरू कर दिया था। य1308 ई0 तक अलाउद्दीन के ऊपर संकट छाया रहा।

मगोलो द्वारा किया गया पहला आक्रमण 1296 ई0 मे हुआ। उस वक्त अलाउद्दीन को गद्दी पर बैठे कुछ ही महीने हुए थे। उसने एक 'अमीर जफर खाँ' को उनके विरूद्ध युद्ध करने के लिए भेजा। यह युद्ध जालन्धर के निकट हुआ जिसमे भीषण नर सहार हुआ तथा मगोलो की पराजय हुई मगोलो द्वारा दूसरा आक्रमण 1297 ई0 मे हुआ । इस बार सीरी के किले पर मगोलो ने जबरदस्त घेरेबन्दी कर दी। परन्तु जफर खाँ ने भी आक्रमणकारियो को परास्त कर दिया। तथा मगोल नेता को उसके 1700 अनुयायियो तथा उनकी स्त्रियो व बच्चो को बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया। 1299 ई0 मे अपने नेता कुतुलुग ख्वाजा की अध्यक्षता मे मगोल पुनः भारत आ धमके। इस बार वे लूटमार न करके बल्कि विजय के उद्देश्य से आये थे । सुल्तान के लिए यहअत्यन्त ही सकट का काल था। राजधानी की रक्षा के लिए उसने अपने मित्र दिल्ली के कोतवाल 'अला-उल मुल्क' से राय ली। अलाउद्दीन ने दूसरे ही दिन मगोलो पर आक्रमण कर दिया। 'जफर खाँ' के नेतृत्व मे यह आक्रमण हुआ और उसने शत्रु को हराकर खदेड़ा किन्तु मगोलो ने उसे सेना के मुख्य भाग से हटाकर घेर लिया और मार डाला। इसके बाद भी आक्रमणकारियो का साहस छूट गया और वे अपने देश को भाग गये। परन्तु अलाउद्दीन को जफर खाँ जैसे जाँबाज सेनानायक का निधन अधिक नही खला क्योकि वह उसकी महत्वाकाक्षा के कारण उसे खतरनाक समझता था। अलाउद्दीन जिस वक्त चित्तौड का घेरा डाले हुए था उसी वक्त मगोलों ने चौथा आक्रमण किया । मगोल सेना मे कुल 12 हजार सैनिक थे। मगोलो ने 'तार्गी' के नेतृत्व मे दिल्ली के समीप पहुँचने के उपरान्त अपना खेमा स्थापित कर दिया मगोल इतनी तेजी से आये थे कि जो वहां के प्रान्तीय गवर्नर (इक्तादार) थे वे

दिल्ली तक नही पहुँच सके। मगोलो के कारण ही अलाउद्दीन को तीन महीने तक सीरी के दुर्ग मे घेरे बदी मे ही रहना पडा था। मंगोलो ने दिल्ली के आस पास के राज्यो को लूटा और वहा से वापस चले गये। भविष्य मे राजधानी पर मगोल आक्रमण न हो इसके लिए अलाउद्दीन ने पजाब मुल्तान एव सिध मे नये किलो का निर्माण कराया एव जो किले पुराने हो चुके थे उनकी अच्छी तरह मरम्मत करवायी। इन किलो की रक्षा के लिए सुल्तान ने एक शक्तिशाली सेना भी रखी। इसके अलावा अलाउद्दीन ने एक बहुत ही विशेष सेना को रखा जो सीमा की रक्षा किया करती थी। इसका सेनापति 'गाजी तुगलक' था जिसने बाद मे तुगलक वश की नींव डाली थी।

इन सभी व्यवस्थाओ के रहते हुए अली बेग के नेतृत्व मे मगोल सेना ने पजाब पर आक्रमण किया। जिस वक्त पंजाब पर मंगोलो का आक्रमण हुआ उस वक्त अलाउद्दीन ने मलिक काफूर एव गाजी मालिक के नेतृत्व मे एक सेना आक्रमणकारियों का मुकाबला करने के लिए भेजी। इस सेना ने मंगोलो को बुरी तरह से पराजित किया तथा उनके नेता को बन्दी बना लिया। मगोलो के प्रमुख नेताओ को हाथी के पैरो तले कुचलवा दिया गया तथा अन्य बदी बनाये गये सैनिको को मौत के घाट उतार दिया गया। 1305 ई0 मे गाजी मलिक को पजाब का इक्तादार बनाया गया। 1306 ई0 मे मंगोलों ने एक बार फिर आक्रमण किया। मुल्तान के समीप सिधु को पार करने के उपरान्त हमेशा की तरह लूट पाट करते हुए हिमालय की तरफ बढ़े। गाजी मलिक ने रास्ते मे ही मगोलो का मुकाबला किया और उनमें से बहुतो को मौत के घाट उतार दिया। लगभग 50 मगोलो को बन्दी बनाकर मौत के घाट उतार दिया और उनकी स्त्रियो और बच्चो को दासो के

रूप मे बेच दिया।

मगोलों ने अतिम आक्रमण 1307-08 ई0 मे किया इनका नेता इकबाल मन्द नामक सैनिक था, लेकिन इकबाल अपनी सेना के साथ सिन्धु नदी को पार करने के उपरान्त अधिक आगे नही बढ पाया। चूँकि रास्ते ही मे दिल्ली की सेना ने उसकी सेना को घेर कर पराजित कर दिया। एक बडी सख्या मे मगोल सैनिक बन्दी बनाये गये, इन बन्दियो को दिल्ली भेज कर मौत के घाट उतार दिया गया। 1308 ई0 के बाद मगोलो ने अलाउद्दीन के राज्य मे आक्रमण करने की (विध्न डालने) की जुर्रत नही की।

अलाउद्दीन ने अपने सबसे बडे पुत्र खिज्र खाँ को उत्तराधिकार से वचित करके अपने नाबालिग पुत्र शिहाबुद्दीन उमर को उत्तराधिकारी नियुक्त किया । अलाउद्दीन खिलजी की मृत्यु के बाद इस छः वर्ष के बालक को मलिक काफूर ने सिहासन पर आसीन किया। एव स्वय उसका अभिभावक बन कर राज्य का शासक बन बैठा। खिज्र खाँ एव उसका छोटा भाई शादी खाँ दोनो को अन्धा करवा दिया। उसके बाद अलाउद्दीन की विधवा से शादी करके उसके सारे जवाहरात एव सम्पत्ति अपने कब्जे मे करने के बाद उसको बदी बना लिया। अलाउद्दीन के तीसरे पुत्र जिसकी आयु लगभग 17-18 वर्ष थी उसे बदी बनवा कर अपने आदमियो को मलिक काफूर ने उसकी आँखे निकालने के लिए भेजा किन्तु अलाउद्दीन के पुत्र मुबारक खाँ ने उन आदमियो को रिश्वत देकर काफूर को मौत के घाट उतारने के लिए भेजा । उन आदमियो ने इस कार्य को बडी सरलता से पूरा किया। इस प्रकार लोगो ने उसके भाई को अभिभावक माना। मुबारक दो-तीन महीने तक इस कार्य को करता रहा एव मौका पाकर अपने ही भाई को सिहासन से हटाकर अधा

बना दिया और खुद 'कुत्बुद्दीन मुबारक शाह खलजी' के विरूद्ध सिहासन पर बैठ गया।

मुबारक ने अपने शासन की जिम्मेदारी अपने हाथो मे लेकर शासन का कार्य आरम्भ किया। क्योकि उसके राज्य की जनता तथा अमीरो की सद्भावनाए साथ थीं। उसने सभी बन्दियो को मुक्त करके अपने पिता के समय के अध्यादेशो को रद्द कर दिया। उसकी नीति थी क्षमा करो और भूल जाओ। उन्होने काफूर की हत्या करने वालो को दण्ड देकर अपने सम्मान को बरकरार रखा। मुबारक ने बाजार के ऊपर से जो अलाउद्दीन खलजी द्वारा स्थापित किया गया नियत्रण था, उसे हटा दिया तथा जो भूमि जब्त कर ली थी, उन भूमियो को उचित अधिकारियो को लौटा दिया गया। जो कर था उसको भी कम कर दिया गया, इस प्रकार लोगो ने चैन की सास ली। लेकिन इसका नुकसान भी हुआ। जो दरबारी और पदाधिकारी थे उनका नैतिक आचरण गिरा जो नया सुल्तान गद्दी पर बैठा वह सुरा और सुन्दरी को लेकर घिर गया। सुखराव नाम के व्यक्ति का उस पर अधिक प्रभाव था। सुखराव एक निम्न जाति का था जिसने कुछ ही समय पहले इस्लाम धर्म ग्रहण किया था। सुल्तान के आचरण को देखते हुए दरबारी लोग भी उसी के रग मे ढल गये। इसका असर शासन पर पडा जिससे शासन व्यवस्था कमजोर हो गयी।

देश मे जो विद्रोही धारणा के थे उन लोगो ने राज्य परिवर्तन से शीघ्र ही लाभ उठाने की कोशिश की । देवगिरी के राजाओ ने अपने स्वतत्रता की फिर एक बार स्थापना कर ली। इस प्रकार राजपुताना का महत्वपूर्ण राज्य मारवाड स्वतत्र हो गया। सुल्तान को एक बार फिर सारी व्यवस्था को दुरूस्त करना जरूरी हो गया

'एन-उल-मुल्क' मुलतानी को गुजरात भेजा गया, जिसने वहाँ के विद्रोह को सफलतापूर्वक खत्म किया एव जफर खाँ को वहाँ का 'इक्तादार' बना दिया। मुबारक शाह खलजी ने देवगिरी को फिर से जीतने की योजना भी बनाई। मुबारक ने 1317 ई0 मे दक्षिण की ओर कूच किया। देवगिरी का राजा सुलतान के आने की सूचना पाकर अपनी राजधानी छोडकर भाग गया, किन्तु वह पकडा गया सुलतान ने उसकी खाल खिचवा ली और उसके सिर को काटकर देवगिरी के फाटक पर लटका दिया गया । देवगिरी को छोटे छोटे राज्यो मे विभाजित करके तुर्की अफसरो के हाथो मे दे दिया गया और राज्य मे जगह जगह पर सेना का प्रबन्ध कर दिया गया। मुबारक शाह ने 'मलिक यकलाकी' को देवगिरी का 'इक्तादार' नियुक्त किया। अब सुखराव को मदुरा जीतने के लिए सुलतान ने भेजा । इसके उपरान्त वह स्वय दिल्ली लौट आया ।

दक्षिण मे जो सफलता मुबारक को प्राप्त हुई थी, उससे सुलतान की महत्वाकाक्षा एव विजय लिप्सा बढ गई । सुल्तान ने अपने ससुर जफर खाँ और अपने सबसे 'अजीज शहीम' को बगैर किसी कारण के मौत के घाट उतरवा दिया और अपने शासन की ओर ध्यान न दे करके सुरा और सुन्दरी मे डूब गया। यहाँ तक भी कहा जाता है कि वह दरबार मे स्त्रियो के वस्त्र पहन कर आया करता था और भॉडो द्वारा अमीरो का अभद्र तरीके से अभिनन्दन करने की आज्ञा दे दी। इससे उसका परिणाम यह हुआ कि राज्य मे अव्यवस्था फैल गयी तथा विद्रोह की सुगबुगाहट शुरू हो गयी। मलिक जो देवगिरी का इक्तादार था उसने विद्रोह शुरू किया और खुद को स्वतत्र घोषित कर दिया। लेकिन दक्षिण के एक स्वामी भक्त अफसर ने मलिक को पराजित किया और उसे बदी बनाकर दिल्ली भेज दिया। मुबारक ने मलिक के नाक और कान कटवा दिये। कुछ समय बाद मुबारक ने

उससे क्षमा कर दिया और समाना का इक्तादार बना दिया लेकिन उसके सिपाहियो को मौत के घाट उतार दिया ।

खुसरव के सौतेले भाई हिसामुद्दीन ने भी विद्रोह किया परन्तु वह भी केन्द्रीय सेनाओ से पराजित हुआ। उसको भी बन्दी बना कर दिल्ली भेजा गया लेकिन खुसरव को खुश रखने के लिए हिसामुद्दीन को सुलतान ने क्षमा कर दिया। खुसरव खुद दक्षिण मे एक राज्य बनाने की जुगत मे था जब इसकी सूचना सुलतान को मिली तो सुलतान ने अपने साथियो पर विश्वास न करते हुए खुद खुसरव को दिल्ली बुलाया और जिन लोगो ने खुसरव पर राजद्रोह का आरोप लगाया था उनको उनके पदो से मुक्त कर दिया तथा सभी को कारागार मे डाल दिया।

गियासुद्दीन तुगलक

गाजी तुगलक का जन्म एक निम्न वर्ग के परिवार मे हुआ था। तुगलक का पिता एक तुर्की गुलाम था, माता पजाब की जाटनी थी। केवल अपनी योग्यता एव परिश्रम के कारण वह महत्वपूर्ण पद पर पहुँचा था। वह 1305 ई0 मे पजाब का इक्तादार बना। मगोलो के आक्रमण के विरूद्ध उसको उत्तर पश्चिमी सीमाओ की रक्षा के लिए भेजा गया था। अलाउद्दीन के शासन काल के अतिम समय मे उसकी गिनती शक्तिशाली अमीरो मे होने लगी थी, किन्तु वह और उसका पुत्र जूना खॉ बहुत ही महत्वाकाक्षी थे, इन लोगो ने तेरहवी शताब्दी के तुर्को जैसी ही नीति अपनायी और खुसरव के खिलाफ युद्ध किया और युद्ध मे खुसरव को पराजित किया। इस युद्ध मे खुसरव को पराजित कर मार डाला। इसके पश्चात एक विजेता

के रूप मे उसने दिल्ली मे प्रवेश किया। उसने सिहासन पर बैठने के पूर्व यह खोज करायी कि अगर अलाउद्दीन का कोई भी वशज हो तो उसे ही सिहासन पर बैठा दूँ परन्तु जब कोई न मिला तो 8 सितम्बर 1320 ई0 को वह गियासुद्दीन तुगलक गाजी के नाम से सिहासन पर आसीन हुआ। वह पहला सुलतान था जिसने अपने नाम के आगे गाजी शब्द का प्रयोग किया था।

अमीरो तथा जनता को खुश रखना उसका सबसे पहला कर्तव्य था। उसने खलजी लडकियो की शादी का भी इन्तजाम किया (जो लडकियाँ अपने वश की पराजय के पश्चात बच गयी थीं) पूर्व सुलतान के जो लोग पक्ष मे थे उनके साथ उसने बहुत कठोर व्यवहार किया और उनकी जागीरे छीन ली। निजामुद्दीन औलिया जिसको की खुसरव शाह ने 5 लाख टका दिये थे उसने वापस करने से मना कर दिया। इससे सुलतान क्रोधित हो गया और उसके एव शेख निजामुद्दीन औलिया के मध्य एक कटुतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गया। इसी क्रम मे खुसरव द्वारा उलेमा (धर्माधिकारियो) को भी धन देकर चुप कराया गया था इन लोगो से भी आदेश द्वारा राज्य के धन को अवैधानिक रूप से प्राप्त किये जाने पर लौटाने के लिए कहा गया उलेमा के लगभग सभी सदस्यो ने खुसरव से प्राप्त धन लौटा दिया।

गियासुद्दीन ने किसानो के हित की रक्षा के लिए कार्य किया । शासन काल मे भूमि की पडताल करने का परमिट खत्म कर दिया। उसके स्थान पर सुलतान ने ये आज्ञा दी की भू-राजस्व का अधिकाधिक भूमिकर खुद निर्धारित करना चाहिए। राजस्व वसूल करने वाले पदाधिकारियो को कमीशन नही दिया जाता था उसके एवज मे उन्हे भूमि दी जाती थी इस पर किसी भी प्रकार का कोई

कर नही था। इसके अलावा उन्हे किसानो से थोडा बहुत शुल्क लेने की आज्ञा थी। इस विषय मे गियासुद्दीन ने अलाउद्दीन की भूमि मापन प्रथा को समाप्त कर दिया और फिर वही पुरानी व्यवस्था शुरू की, जो खलजी पूर्व के शासन मे थी। उसने कृषि के क्षेत्र को बढाने के लिए अनेक कार्य किये। बजर भूमियो को खेती के योग्य बनाया जिससे अनेक गाँव बस गये। राजस्व व्यवस्था मे जब उचित सुधार हुआ उसके पश्चात गियासुद्दीन ने यातायात के साधनो को बढ़ाने की कोशिश की। जनता की सुविधा के लिए गियासुद्दीन ने अनेक किलो व पुलो आदि का निर्माण कराया। गियासुद्दीन को डाक व्यवस्था को सही ढग से चलाने का श्रेय जाता है । कुतुबुद्दीन मुबारक एव खुसरव के शासन काल मे न्याय विभाग ठीक नही था। गियासुद्दीन ने इसमे सुधार किया। तथा राजकीय ऋण वसूल करने के लिए जो शारीरिक यातनाए दी जाती थी उसे खत्म कर दिया।

समाज सुधार के लिए उसने शराब बनाने और बेचने पर प्रतिबध लगा रखा था। खुसरव के शासन काल मे जिन राज्यो ने दिल्ली प्रभुत्व से स्वय को मुक्त कर लिया था उनका पुनः दमन करना गियासुद्दीन तुगलक का मुख्य लक्ष्य था। वह उन राज्यो को जीतकर दिल्ली में मिलाना चाहता था। वारगल के राजा प्रताप रूद्र देव ने दिल्ली से सबध तोड लिया था। सुलतान ने अपने पुत्र जूना खाँ को जिसे उलूग खाँ की उपाधि मिली थी उसका दमन करने के लिए 1321 ई0 मे दिल्ली भेजा। उलुग खाँ ने वारगल को घेर कर वहा के राजा को अत्यधिक परेशान कर दिया जिससे राजा को सधि के लिए बाध्य होना पडा । उसने उसके संधि प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया क्योकि वह बिना किसी शर्त के उसका आत्म सर्मपण चाहता था। तब प्रताप रूद्र देव ने आवेश में आकर घेरा डालने वालो का मार्ग काट दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि कोई भी समाचार मिलना बद हो गया और

यह अफवाह फैल गयी कि गियासुद्दीन तुगलक की दिल्ली मे मृत्यु हो गयी है। शहजादा ने अपने मित्रो की राय से घेरा उठा लिया तथा सिंहासन पर कब्जा करने दिल्ली की ओर चल पडा । मार्ग मे उसे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा इस प्रकार यह प्रथम दक्षिणी आक्रमण असफल रहा ।

जूना खॉं को देवगिरी पहुँच कर जब यह पता चला कि उसके पिता की मृत्यु का समाचार झूठा है तो वह सीधा दिल्ली पहुँचा और अपनी गलती के लिए पिता से क्षमा मागी। सुलतान ने उसे क्षमा प्रदान कर दिया। 1323 ई0 में उसको एक बार फिर वारगल भेजा गया इस बार घेरे का सचालन इतना मजबूत किया गया कि राजा तथा उसके परिवार के लोग एव सामत विजेताओ के चगुल मे फस गये। तिलगाना पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त इसे छोटे क्षेत्रो मे बॉंट दिया गया । उसके पश्चात् वहा शासन करने के लिए तुर्की अमीर और पदाधिकारियो को नियुक्त किया गया। वारगल का नाम सुलतानपुर रखा गया। इस प्रकार वह दिल्ली सलतनत के एक प्रान्त की राजधानी बनायी गयी।

जब दिल्ली की सेनाए तैलगाना से दिल्ली वापस लौट रही थी उस समय रास्ते मे जूना खॉं ने उडीसा के उत्कल राज्य पर आक्रमण कर दिया और वहॉं से काफी मात्रा मे धन को लूटा इस प्रकार तैलगाना एव उत्कल की लूट का सामान लेकर वह दिल्ली वापस आ गया।

बगाल मे सिहासन के लिए गियासुद्दीन, शिहाबुद्दीन एव नसीरूद्दीन इन तीनो भाइयो के बीच युद्ध चल रहा था। गियासुद्दीन ने 1319 ई0 मे शिहाबुद्दीन को उसके सिहासन से हटाकर खुद उस पर जा बैठा। नसीरूद्दीन जो कि बगाल की गद्दी खुद चाहता था, इसने सुलतान गियासुद्दीन तुगलक से सहायता के लिए

कहा ।सुलतान ने नसीरूद्दीन की बात मान ली और खुद बगाल के लिए कूच कर दिया। सुलतान ने एक योग्य अफसर को जिसका नाम 'जफर खॉं' था उसको लखनौती पर धावा बोलने के लिए भेज दिया। बगाल का गियासुद्दीन इस युद्ध मे पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया इस प्रकार नसीरूददीन दिल्ली सल्तनत की अधीनता मे बगाल के सिहासन पर बैठा और बगाल को दिल्ली के राज्य मे शामिल कर लिया गया इसके पश्चात सुलतान लूट के सामान के साथ दिल्ली पुनः वापस आ गया।

1324 ई0 मे शहजादा जूना खॉ दक्षिण में था। मगोलो ने उत्तरी भारत पर धावा किया । लेकिन उन्हे पराजय का सामना करना पडा और उनके नेताओ को बदी बना कर उन्हें दिल्ली लाया गया ।

मुहम्मद बिन तुगलक

मुहम्मद बिन तुगलक मे वह सभी गुण विद्यमान थे उसमे बुद्धि कुषाग्र, एव उसकी स्मरण शक्ति आर्श्यजनक थी एव ज्ञान पिपासा असीम थी । मुहम्मद बिन तुगलक भौतिक विज्ञान, ज्योतिष, गणित दर्शन एव साहित्य एव काव्य का विद्वान था, उसको ललित कला एवं सगीत से बहुत अधिक प्रेम था। मुहम्मद बिन तुगलक का व्यक्तिगत जीवन एव नैतिक स्तर बहुत उच्च कोटि का था। वह स्वभाव से बहुत ही कोमल था। समकालीन इतिहासकारो बर्नी तथा इब्नबतूता ने सुलतान की भूरि भूरि प्रशसा की है इन लेखको का कहना था कि मुहम्मद बिन तुगलक दान भेट , पुरस्कार आदि खुले हाथो से दिया करता था। किन्तु मुहम्मद को नैतिकता मे हमेशा विश्वास रहा है और अपने धर्म के प्रति भी काफी सचेत था।

मुहम्मद तुगलक का पालन पोषण एक सैनिक की तरह हुआ था वह एक अनुभवी सेनानायक था एव उसके नेतृत्व मे कई युद्ध लड़े गये थे। मुहम्मद बिन तुगलक को सैनिक जीवन से बहुत ही लगाव था। सभी इतिहासकारो ने एक मत होकर मुहम्मद बिन तुगलक की प्रशसा की है। मुहम्मद एक निष्पक्ष व्यक्ति था स्वभाव से बहुत ही उदार था। लेकिन यह कहना होगा कि शासक के रूप मे वह काफी हद तक असफल था। 26 साल शासन करने के बावजूद उसके हाथ एक भी सफलता नही लगी। मुहम्मद बिन तुगलक को उत्तराधिकारी के रूप मे एक बहुत ही बडा साम्राज्य मिला जिसमे उत्तरी भारत तथा दक्षिण सम्मिलित था। परन्तु तुगलक की मृत्यु से पहले दिल्ली सलतनत का आकार बहुत ही छोटा हो गया था। दक्षिण भारत दिल्ली से आजाद हो गया था । बंगाल ने भी दिल्ली से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था। मुहम्मद बिन तुगलक को जिस वक्त मृत्यु ने घेर रखा था उसी समय सिध भी उसके हाथो से निकल गया। जो राज्य दिल्ली साम्राज्य मे थे वही विद्रोह एव अर्न्तकलह चल रही थी मुहम्मद बिन तुगलक कि एक दिली इच्छा थी वह भारत की सीमाओ के बाहर के देशो को जीते। किन्तु सिहासन पर बैठने के पश्चात उसको जो कुछ भी मिला था उससे भी हाथ धो बैठा। मुहम्मद बिन तुगलक की महवाकाक्षा थी कि राजस्व व्यवस्था और मुद्रा को वैज्ञानिक आधार पर खडा करना। परन्तु ये सभी योजनाएं विफल हो गयी, मुहम्मद ने अपने मृत्यु के पहले अपनी असफलता को माना।

समकालीन इतिहासकार बर्नी सुलतान की पॉच महत्वपूर्ण योजनाओ का मुख्य रूप से उल्लेख करता है : (1) दोआब मे कर वृद्धि (2) देवगिरी को राजधानी बनाना (3) साकेतिक मुद्रा जारी करना, (4) खुरासान पर आक्रमण और (5) कराचिल की ओर अभियान ।

आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए उसने उपज बढाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कदम भी उठाये तथा साथ साथ अधिक उपजाऊ प्रदेश दोआब मे कर वृद्धि की घोषणा की। यह वृद्धि 1/10 से 1/20 के बीच मे थी जो कि अनुचित नही की जा सकती। क्योकि इतनी वृद्धि से किसानो पर कोई दबाव नहीं पडा। लेकिन दुर्भाग्य वश जिस वर्ष कर मे वृद्धि की गई उस वर्ष अकाल पड गया और उपज न हो सकी। भू राजस्व अधिकारियो ने निश्चित राशि को निर्दयता से वसूल करने का प्रयत्न किया। असहाय वर्ग घबरा गया किन्तु शक्तिशाली जमीदारों ने लगान देने से इन्कार कर दिया। किसानो ने अपना काम करना बद कर दिया धीरे धीरे स्थिति और खराब हो गई। दोआब के विद्रोहो को सख्ती से दबाया गया क्योकि जो सुलतान उलेमा वर्ग को उनकी गलतियों के लिए क्षमा नही कर सकता था वह जमीदारो के विद्रोह को कैसे सहन कर सकता था।

विद्रोहो के जिम्मेदार दो मुख्य वर्गो (उलेमा तथा अमीर वर्ग) पर नियत्रण करने के लिए सुलतान ने ठोस कदम उठाये। सुलतान अकाल तथा बिमारी के प्रकोप को तो नही रोक सका,लेकिन उसने सबसे पहले उलेमा वर्ग से निपटने के लिए कूटनीतिज्ञता तथा कभी कभी शक्ति का भी प्रयोग किया। सुल्तान धर्मशास्त्र, इतिहास तथा इस्लामी कानून में विशेष रूचि रखता था और उलेमा वर्ग की त्रुटियो के प्रति सजग था। इसलिए यह वर्ग स्वार्थी तथा चापलूस हो चुका था। इसलिए इसमे सुधार की आवश्यकता थी। अपने विशेषाधिकार का हनन उलेमा वर्ग के लिए असहनीय हो उठा तो उन्होंने सुलतान को 'काफिर' की सज्ञा दी और लोगो को सुलतान के विरूद्ध विद्रोह के लिए भडकाना शुरू कर दिया। उलेमाओ का विरोध मुहम्मद तुगलक के लिए परेशानी का कारण बना, इसलिए सुलतान द्वारा खलीफा के प्रति सम्मान दिखाना तथा 'अब्बासी खलीफा' से मान्यता प्राप्त

करना एक राजनीतिक कदम था। अमीरो तथा अफसरो को वफादार बनाने के लिए व प्रशासन मे सुधार लाने के लिए मुहम्मद तुगलक ने उन पुराने अफसरों तथा कर्मचारियो को पदच्युत कर दिया जिन पर उपद्रव फैलाने या किसी विद्रोह मे भाग लेने का सदेह था। उनके स्थान पर नये लोगो को नियुक्त कर दिया गया। इन लोगो की नियुक्तिया पुराने अफसरो के लिए ईर्ष्या का कारण बन गयी। मुहम्मद तुगलक के अमीर वर्ग मे खानदानी अमीरो के अतिरिक्त कई जातियो के लोग थे जिनमे मुख्यतः मगोल, विदेशी तथा हिन्दू भी थे । अमीरो द्वारा विद्रोहो का उलेमा वर्ग ने लाभ उठाया और कई अन्य कारणो ने समन्वित रूप से मुहम्मद तुगलक के विशाल साम्राज्य को जीते जी ही विघटित करना शुरू कर दिया ।

(1) समकालीन इतिहास कार बरनी के अनुसार ''चूँकि देवगिरी साम्राज्य के केन्द्र में था तथा सभी ओर से एक जैसी दूरी पर था। अतः इसे नई राजधानी के लिए चुना गया। किन्तु एक अन्य समकालीन इतिहास कार (मेहदी हुसैन) के अनुसार ''दक्षिण मे मुसलमानो की कमी के कारण देवगिरी को दूसरा मुख्य प्रशासनिक केन्द्र बनाना पडा । देवगिरी का नाम दौलताबाद रखा गया और यह मुस्लिम सस्कृति का केन्द्र भी बन गया। यहाँ पर कई सूफी सत भी बस गये और यह इसी सस्कृति का प्रमाण है कि तदुपरात इसी स्थान से बहमनी राज्य का विकास हुआ । राजधानी परिवर्तन का कुछ भी कारण हो। इससे तीन बाते तो स्पष्ट हो ही जाती हैं: (1) दक्षिण मे जो कि सल्तनत का अग बन चुका था वहाँ अभी भी असुरक्षा की स्थिति बनी हुई थी । अतः सुलतान को विश्वास हो गया कि दक्षिण मे एक शक्तिशाली प्रशासनिक केन्द्र का होना आवश्यक है जहाँ से दक्षिण के किसी भी विद्रोह को दबाया जा सके।

(2) राजधानी परिवर्तन होने के बाद भी दिल्ली वीरान नही हुई, बल्कि पहले की ही तरह आबाद रही। पहले की ही तरह सशक्त रूप से प्रशासन चलता रहा और दिल्ली तथा दौलताबाद के बीच सपर्क बना रहा तथा दोनो मुख्य प्रशासनिक केन्द्र बने रहे।

(3) दिल्ली से जो उलेमा दौलताबाद गये थे वे दिल्ली की शान को नही भूल पाये थे इसलिए उनकी नाराजगी बढती गई तथा वे हर समय लौटने के बारे मे सोचने लगे। सुलतान ने उनकी भावनाओ को समझ लिया तथा कुछ वर्षो बाद दिल्ली जाने की अनुमति मिल गयी। लोगो के मन मे सुलतान के प्रति आदर कम हो गया। तथा जो लोग वहाँ रह गये थे। उन्होंने इसी प्रशासनिक केन्द्र तथा संस्कृति के प्रभाव से बहमनी राज्य के पनपने मे सहायता की ।

तीसरी मुख्य योजना मुद्रा व्यवस्था से सबधित थी। समकालीन इतिहासकार बरनी के अनुसार सुलतान विदेशी प्रदेशो को जीतना चाहता था, तथा इसके अलावा सुलतान बहुत ही खर्चीली प्रवृत्ति का था और उसका खजाना भी खाली हो रहा था। इसीलिए सुलतान को 'सांकेतिक मुद्रा' का प्रचलन करने के लिए मजबूर होना पडा। परन्तु एक अन्य समकालीन इतिहासकार 'नैलसन राइट' ने दिल्ली के सुलतान के सिक्को का वर्णन करते हुए बताया है कि 1327 –30 ई0 मे जब साकेतिक मुद्रा जारी की गई, उस समय भारत में ही नही, बल्कि ससार भर मे चॉदी की कमी हो गयी। बगाल की खानो मे पर्याप्त मात्रा चादी नही मिली और न ही बाहर से आये व्यापारी इसे भारत मे ला सके। ऐसी स्थिति में सुलतान ने इस बहुमूल्य धातु को बनाने के लिए थोडे समय के लिए तॉबे तथा इससे मिश्रित कॉसे के सिक्के जारी किये इन सिक्को का मूल्य चादी के सिक्को के

बराबर घोषित किया गया और सुलतान ने अपेक्षा की कि लोग इसे स्वीकार करे। उस समय सिक्के बनाने की कला भी साधारण थी। कोई पेचीदे डिजाइन भी उनमे नही थे। और न ही कोई सरकारी नियत्रण / सरकारी टकसाल भी थी । सर्राफ की दुकानो पर भी टकसाल का काम होता था। मध्यवर्ती जमीदार चांदी के सिक्को से हथियार खरीदने लगे। किन्तु जब सारी सम्पत्ति व अर्थव्यवस्था दयनीय सी नजर आने लगी तब निराश होकर सुलतान को साकेतिक मुद्रा बद करनी पडी।

मुहम्मद तुगलक ने लगभग तीन लाख सत्तर हजार घुडसवारो की एक विशाल सेना इकट्ठी की ताकि उसे खुरासान विजय के लिए भेजा जा सके इस सेना मे दोआब के राजापूत तथा कुछ मगोल भी शामिल थे । सुलतान के समक्ष सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि इस विशाल सेना का क्या किया जाए। यदि इसे पूरी तरह से हटा दिया जाता है तो ये सैनिक कानून व्यवस्था भग करके उत्पात मचा सकते थे । सुलतान ने ऐसी स्थिति मे यही उचित समझा कि इस सेना के कुछ भाग को उत्तरी भारत की पर्वतीय श्रृखला मे सीमाओ को दृढ करने के लिए भेजा जाए। जब दक्षिण की सुरक्षा पूर्ण हो गई तो उसका ध्यान पर्वतीय सीमा की तरफ गया। ताकि उत्तर भारत मे किलो की श्रृखला को पूर्ण किया जा सके। खुरासान के विरूद्ध तैयार की गई कुछ सेना इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए उपयोगी हो सकती थी। लेकिन कुछ कारणो से यह अभियान असफल ही रहा। पर्वतीय स्थानो पर सैनिक, वर्षा तथा बीमारी का सामना न कर सके।

इन प्रयोगो के निराशाजनक परिणामो तथा खुरासान अभियान के लिए बनाई गई सेना की बरखास्तगी ने सुलतान के लिए कई परेशानियाँ खडी कर दी। उलेमा वर्ग पहले से ही सुलतान से नाराज था क्यो कि मुहम्मद तुगलक के धार्मिक एव

प्रशासनिक विचार उनके विचारो से अलग थे। उलेमा अपने परपरागत विशेषाधिकारो मे किसी भी तरह का परिवर्तन नहीं चाहते थे। सुलतान ने कई उलेमाओ की निर्दयता से हत्या करवा दी तथा दूसरो को बड़ी बडी सजाए दी। सुलतान किसी भी विद्रोही को क्षमा करने के लिए तैयार नहीं था। ऐसी स्थिति मे भारत मे रह रहे सूफियो तथा सैय्यदो ने अपना अनादर समझा तथा सुलतान के विरूद्ध लोक मत तैयार करना प्रारम्भ कर दिया। सुल्तान एक ओर से उपद्रव को रोकने के लिए बढता तो दूसरी ओर सघर्ष प्रारम्भ हो जाता। अतत: 1351 ई0 मे सिध के विद्रोह को दबाते हुए सुलतान की मृत्यु हो गई।

फिरोजशाह तुगलक

20 मार्च 1351 ई0 में मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद उसका चचेरा भाई फिरोजशाह तुगलक दिल्ली का शासक बना। फिरोज शाह तुगलक ने मुहम्मद तुगलक के खोये हुए प्रदेशो को पुन: प्राप्त करने का प्रयास किया। इस उद्देश्य से सिध तथा बगाल मे सैनिक अभियान किये गये। जबकि दक्षिण में स्वतत्र मदुरा बहमनी तथा विजय नगर राज्य को वापस लेने का कोई प्रयास नही किया गया। इस दृष्टिकोण से फिरोजशाह का शासन कमजोर रहा और इस कमजोरी को छुपाने के लिए उलेमा वर्ग को प्रसन्न रखा। फिरोजशाह के शासनकाल के अतिम चरण मे गभीर रूप से राजनीतिक तथा आर्थिक सकट उत्पन्न हो गया। तथा उसकी मृत्यु के कुछ समय बाद ही विशाल तुगलक साम्राज्य छिन्न भिन्न होकर कई स्वतंत्र राज्यो मे बट गया। सिध मे मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के समय जो अमीर शाही खेमे मे थे वह यह निश्चित नही कर पाये थे कि गद्दी किसको मिलेगी। अत: उन्होने

यह फैसला किया कि उनकी सेना दिल्ली की ओर प्रस्थान करे। जहाँ पर नया सुलतान नियुक्त किया जाएगा। इस परिस्थिति मे उलेमा वर्ग के कुछ लोगो ने फिरोज शाह से धार्मिक रियायतो का वायदा ले लिया । इसके उपरान्त अमीर तथा उलेमा वर्ग दोनो ने सुलतान फिरोज को शासक बनाने का निर्णय स्वीकार कर लिया। सुलतान ने सिध से लेकर दिल्ली तक के मार्ग तक आने वाली मन्दिरो, दरगाहो तथा खानकाहो को दिल खोलकर धार्मिक अनुदान दिया। उलेमा वर्ग नये सुलतान के पक्ष मे हो गया। दिल्ली की सल्तनत सभालते ही उसने मलिक मकबूल को अपना वजीर बनाया तथा दोनों ने मिलकर मुहम्मद तुगलक द्वारा उत्पन्न मुसीबतों को समाप्त करने का प्रयास किया, तथा जिन लोगों को सरकार के कर्जे देने थे उन्हें माफ कर दिया गया। उपज के अनुसार लगान तय किया गया। खून खराबा व अत्याचार को समाप्त करने की आज्ञा दी गयी तथा सरकारी पदो को वशानुगत कर दिया गया। सभी वर्ग के लोगो पर सरकारी नियत्रण मे ढील दे दी गयी। शायद इन्ही बातो से प्रेरित होकर समकालीन इतिहास कार फिरोज शाह के काल को समृद्धि का काल मानते है । प्रशासन की ओर ध्यान न देकर उलेमा वर्ग को रियायते देना, सैनिक अफसरों के कार्यो मे न्युनतम हस्तक्षेप इत्यादि करना शायद लोगो की सुलतान के प्रति वफादारी का कारण रहा हो किन्तु ये कारण ही तुगलक साम्राज्य के पतन के लिए भी जिम्मेदार थे।

फिरोज तुगलक ने साम्राज्य के विस्तार के लिए कोई भी सैनिक अभियान नही किया। बगाल के इलियास शाह को सजा देने के लिए जब सैनिक कार्यवाही की गई तो किले पर विजय पाते ही सुलतान ने घोषणा कर दी कि वह किसी और मुसलमान का खून नहीं बहा सकता क्योकि ऐसा करने पर उसमे और असभ्य मगोलो मे क्या फर्क रहेगा। अतत: सुलतान 1354 ई0 मे दिल्ली लौट आया। इस

कार्यवाही से बगाल के शासक का साहस बढ़ गया। इसके उपरान्त 1359 ई0 मे जब जफर खॉं ने जोकि बगाल के शासक से बचकर समुद्र के रास्ते से सिध तक पहुॅच गया था, फिरोज तुगलक से सहायता के लिए अपील की थी तब एक और सैनिक अभियान भेजा गया। इस सैनिक कार्यवाही से कुछ प्रदेश सुलतान के पक्ष मे आ गये थे परन्तु सैनिक दृष्टि से इसे सफल नही कहा जा सकता । इस अभियान के दो महत्वपूर्ण परिणाम हुए जौनपुर शहर की स्थापना तथा फिरोजशाह द्वारा अपने लडके फतह खॉं को उत्तराधिकारी नियुक्त करना तथा सिक्कों मे अपने नाम के साथ उनका नाम भी अंकित करना।

सुलतान के गवर्नर आइन-ए-मुल्क-माहरू की इस शिकायत पर कि सिध का शासक मंगोलो की सहायता कर रहा है एवं उनको सलतनत के विरूद्ध भड़का रहा है तो सुलतान फिरोज शाह ने सिंध के शासक के विरूद्ध आक्रमण का आदेश दे दिया। सिधियो द्वारा रक्षात्मक तरीके अपनाए गये। इसके विपरीत सुलतान की सेना मे महामारी फैल गई और लगभग तीन चौथाई सेना को मजबूर होकर गुजरात आना पडा । भागते हुए सैनिको का सुलतान ने पीछा किया। सुलतान गुजरात पहुॅचने के बजाय कच्छ के दलदल मे फंस गया। जैसे तैसे वह गुजरात पहुॅचा और फिर अपनी बहादुरी की बाते करने लगा। फिर सैनिक कार्यवाही हुई और इस बार तुगलक सेना सफल हुई। लगभग दो ढाई वर्ष के (1365-67 ई0) के अन्तराल पर फिरोज शाह दिल्ली लौट आया। इस बीच सुलतान फिरोज शाह का वजीर दिल्ली के अमीरो को झूठी सांत्वना देता रहा कि सुलतान सिध में विजय के ऊपर पुर्नविजय प्राप्त कर रहा है।

फिरोज शाह ने दिल्ली पहुँचने पर एक महत्वपूर्ण घोषणा की कि सभी अफसर जो कि सिध अभियान में मारे गये है। उनकी जागीरे उनके उत्तराधिकारियो को बगैर किसी शर्त के दे दी गई है, वे सिपाही जिन्होने गुजरात मे खजाने से साठ प्रतिशत वेतन लेकर मुझे छोड दिया तथा दिल्ली भाग आये है उनकी जागीरे भी रखी हुई है, क्योकि मै नही चाहता कि किसी को भी शिकायत का मौका मिले। सरकारी पदो को वशानुगत करना तथा ज्यादातर सैनिको को वेतन के बदले में जागीरे दे देना कुछ ऐसे कार्य थे जिससे, भ्रष्टाचार को बढावा मिला तथा सैनिक शक्ति लगभग समाप्त हो गई तथा तुगलक साम्राज्य का स्थाई रूप से कायम रहना असभव हो गया ।

फिरोज शाह की मृत्यु के बाद लगान प्राप्त करना कठिन हो गया क्योकि लगान वसूली प्राय: सैनिक शक्ति के कारण होती थी और वह शक्ति अब लुप्त हो गयी थी।

इसी काल मे भवन निर्माण कला को भी प्रोत्साहन दिया गया उसने अपनी प्रजा तथा उलेमा वर्ग को प्रसन्न रखने के लिए कई परोपकारी कार्य किये। पुराने भवनों की मरम्मत करवायी तथा कुछ नये मदरसो व मस्जिदों का निर्माण करवाया। कुछ नये शहर जैसे हिसार, फिरोजाबाद, दिल्ली तथा जौनपुर आदि बसाये गये। गरीब किसानो मे लगभग सौ लाख टका बांटा गया ताकि वे अपनी जमीन को आबाद कर सके। अस्पताल व गरीबो के लिए दीवान-ए-खैरात से पैसे का प्रबन्ध किया गया। तोपरा तथा मेरठ से अशोक स्तम्भ लाकर दिल्ली मे स्थापित किये गये। प्रशासन की सबसे बडी उपलब्धि हॉसी तथा सिरसा के क्षेत्रो मे पानी की कमी को दूर करने के लिए नहरो की खुदाई करवायी। इन नहरो के पानी से

शाही महल के अलावा 180 मील पूर्व पंजाब के प्रदेश की सिचाई की जाती थी। साथ ही उपज वृद्धि तथा अकाल से निपटने के लिए ठोस नीति अपनायी गयी।

उलेमा वर्ग को धार्मिक अनुदान दिये गये। दासो की सख्या मे असाधरण वृद्धि भी तुगलक साम्राज्य की राजनीतिक तथा आर्थिक विघटन का कारण बनी। दास जो कि सुलतान को उपहार मे मिलते थे इनकी सख्या 1,80,000 तक पहुॅच गयी। सभी दासो को कोई न कोई पद दिया गया। दासो के लिए एक अलग विभाग की स्थापना की गई तथा उन पर होने वाले खर्च के लिए एक अलग खजाना रखा गया। इन दासों का वेतन 10 से 100 टके था।

फिरोज शाह ने अड़तीस वर्ष के लंबे कार्य काल मे जो तरीके अपनाये उनमें राजनीतिक बुद्धिमता की कमी थी। दक्षिण सदैव के लिए तुगलक साम्राज्य से अलग हो गया। बगाल तथा सिध पहले की ही तरह विद्रोही हो गये। मालवा तथा खानदेश स्वतत्र हो गये। सन् 1388 ई0 मे फिरोजशाह की मृत्यु पर उत्तराधिकार के लिए सघर्ष छिड गया।

अमीर तिमूर

अमीर तिमूर का जन्म 1336 ई0 मे ट्रास–आक्सीयाना मे कैच नामक स्थान मे हुआ था। तैमूर के पिता अमीर तुर्गाई बार्लस चगताई शाखा के प्रमुख थे। 1369 ई0 में तैमूर समरक्द के सिंहासन पर बैठा। वह अत्यधिक महात्वाकाक्षी व साहसी था। उसने ईरान, अफगानिस्तान और मैसोपोटामिया पर आक्रमण करके उन पर अधिकार कर लिया था। इन सफलताओ से उसकी महत्वाकाक्षा और बढ

गई। हिन्दुस्तान की अपार धन सपदा ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का एकमात्र उद्देश्य मूर्ति पूजा का नाश करना था।

अपनी सेना के अग्रगामी दल को तैमूर ने अपने पोते पीर मुहम्मद की अधीनता मे भेज दिया था जिसने 1398 ई0 में सुलतान को घेरकर उसपर अधिकार कर लिया था। तथा उसने स्वय एक शक्तिशाली सेना लेकर अप्रैल 1398 ई0 मे समरकन्द से कूच किया तथा अक्टूबर मे मुलतान के उत्तर पूरब मे पचहत्तर मील दूर तालम्बा नामक स्थान को घेर लिया। नगर मे लूटपाट के बाद वहा के निवासियो का कत्ल कर दिया। इसके उपरान्त पाक पटन, दिपालपुर, भटनेर, सिरसा और कैथाल होता हुआ, मार्ग में आग लगाता तथा लोगो की हत्या करता हुआ दिसम्बर के पहले हफ्ते मे ही दिल्ली पहुँच गया। सुलतान महमूद तथा उसके प्रधानमत्री भल्लू इकबाल ने तैमूर के आने पर उसका मुकाबला करने का प्रयास किया। तुगलक सेना से युद्ध करने से पहले तैमूर ने एक लाख हिन्दुओ को जिनको दिल्ली से आते समय उसने बंदी बनाया था उनका निर्भयता पूर्वक उनका कत्ल कर दिया जिससे उनके रहने से युद्ध के समय किसी भी प्रकार का सकट न उत्पन्न हो सके। अत 17 दिसम्बर को उसने युद्ध किया और महमूद को पराजित कर दिया। भारतीय सेना में 10 हजार अश्वारोही, चालीस हजार पैदल तथा एक सौ बीस हाथी थे। सुलतान महमूद गुजरात की ओर, भल्लू इकबाल बुलन्द शहर की ओर भाग गया।

18 दिसम्बर 1398 ई0 मे तैमूर ने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया। उलेमा के नेतृत्व मे राजधानी के नागरिक विजेता के सामने उपस्थित हुए और दया की प्रार्थना की। तैमूर ने नागरिको को जीवन दान देना स्वीकार कर लिया। किन्तु

आक्रमणकरी सेना के अत्याचार पूर्ण आचरण के कारण वहाँ नागरिको को उसका प्रतिरोध करना पडा। इस पर तैमूर ने क्रोधित होकर नरसहार की आज्ञा दे दी। जोकि कई दिनो तक जारी रहा। दिल्ली के हजारो नागरिको को बदी बना लिया गया तथा हजारो का वध कर दिया गया ।

विजेता पन्द्रह दिन तक दिल्ली मे रूका। उसकी इच्छा न तो वहा रहने की थी और न ही उस पर शासन करने की थी। 1 जनवरी 1399 ई0 को उसने दिल्ली छोड दिया और समरकन्द जाने की तैयारी करने लगा। फिरोजाबाद होता हुआ वह मेरठ पहुँचा तथा 19 जनवरी 1399 ई0 को उस पर कब्जा कर लिया। इसके उपरान्त हरिद्वार के निकट उसे दो हिन्दू सरदारो से युद्ध करना पडा। जिसमे हिन्दुओ की पराजय हुई। इसके बाद शिवालिक पहाडियो के किनारे किनारे बढ़ता हुआ वह कांगड़ा पहुँचा वहाँ भी उसने लूटपाट की तथा जम्मू को भी लूटा तथा वहाँ अत्यन्त क्रूरता पूर्वक नरसहार किया। 19 मार्च 1399 ई0 को उसने स्वदेश लौटने के लिए सिन्धु को पार किया । भारत को जितना दु:ख और क्षति तैमूर ने पहुँचाई उतना किसी आक्रमणकारी ने एक आक्रमण मे नही पहुँचाया होगा ।

जिस समय तैमूर लौट कर गया उस समय समस्त उत्तरी भारत मे घोर दु:ख और अराजकता व्याप्त हो गयी। तैमूर ने हमारे देश के उत्तरी पश्चिमी प्रान्तो दिल्ली और राजस्थान के उत्तरी भागों को इतनी बुरी तरह लूटा तथा जलाकर नष्ट भ्रष्ट किया कि उन प्रदेशो को पुर्न समृद्धि प्राप्त करने मे कई वर्ष लग गये। लाखो पुरूषो, बच्चो व स्त्रियो को निमर्मता पूर्वक वध कर दिया गया था। सिध से दिल्ली तक दोनो ओर के कई मील तक की रबी की फसल को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया था। उसकी सेनाओ ने हर जगह अनाज लूटा और बर्बाद किया अत: भारतीय

नगरों मे वस्तुओ का अभाव हो गया । लाशो के सडने से पानी तथा वायु प्रदूषित हो गये। तथा सर्वत्र महामारी फैल गयी। मार्च 1399 ई0 में नुसरत शाह जिसे पहले उसके प्रतिद्वन्द्वी ने मार भगाया था फिर दिल्ली लौट आया। किन्तु महमूद के प्रधानमत्री मल्लू इकबाल ने शीघ्र उसका पीछा करके मार भगाया। 1401 ई0 मे उसने महमूद को पुन· दिल्ली बुलाकर उसे अपने हाथो की कठपुतली बना लिया। इस प्रकार तैमूर ने जाने से पहले दिल्ली सल्तनत को छिन्न भिन्न कर दिया।

सैय्यद वंश :

खिज्र खाँ

खिज्र खाँ सैय्यद वश का प्रथम तथा योग्य शासक था इसके सिहासन पर बैठते ही पंजाब, मुलतान तथा सिध पर दिल्ली सलतनत का अधिकार हो गया तथा राज्य का विस्तार अब लगभग दुगुना हो गया ।

खिज्र खाँ को अपने शासन काल मे कोई विशेष सफलता नही मिली उसमे इटावा, कटेहर, कन्नौज, पटियाली और कम्पिल को फिर से जीतने की कोशिश की, परन्तु उसे अधिक सफलता नही मिली।

लगभग हर वर्ष लूट पाट करने तथा राजस्व वसूलने के लिए वह सैनिक यात्राए करता और लूट का माल लेकर वापस लौट आता। राज्य के जिलो से सैनिको की सहायता के बिना वह राजस्व वसूली नही कर सकता था। उसके मत्री ताज-उल-मुल्क ने अव्यवस्था को समाप्त करने के लिए उसको सहयोग

दिया परन्तु उसे अधिक सफलता नही मिली। दिल्ली तथा गुजरात तथा दिल्ली और जौनपुर मे प्रतिद्वन्दिता प्रारम्भ हो गई और इन दोनो नये स्थापित राज्यो के शासको ने दिल्ली को जीतकर अपने राज्यो मे मिलाने का प्रयत्न किया। उत्तरी पूर्वी पजाब मे खोक्खर नेता जसरथ ने अधिक उपद्रव मचाया। दोआब के सामन्त निरन्तर विद्रोह करते रहे। मेवात के नादिर ने भी विद्रोह किया। खिज्र खॉं ने लगातार हो रहे इन विद्रोहो का दमन करने के लिए कठोर सघर्ष किया। परन्तु उसमे इतनी हिम्मत नहीं थी कि वह सामन्तो के साथ विद्रोहियो जैसे बर्ताव करता और उन्हे पूरी तरह कुचल देता अत: उसने सामन्तों के साथ समझौते की नीति से काम लिया। इन्ही कष्टों और अव्यवस्था से जर्जरित होकर खिज्र खॉं 20 मई 1421 ई0 को इस ससार से चल बसा। समकालीन इतिहासकारो के अनुसार वह न्याय प्रिय तथा उदार शासक था। लेकिन वह अयोग्य था तथा उसमें शक्ति व चरित्र का अभाव था।

मुबारक शाह

जब खिज्र खॉं मृत्यु शैय्या पर लेटा हुआ था उसने अपने पुत्र मुबारक खॉं को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया और सिहासन धारण करते ही उसने मुबारक शाह की उपाधि ग्रहण की। अमीरो ने उसे अपना शासक स्वीकार कर लिया किन्तु उसे उनसे विशेष सहयोग नही मिला । अपने पिता की ही तरह उसे भी विद्रोहियो तथा अव्यवस्थाओ का दमन करने के लिए सैनिक यात्राए करनी पडी । मुबारक शाह को भटिण्डा तथा दोआब मे विद्रोहो का दमन करने मे सफलता मिली। किन्तु नमक की पहाडियो के खोक्खर लोगो को वह दण्ड नही

दे सका। उसका नेता जसरथ महात्वाकाक्षी सामन्त था और दिल्ली की गद्दी को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत था। मुबारक ने दिल्ली के खोये हुए प्रान्तो को पुन. प्राप्त करने का प्रयास नही किया। राज्य के वजीर सरवर उल मुल्क के नेतृत्व मे कुछ हिन्दू एव मुस्लिम अमीरों ने सुलतान के विरूद्ध सघर्ष किया । 19 फरवरी 1434 ई0 को जब मुबारक यमुना नदी के किनारे एक नये नगर का निर्माण करने का निरीक्षण करने गया उसी समय षडयन्त्रकारी उस पर टूट पड़े और उसका कत्ल कर दिया।

मुहम्मद शाह :

मुबारक शाह की मृत्यु के बाद दिल्ली के अमीरो ने मुहम्मद को सिहासन पर बिठाया। वह खिज्र खॉ का नाती और मुबारक शाह का पुत्र था। वजीर 'सरवर-उल-मुल्क' राज्य की शक्ति को अपने हाथो मे रखना चाहता था। इसलिए उसने राजकोष भण्डारो तथा हाथियो को अपने अधिकार मे रखा। उसने सुलतान को फुसला कर 'खानेजहॉ' की उपाधि धारण की तथा राज्य के उच्च पदो पर उसने अपने समर्थको की नियुक्ति कर दी। बयाना, अमरोहा, नारनौल, कुहराम की जागीरे एव दोआब में कुछ परगने उसने अपने उन मित्रो व अनुनाइयो को दे दी जिन्होने मुबारक शाह की हत्या में भाग लिया था। परन्तु 'कमाल-उल-मुल्क' नाम का एक अमीर खिज्र खॉ के वश के प्रति वफादार था तथा मुबारक शाह के हत्यारों के विरूद्ध अपने क्रोध को छिपा के रखा था। वह उन्हे दण्डित करना चाहता था। इसके लिए उसने गुप्त तरीके से उसने अपने अनुयायियो का एक दल सगठित करके अपने अनुयायियो को लेकर ठीक समय पर आ गया और 'सरवर उल-

मुल्क ' तथा उसके साथियो की हत्या कर दी। इसके उपरान्त 'कमाल-उल-मुल्क' वजीर नियुक्त हो गया । उसने भी महत्वपूर्ण पदो पर अपने समर्थको को नियुक्त कर दिया। परन्तु उसे भी पूर्ण सफलता नही मिली क्योकि उसके पास कोई शक्ति शाली सेना नही थी। विद्रोह पहले की ही तरह होते रहे। जौनपुर के इब्राहीम शर्की ने सल्तनत के पूर्वी भाग पर आक्रमण करके कई परगनो पर अधिकार कर लिया। झलवा के महमूद ने भी दिल्ली के आस पास आक्रमण किये किन्तु अपनी राजधानी माण्डू पर अहमदशाह के आक्रमण का समाचार सुनकर उसे वापस लौटना पडा। तथा वह यह सुनकर भी घबरा गया था कि लाहौर और सरहिन्द का सूबेदार बहलोल लोदी कुमुक लेकर दिल्ली सेना की सहायता के लिए भी आ रहा है। बहलोल लोदी समय पर आ गया और मालवा की सेना को खदेड कर उनका सामान छीन लिया। समय पर इस तरह की सेवा के लिए बहलोल को 'खाने जहॉं ' की उपाधि मिली।

इसी समय दिल्ली की राजनीति मे एक नया मोड़ आया बहलाेल लोदी स्वय दिल्ली का सिहासन प्राप्त करना चाहता था। इसके लिए बहलोल ने अफगानो की एक सेना इकट्ठी करके दिल्ली पर आक्रमण कर दिया परन्तु वह असफल रहा । इसी सकट पूर्ण स्थिति मे 1445 ई0 मे मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गई।

अलाउद्दीन आलम शाह :

इसके उपरान्त मलिक और अमीरो ने मुहम्मद के पुत्र अलाउद्दीन को आलम शाह के नाम से राजगद्दी पर बैठा दिया । नया सुलतान अपने पिता से भी

ज्यादा अयोग्य था। बहलोल लोदी ने दिल्ली सरकार की दुर्बलता का लाभ उठाया उसके भाग्य से नये सुलतान तथा वजीर हमीद खाँ मे झगडा हो गया । सुलतान अहमद खाँ वध करना चाहता था। हमीद खाँ ने बहलोल लोदी को दिल्ली बुलाया उसने सोचा कि अमीर अफगान को अपने हाथो की कठपुतली बनाकर उसे पूर्ववत शासन का सचालन करेगा । किन्तु बहलोल लोदी ने कुटिल नीति से दिल्ली पर अधिकार करके हमीद को अपने रास्ते से हटा दिया। अलाउद्दीन आलमशाह कमजोर शासक था। वह सम्पूर्ण राज्य बहलोल लोदी को सौपकर स्वय बदायूँ चला गया और वही रहने लगाा। बहलोल लोदी ने खुतबा तथा सिक्को से आलम शाह का नाम हटवा कर 19 अप्रैल 1451 ई0 को स्वय को सुलतान घोषित कर दिया। अलाउद्दीन आलम शाह एक साधारण अमीर की भाति बदायू मे रह रहा था और वहीं पर कुछ वर्ष के बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

बहलोल लोदी :

बहलोल लोदी अफगानिस्तान के गिलजाई कबीले की महत्वपूर्ण शाखा लोदी के शाहूखेल नामक कुटुम्ब में उत्पन्न हुआ था। बहलोल मलिक काला का पुत्र था जो कि जसरथ खोक्खर को हराकर स्वतत्र सरदार बन बैठा था। बहलोल के चाचा सुलतान शाह को खिज्र खाँ ने 1419 ई0 मे सरहिद का सूबेदार नियुक्त किया और इस्लाम खाँ की उपाधि धारण की । उसे पजाब के अफगानो को अपने नेतृत्व मे सगठित किया था अपनी मृत्यु से पहले उसने अपने पुत्र कुतुब खाँ को छोडकर बहलोल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया तथा उसकी मृत्यु के बाद बहलोल लोदी सरहिन्द का सूबेदार नियुक्त हो गया। बाद मे उसने लाहौर को भी

अपनी सूबेदारी मे सम्मिलित कर लिया। बहलोल चतुर तथा महात्वाकाक्षी पदाधिकारी था। वह वजीर हमीद को राजशक्ति मे भाग नही लेने देना चाहता था। उससे झगड़ा करने से सकट उत्पन्न हो सकता था अत: उसने चालाकी से काम लिया। उसने हामिद खाँ के साथ नम्रता पूर्वक व्यवहार किया। उसने उसे विश्वास दिला दिया कि उसकी कोई महत्वाकाक्षा नही है तथा वह सेनापति के पद से सतुष्ट है। एक दिन अपने अनुयायियो के साथ बहलोल लोदी वजीर का अभिवादन करने गया। बहलोल के चचेरे भाई कुतुब खाँ ने जजीर निकाल कर चारो ओर कस दिया। वजीर को कारागार मे डाल दिया तथा बहलोल ने अलाउद्दीन आलमशाह को दिल्ली लौटने के लिए लिखा। परन्तु आलमशाह ने इस निमत्रण को अस्वीकार कर दिया। उसने 19 अप्रैल 1451 ई0 को अपना राज्याभिषेक करा लिया और अपने नाम से खुतबा पढवाया।

बहलोल कुशल राजनीतिज्ञ था, वह अपनी कमजोरियो को अच्छी तरह समझता था उसकी शाक्ति पूरी तरह अफगान अनुयायियों पर निर्भर थी इसलिए वह उन्हे सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया करता था। वह स्वयं को उन्हीं में से एक समझता था। वह सिहासन पर न बैठ कर स्वय उनके सामने कालीन पर बैठता था और अमीरो को अपने साथ बैठाया करता था।

सेना मे विश्वास बनाने के लिए तथा अपनी स्थिति मजबूत बनाने के लिए वह खुले हाथो से दान, भेट, तथा पुरस्कार आदि दिया करता था। अपने मूल निवास से उसने अफगानो को बुलाकर उन्हे बडे बडे भू भाग जागीरो के रूप मे प्रदान की एव अपने कबीले के प्रमुख व्यक्तियो को पदोन्नति का उसने वचन दिया।

बहलोल लोदी ने राज्य मे आन्तरिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए तथा अमीरो और सूबेदारो को जिन्होने उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं किया था। उन्हे दण्ड देने के लिए कठोर सैनिक वादी नीति का अनुसरण करने का निर्णय किया। उन्हे आतंकित करने के लिए वह कई बार स्वय आस पास के जिलो मे सेनाए लेकर गया ।

सिकन्दर लोदी :

बहलोल लोदी की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के लिए दो गुट बन गये। एक उसके तीसरे पुत्र निजाम खाँ को जो जनता मे सिकन्दर शाह के नाम से प्रसिद्ध था। दूसरे जो सुलतान के सबसे बडे पुत्र बारबक शाह के समर्थक थे जो उस समय जौनपुर का शासक था। परन्तु अधिकतर पठान अमीर निजाम खाँ के समर्थक हो गये और 17 जुलाई 1489 ई0 को सिकन्दर शाह के नाम से सुलतान नियुक्त कर दिया गया।

सिकन्दर ने थोडे ही समय मे अपनी नीति, चरित्र और सुदृढ शासन व्यवस्था के द्वारा उसने दिखा दिया कि उसका चुनाव उचित था और दिल्ली के शासन के लिए वह बहलोल के पुत्रो में योग्य था। उसका प्रथम उद्देश्य अपने प्रतिद्वन्दियो का दमन करके अपने अनुयायियो की शक्ति मे वृद्धि करना तथा आन्तरिक व्यवस्था स्थापित करना था सिकन्दर का चाचा आलम खाँ भी सिहासन के लिए उम्मीदवार था। सिकदर ने उसे रापडी मे पराजित करके वहाँ से भगा दिया। आलम खाँ ने ईसा खाँ के यहाँ शरण ली जो सिकदर का विरोधी था ।

सिकदर ने आलम खाँ को ईसा खाँ से पृथक करके अपने पक्ष मे मिला लिया तथा इटावा का सूबेदार नियुक्त कर दिया। इसके बाद उसने ईसा खाँ को पटियाला के निकट युद्ध मे पराजित किया। युद्ध के कुछ ही दिनो के बाद ईसा खाँ की मृत्यु हो गयी। सिकन्दर खाँ का चचेरा भाई आजम हुमायूँ भी गद्दी का उम्मीदवार था उसे भी सुलतान ने हराकर कालपी को छीनकर मुहम्मद खाँ लोदी के सुपुर्द कर दिया। इसके बाद तातारखाँ लोदी को परास्त किया लेकिन झातरा की जागीर उसके हाथ मे ही रहने दी। इस प्रकार सिहासनारोहण के एक वर्ष के अन्दर उसने अपने विरोधियो को परास्त कर दिया और अपनी शक्ति को सुदृढ कर लिया ।

सिकन्दर अपने बडे भाई बारबक शाह जो जौनपुर का शासक था को अपने अधीन करना चाहता था। उसने जौनपुर एक शान्ती दूत भेजा जो असफल रहा। किन्तु जौनपुर के भूतपूर्व सुलतान हुसैन शाह ने बिहार मे शरण ली जो दोनो भाइयो के आपसी सघर्ष का लाभ उठाना चाहता था। सिकन्दर ने युद्ध किया। उसने बारबक शाह को जो अपनी सेना लेकर कन्नौज तक पहुँच गया था को पराजित किया। हार कर बारबक शाह बदायुँ चला गया लेकिन वहाँ भी सिकन्दर ने उसे घेर लिया और आत्म समर्पण करने के लिए मजबूर किया । सिकन्दर ने नाम मात्र के लिए उसे जौनपुर का सुल्तान बना दिया और उसके राज्य को विभक्त करके अनुयायियो में बॉट दिया तथा उसके दरबार एव महल मे गुप्तचर नियुक्त कर दिये । किन्तु बारबक शाह नितान्त अयोग्य शासक निकला। इसलिए सिंकन्दर ने उसे हराकर कारागार मे डाल दिया तथा जौनपुर मे अपना सूबेदार नियुक्त कर दिया।

जौनपुर का दमन तथा अपने पैतृक राज्य पर निरकुशता स्थापित करने के बाद सिकन्दर अफगान अमीरों को उचित नियत्रण एव अनुशासन मे लाने के लिए प्रयास करने लगा । वह राज्य व्यवस्था मे परिवर्तन लाने का इच्छुक नहीं था। उसने अपने सूबेदरो तथा अन्य पदाधिकारियो की आय व्यय के हिसाब की उचित जॉच पर जोर दिया। गबन करने वालो तथा हिसाब मे गडबडी करने वालो को कठोर दण्ड दिया । अपने मुख्य अमीर मुबारक खॉं लोदी को जिसे जौनपुर का राजस्व वसूल करने के लिए रखा था उसे कठोर दण्ड देकर राज्य का गबन किया हुआ धन लौटाने के लिए कहा । सिकन्दर अमीरों तथा दरबारियो के किसी भी प्रकार के अशिष्ट अथवा असम्मानपूर्ण आचरण को वह सहन नही करता था। अमीरो ने बदला लेने के उद्देश्य से सिकन्दर को हटाकर उसके भाई फतह खॉं को सिहासन पर बैठाने का षडयत्र रचा। परन्तु समय से पूर्व इस षडयत्र का भेद खुल गया तो सुलतान ने बाईस अमीरो को दरबार से बाहर निकाल दिया इस प्रकार सिकन्दर को अमीरों पर उचित नियत्रण करने मे सफलता मिली। जब सिकन्दर किसी अमीर के लिए फरमान जारी करता था तो वह अमीर छह मील चलकर उचित रस्म के साथ स्वीकार करता था।

शासक के रूप मे सिकन्दर की सफलता का श्रेय उसकी उत्कृष्ट गुप्तचर व्यवस्था को जाता था। सिकन्दर का शासनकाल भौतिक समृद्धि के लिए प्रसिद्ध था। सिकन्दर अत्यन्त महत्वाकाक्षी था इसलिए उसने दिल्ली तुर्की सलतनत के खोये हुए प्रान्तो को पुनः प्राप्त करने की योजना बनाई। अपने भाई बारबक शाह का दमन करने तथा जौनपुर को दिल्ली राज्य में मिलाने के कारण उसका बिहार से

सघर्ष हो गया जो उस समय बगाल का एक भाग था। जौनपुर के कुछ जमीदारो का भूतपूर्व सुलतान हुसैन शाह से घनिष्ट सबध था जो उस समय बगाल मे रह रहा था। सिकन्दर इन जमीदारों की शक्ति को पूरी तरह समाप्त करना चाहता था। इसलिए उसने फाफामऊ (इलाहाबाद के निकट) के भील राजा पर जो विद्रोही जमीदारो का नेता था, आक्रमण किया। परन्तु राजा का पूर्ण रूप से दमन नही हो सका। 1494 ई0 के आक्रमण मे सुलतान की सेना को भारी क्षति हुई तथा घोडो की एक बडी सख्या नष्ट हो गयी। इसकी सूचना विद्रोही राजाओ ने हुसैन शाह को दे दी तथा सिकन्दर से लड़ने के लिए आमत्रित किया । हुसैन शाह एक बडी सेना लेकर सुलतान से लडने के लिए बिहार से आ गया सिकन्दर ने उसके मार्ग को रोका तथा बनारस के निकट भयकर युद्ध हुआ। जिसमें हुसैन शाह पराजित होकर भाग गया। सिकन्दर ने हुसैन शाह का पीछा किया और बिहार पर अधिकार कर के दिल्ली मे मिला लिया।

धौलपुर तथा ग्वालियर को भी सिकन्दर जीतना चाहता था । 1502 ई0 मे कठिन तथा काफी लम्बे सघर्ष के बाद सुलतान को राजा विनायक देव के हाथों से धौलपुर छीनने मे सफलता प्राप्त की। परन्तु ग्वालियर विजय के लिए सिकन्दर की शक्ति तथा योग्यता कम थी।

कई वर्ष तक लगातार वह मानसिह पर जो सुदृढ़ किले तथा निकटवर्ती प्रदेश पर आक्रमण किया । 1504 ई0 मे सिकन्दर ने आगरा को अपनी राजधानी बनाया। वह उसे सैनिक छावनी तथा धौलपुर, ग्वालियर और मालवा के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही के लिए आधार बनाना चाहता था। कई वर्ष के परिश्रम के बाद सुलतान ने मन्दैल,उतगिर नरवर और चंदेली पर अधिकार कर लिया था। परन्तु

वह ग्वालियर को दिल्ली सलतनत मे मिला न सका। वह मालवा को भी जीतना चाहता था परन्तु उसकी यह इच्छा भी पूर्ण नही हो सकी।

1510 ई0 मे उसने नागौड़ को जीत लिया। विजेता के रूप मे सिकन्दर को सफलता हासिल हुई सिकन्दर का स्वास्थ्य गिर गया और वह बीमार पड़ गया। 21 नवम्बर 1517 ई0 को उसकी मृत्यु हो गई ।

इब्राहीम लोदी :

सिकन्दर की मृत्यु के उपरान्त अफगान अमीरो ने सर्वसहमति से उसके पुत्र इब्राहीम को सिहासन पर बैठा दिया। सिहासनारोहण के उपरान्त उसने इब्राहीमशाह की उपाधि धारण की।

अपने पिता द्वारा आरम्भ किये गये विजय अभियान को पूरा करना इब्राहिम की विदेश नीति का मुख्य उद्देश्य था। उसने सर्वप्रथम ग्वालियर विजय का सकल्प लिया। ग्वालियर राज्य के शासक ने इब्राहीम के भाई जलाल खॉं को शरण दी, अत: दोनो के मध्य यह युद्ध का एक बहाना था। तथा राजा मानसिंह की मृत्यु हो चुकी थी जो वीर शासक था। उसके बाद उसका पुत्र विक्रमाजीत उसका उत्तराधिकारी हुआ वह अपने पिता की योग्यता तथा राजनीतिक बुद्धिमता की तुलना मे निम्न कोटि का व्यक्ति था। ग्वालियर को घेरने के लिए इब्राहीम ने आजम हुमायूँ शेरवानी को तीस हजार घुडसवार तथा तीन सौ हाथियो की सेना के साथ भेजा। इस कार्य में सहयोग करने के लिए आगरा से एक सेना भेजी गयी। आजम हुमायूँ उस किले को घेरने के लिए बहुत उत्साह के साथ जुट गया। जिसमे

किले के बाहरी दुर्ग पर दिल्ली की सेना का अधिकार हो गया तथा अन्त मे किले के रक्षकों को हथियार डालने पडे। विक्रमाजीत दिल्ली सुलतान का सामन्त हो गया । यह इब्राहीम की महानतम सफलता थी।

विभिन्न दलो के आपसी प्रतिद्वन्दिता के कारण इब्राहीम के शासन काल मे अशान्ति छायी रही। इब्राहीम के राजगद्दी पर बैठते ही स्वार्थी अमीरो के दल ने राज्य को विभाजित करने की नीति का समर्थन किया । इसमें उन्हें इब्राहीम के भाई जलाल खॉं को जौनपुर के सिहासन पर बिठाने मे सफलता भी मिली। अमीरो के दबाव मे आकर सुलतान को विभाजन स्वीकार करना पड़ा। क्योकि जलालखॉं जौनपुर मे अपनी सत्ता स्थापित नही कर पाया था इब्राहीम पश्चाताप करने लगा। उसके अमीर खानेजहॉं लोहानी ने राज्य विभाजन की मूर्खता पूर्ण नीति की निन्दा की तथा जलाल खॉं को वापस बुलाने पर दबाव डाला। इब्राहीम ने यह कार्य हैवात खॉं को सौप दिया। हैवात खॉं जलाल खॉं को दिल्ली बुलाने मे असफल रहा। इसलिए उसने कुटनीति से काम लिया और जलाल खॉं के अनुयायियो को अपनी ओर मिला लिया। उन्होने जलाल खॉं को जौनपुर छोडकर कालपी जाने को मजबूर कर दिया वहॉं पहुच कर उसने स्वय को स्वतंत्र घोषित करके सुल्तान की उपाधि धारण की। उसनेआजम हुमॉयू जो इब्राहिम की ओर से कालिंजर को घेरे हुए था। अपनीओर मिला लिया अपनी सेनाओ को इकट्ठा करके जलाल खॉं और आजम हुमॉयू शेरवानी ने अवध पर आक्रमण कर दिया। इसलिए इब्राहीम को स्वय विद्रोहियो का दमन करने के लिए जाना पडा। लेकिन आजम हुमॉयू ने जलाल खॉं का साथ छोड दिया और इब्राहिम के साथ मिल गया इस प्रकार अकेला होने पर जलाल खॉं आगरा की ओर बढ़ा और वहॉं की रक्षा सेना पर आक्रमण कर दिया। जलाल खॉं को वहा से भागकर ग्वालियर के राजा के यहॉं

शरण लेनी पडी। फिर वहा से वह मालवा भाग गया और अन्त मे गढ़कण्टक के गौड राज्य की ओर भाग गया जहा उसे गौडो ने गिरफ्तार कर लिया और बदी बनाकर इब्राहीम की ओर भेज दिया। सुलतान ने उसे हासी मे कैद करके रखने की आज्ञा दी लेकिन मार्ग मे ही उसका वध कर दिया गया। अब इब्राहीम अपने राज्य का निर्विरोध शासक बन गया। अब उसका कोई भी प्रतिद्वन्दी नही था।

जलाल खॉं के विद्रोह का दमन करने तथा राज्य पर अपना नियत्रण स्थापित करने के बाद इब्राहीम का दिमाग चढ़ गया वह स्वेच्छाचारी तथा निरकुश शासक की तरह व्यवहार करने लगा। उसने तुर्को से प्रेरित होकर यह घोषणा की कि ''राजा का कोई सबंधी नहीं होता सभी उसके अधीन सामन्त तथा प्रजा होते है।'' अफगान अमीरो पर उसने कठोर नियम लागू किये। अमीर इस अपमान को न सह सके और उन्होने सुल्तान के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। इब्राहिम ने आजम हुमॉयू और उसके पुत्र फतेह खॉं को ग्वालियर से बुलाकर कारागार मे डाल दिया। उसके इस अन्यायपूर्ण व्यवहार से क्रोधित होकर आजम हुमॉयू के दूसरे पुत्र इस्लाम खॉं ने विद्रोह कर दिया। अपने पिता की फौज का सेना पतित्व लेकर उसने आगरा के सूबेदार अहमद खॉं पर आक्रमण कर दिया। इसके बाद वह स्वयं पचास हजार सेना लेकर युद्ध क्षेत्र मे उतरा। विद्रोही अमीरो ने एक विशाल सेना इकटठा की जिसमे चालीस हजार घुडसवार, पैदलो की बड़ी संख्या और पांच सौ हाथी सम्मिलित थे। शेख राजू बुखारी नामक एक धार्मिक व्यक्ति ने हस्तक्षेप करके तथा शान्ति से बात चीत करके झगडे को निबटाने का प्रयत्न किया लेकिन वह असफल रहा। परिणाम स्वरूप भयकर युद्ध हुआ। अन्त मे इब्राहीम की विजय हुई। उसने विद्रोहियो को परास्त कर दिया। इस्लाम खॉं मारा गया और सैय्यद खॉं बन्दी बना लिया गया। जो लोग सुल्तान के प्रति वफादार थे उन्हे विद्रोहियो की जागीरे

छीनकर दे दी और पुरस्कृत भी किया।

इस सफलता ने इब्राहीम को पहले से अधिक घमण्डी बना दिया। जिससे वह और अमीरो को दण्ड देने के लिए प्रेरित हुआ । दुर्भाग्य वश आजम हुमॉयू शेरवानी एव कुछ अन्य अमीरो की कारागार मे ही मृत्यु हो गई। जिसके परिणाम स्वरूप चारों तरफ विद्रोह की आग भडकने लगी। बिहार मे सूबेदार दरिया खॉं लोहानी, खाने जहॉं लोदी, मिया हुसैन करमाली तथा अन्य अमीरो ने विद्रोह कर दिया। इधर सुलतान ने मूर्खतावश चन्देरी मे शेख हसन करमाली की हत्या का आदेश दे दिया । इससे विद्रोहियो को विश्वास हो गया कि जब तक इब्राहीम गद्दी पर बैठा है तब तक उनका जीवन असुरक्षित है। वे सुलतान को गद्दी से हटाने के उपाय खोजने लगे कि इसी समय विद्रोहियों के नेता दरिया खॉं लोदी की मृत्यु हो गयी। लेकिन उसका पुत्र जो बिहार का जागीरदार था, ने मुहम्मदशाह के नाम से अपने को सुल्तान घोषित कर लिया। अनेक विद्रोही उसके नियत्रण मे आ गये। और उसकी सेना की संख्या एक लाख घुडसवार हो गई। उसने बिहार से लेकर सम्भल तक के सभी प्रदेशो पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। गाजीपुर का सूबेदार 'नासिर खॉं लोहानी' भी उससे मिल गया।

पंजाब के सूबेदार दौलत खॉं लोदी ने भी विद्रोह कर दिया। उसका पुत्र गाजीखॉं दिल्ली के पास भागा और अपने पिता को सूचना दी कि यदि इब्राहीम बिहार के विद्रोह को दबाने मे सफल हो गया तो आपको भी लाहौर से वचित कर देगा। इसी डर से दौलत खॉं ने स्वय को स्वतत्र घोषित किया तथा काबुल के शासक बाबर से बात चीत करके उसे भारत पर आक्रमण करने तथा इब्राहीम को सिहासन से हटाने के लिए निमत्रण दिया। बाबर स्वय भारत पर अपना अधिकार

करना चाहता था। इसलिए उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया । उसी समय आलम खाँ नामक एक अन्य अफगान अमीर जो इब्राहीम का चाचा था, मैदान मे आया। वह भी दिल्ली के सिहासन का अभिलाषी था इस उद्देश्य से उसने बाबर से बात चीत शुरू की । इस सबके परिणाम स्वरूप 21 अप्रैल 1526 ई0 को पानीपत का युद्ध हुआ जिसमे इब्राहीम लोदी पराजित होकर मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ दिल्ली सलतनत भी समाप्त हो गया।

हिन्दू समाज :

देश की बहुसख्यक जनता हिन्दू थी। उन दिनो उनकी सख्या 95 प्रतिशत से कम नही रही होगी । तुर्को के आगमन से पहले वे शासक तथा सम्पूर्ण देश के स्वामी थे और सल्तनत युग मे भी अधिकाश भूमि पर उन्हीं का अधिकार था। उनमे से अनेक धनी एव समृद्ध शाली सामन्त थे शासन की निम्न शाखाए और विशेष कर राजस्व तथा वित्त विभाग उन्ही के हाथों मे थे। खुत, चौधरी तथा मुकद्दम सब हिन्दू थे। इसके अलावा प्रमुख व्यापारी, व्यवसायी तथा साधारण दुकानदार भी अधिकतर हिन्दू ही थे। साहूकारो तथा लेन देन के पैसो पर उनका लगभग एकाधिकार था। सेनाओं के साथ हिन्दू बंजारे भी चला करते थे। मध्यकाल मे रसद का समुचित प्रबन्ध नही था, इसलिए यह वशानुगत बंजारे ही सैनिको को रसद पहुँचाया करते थे। हिन्दुओ का एक बहुसख्यक वर्ग कृषि से ही जीवकोपार्जन करता था। अनेक हिन्दू अध्यापन, चिकित्सा आदि पेशे से जुडे थे। ब्राह्मण वर्ग सामान्यतया अध्ययन व धार्मिक कृत्यो पर अपना समय बिताते थे।

भारत मे तुर्की शासन लगभग साढे तीन सौ वर्षो तक चला इस बीच दमन

तथा विजय की प्रक्रिया चलती रही व लाखो हिन्दू मारे गये तथा स्त्रियाँ व बच्चे मुसलमान बनाकर दासो के रूप मे बेच दिये गये। उच्च तथा मध्यम श्रेणियो के हिन्दुओ को सैनिक तथा असैनिक सरकारी नौकरियो से वचित कर दिया गया था। इस युग मे हिन्दू जनता को राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से बहुत दुःख उठाने पडे। उन्हे अपने पदों से वचित ही नही होना पडा बल्कि उन्हें घृणापूर्ण व्यवहार का शिकार भी होना पडा ।

तुर्की सुलतान तथा उनके प्रमुख अनुयायी समृद्ध हिन्दू परिवारो से अपने लिए वैवाहिक सबध जोडने के इच्छुक थे। अतः इसके लिए वे हिन्दू सामन्तो को अपनी लडकियाँ देने पर विवश करते थे। मुस्लिम कानून के अनुसार हिन्दू लडकियो को पहले अपने धर्म से वंचित करके मुसलमान बना लिया जाता और तब उनके साथ विवाह किया जाता था। इस कारण हिन्दुओ को निरन्तर अपमानित होना पडता था।

हिन्दू समाज जाति व्यवस्था पर आधारित था। तुर्कों को सुन्दर हिन्दू लडकियो को अपनी पत्नियाँ बनाने का शौक था, इस कारण हिन्दुओ मे बाल विवाह का प्रचलन हो गया था। उच्च तथा मध्य वर्गो मे पर्दा प्रथा भी प्रचलित हो गयी थी। मध्य युग मे नीची जातियो को छोडकर अन्य लोगो मे से विधवा विवाह का विचार ही जाता रहा था। समृद्ध परिवारो को छोडकर साधारण हिन्दुओ मे स्त्री शिक्षा का पूर्ण अभाव था, हिन्दुओ का अपने धर्म मे विशेष अनुराग था। उनमे से सुशिक्षित लोग एकेश्वरवाद मे विश्वास करते थे किन्तु बहुसख्यक जनता मूर्ति पूजा करती थी। लोग गूढ विश्वासो मे फंसे हुए थे। फलित ज्योतिष, सामुदायिक तथा जादू टोनो मे उनकी आस्था थी।

सामान्य रूप से व्यक्तिगत ईमानदारी तथा आचरण की शुद्धता का स्तर बहुत ऊचा था।

समाज तथा संस्कृति :

हिन्दुओ के सास्कृतिक कार्य हिन्दू राजाओ के दरबारो तथा हमारे मुख्य विद्या केन्द्रो और तीर्थ स्थानो तक ही सीमित थे। उथल पुथल तथा सकटो के उस युग में जबकि हिन्दुओ को राजाश्रय उपलब्ध नही था, यह स्वाभाविक ही था कि वे कालीदास, भवभूति बाण, तुलसी और सूर की रचनाओ से की जा सकती। सस्कृति तथा कला के क्षेत्र मे हिन्दुओ ने तुर्को की श्रेष्ठता कभी स्वीकार नहीं की। तुर्को की विजय से जो प्रभाव उनके दिमाग पर पडा उसकी ओर ध्यान न देकर वे साहित्य सेवा मे लगे रहे। इसके परिणाम स्वरूप काफी मात्रा मे धार्मिक तथा साहित्यिक रचनाएं हुई। लेकिन वह बहुत उच्च कोटि की नही थी रामानुज ने ब्रह्म सूत्रो पर टीकाए लिखी, पार्थसारसी ने कर्म मीमांसा पर कई ग्रन्थ लिखे। जिसमे ''शास्त्र दीपक'' इनमे सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। 12वी शताब्दी मे जयदेव ने प्रसिद्ध गीतगोविन्द की रचना की। हरकोली नाटक ललित विग्रहराज नाटक, प्रसन्न राघव (जयदेव द्वारा रचित : 1200 ई0 के लगभग), हम्मीर मद मर्दन (जयसिह सूरी द्वारा रचित : 1219 - 1229 ई0), प्रद्युम्नाथ्युदय (रविवर्मन), प्रतापरूद्र कल्याण (विद्यनाथ), पार्वती परिणय (वामनभट्ट बाण), गगादास प्रताप विलास (गगाधर विदाध माधव तथा ललित माधव) (रूप गोस्वामी) आदि अनेक उच्च कोटि के नाटक इसी युग मे लिखे गये। हिन्दुओं के प्रसिद्ध कानून ग्रथ मिताक्षरा की रचना विज्ञानेश्वर ने इसी युग मे की। इसी विषय

का एक और महत्वपूर्ण ग्रन्थ दयाभाग भी जीभूत वाहन द्वारा लिखा गया। ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित भाष्कराचार्य इसी युग मे हुए। योग वैशेषिक तथा न्यायदर्शनो पर भी अनेक टीकाए लिखी गई। हेतु विद्या का उदय हुआ और इस विषय पर जैन तथा बौद्ध लेखको ने कई ग्रन्थ लिखे, देवसूरी इस युग का महान जैन नैयायिक था। अनेक धर्म सुधारक भी इस युग मे हुए, भक्ति आन्दोलन भी इसी काल की मुख्य उपज थी। विजयनगर के सम्राटो ने सस्कृत साहित्य को अधिक प्रोत्साहन दिया। उनके साम्राज्य मे अनेक विद्वान निवास कर रहे थे। वेदो के टीकाकार सायण उनमे अधिक महत्वपूर्ण थे। सस्कृत साहित्य के प्रत्येक प्रकार का उदय हुआ लेकिन इस काल मे ऐतिहासिक रचनाओ की ओर ध्यान नही दिया गया। कल्हण की राजतरगिणी ही एकमात्र ऐसी रचना है जिसे इतिहास ग्रन्थ कहा जा सकता है। इसका रचना काल लगभग 12वी शताब्दी के मध्य का रहा होगा।

इस युग में धीरे धीरे हिन्दी साहित्य का भी विकास होने लगा हिन्दी के प्रारम्भिक लेखको मे पृथ्वीराज के दरबारी कवि चन्दवरदाई सार्वधिक चर्चित कवि थे। उन्होने पृथ्वीराज रासो नामक महाकाव्य की रचना की। सारगधर दूसरे प्रसिद्ध कवि हुए जिन्होने रणथम्भौर के राणा हम्मीर देव के सबध मे हम्मीर देव तथा हम्मीर रासो नामक दो प्रसिद्ध काव्य लिखे। जुगनक ने आल्हा खण्ड नामक वृहत काव्य लिखा जिसमे महोबा के चन्देल नरेश परमर्दीदेव के आल्हा तथा ऊदल नामक दो महान योद्धाओ के वीरता पूर्ण कार्यो का वर्णन किया है। इस युग मे मैथिली साहित्य का भी महान उदय हुआ। इस भाषा के एक महान लेखक विद्यापति ठाकुर 14वी शताब्दी के अन्त मे हुए। विद्यापति ने मौलिक हिन्दी तथा सस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे। कई बगाली लेखको ने भी साहित्य लिखा। स्मृति

पर रघुनन्दन मिश्र का ग्रन्थ सर्व विख्यात है, मीराबाई ने भी राजस्थानी भाषा मे सुमधुर कविताए लिखी। इस युग मे मराठी कवियों ने भी रचनाए लिखी जिनमे नामदेव अधिक प्रसिद्ध हुए। कवि गुरू नानक ने पजाबी भाषा में कविताए लिखीं। हमारी आधुनिक भाषा के विकास का श्रेय भक्ति आन्दोलन के द्वारा ही हुआ।

प्राचीन हिन्दुओ का मानना था कि मोक्ष प्राप्ति अर्थात जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होने के तीन मार्ग है ज्ञान, कर्म तथा भक्ति। सलतनत काल मे अनेक ऐसे विचारक हुए जिन्होने भक्ति को अधिक महत्व दिया तथा धर्म सुधार का एक आन्दोलन शुरू किया जो कि भक्ति आन्दोलन के नाम से जाना गया। आन्दोलन की शुरूआत महान धर्म सुधारक शंकराचार्य के समय से होती है जिन्होने बौद्ध धर्म से सफलता पूर्वक टक्कर ली और हिन्दू धर्म को एक व्यापक दार्शनिक आधार पर खडा किया। शकराचार्य ने एक तर्क संगत अद्वैत की स्थापना की तथा मोक्ष प्राप्ति के तीन मार्गो में से प्रथम अर्थात ज्ञान पर अधिक बल दिया किन्तु साधारण लोगो ने उनके विचारों का ठीक से स्वागत नही किया। साधारण जनता के मस्तिक को हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट करने तथा उसे जनता के जीवन का एक सक्रिय तत्व बनाने के लिए मध्ययुगीन धार्मिक विचारको ने तीसरे मार्ग अर्थात भक्ति को अधिक महत्व दिया।

इस धार्मिक विचारधारा के सबसे पहले प्रवर्तक वैष्णव आचार्य रामानुज थे जो कि 12वीं शताब्दी में हुए। उन्होंने सगुण भक्ति को अधिक लोकप्रिय बनाया उनका मानना था कि यही एकमात्र मोक्ष का मार्ग है। दूसरे समाज सुधारक रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी रामानन्द हुए। जिनका जन्म इलाहाबाद के एक कान्य कुब्ज वश मे हुआ था। वे राम के उपासक थे। उन्होने प्रत्येक जाति के लोगो

को भक्ति का उपदेश दिया। रामानद के बारह शिष्य थे जिनमें एक नाई (सैन), एक रैदास (चमार), तथा एक मुस्लिम जुलाहा (कबीर) था। इस सम्प्रदाय के तीसरे आचार्य वल्लभाचार्य हुए। वे कृष्ण के उपासक थे, उनका जन्म 1479 ई0 मे बनारस के निकट हुआ था। वल्लभाचार्य के माता पिता तेलुगु ब्राह्मण थे। वे तीर्थयात्रा के लिए भारत आये और यही बस गये थे। अपने जीवन के प्रारम्भ मे ही वल्लभ ने अद्‌भुत साहित्य प्रतिभा का परिचय दिया। काशी मे ही उन्होने विद्याध्ययन किया उसके बाद वे विजय नगर के सम्राट कृष्ण देव राय के दरबार मे चले गये। वहाँ उन्होने कुछ शैव विद्वानो को शास्त्रार्थ मे हरा दिया था। उन्होने शुद्धि द्वैतवाद का प्रतिपादन किया। साधारण जनता के बीच वे सर्वाधिक लोकप्रिय हो गये। लेकिन आगे चलकर उनके समृद्ध अनुयायियों मे अनेक दोष आ गये।

भक्ति आन्दोलन के महानतम सन्त चैतन्य थे। उनका जन्म बगाल मे स्थित नदिया के एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। चौबीस वर्ष की आयु मे उन्होने ससार से वियोग ले लिया और साधु हो गये और अपना शेष जीवन प्रेम तथा भक्ति का सदेश देकर बिताया। उन्होने देश के उत्तर तथा दक्षिण के अधिकांश भागो का भ्रमण किया और काफी समय तक वृदावन मे रहे। उनका विश्वास था कि प्रेम तथा भक्ति, नृत्य सगीत से अलौकिक आनद की प्राप्ति होती है तथा सगुण ब्रह्म का दर्शन हो जाता है। चैतन्य पुरोहितों के प्रभुत्व तथा धर्म के वाह्य रूपों और कर्मकाण्ड के विरोधी थे। उन्होने जाति तथा धर्म के भेदभाव को त्यागकर सभी लोगों को अपना उपदेश सुनाया । उनके अनुयायी उन्हे विष्णु का अवतार मानते थे। 1513 ई0 मे उनकी मृत्यु हो गई।

भक्ति आन्दोलन के एक और महत्वपूर्ण सत नामदेव थे। वे महाराष्ट्री थे और उनके शिष्यो मे सभी वर्गो तथा जातियो के लोग सम्मिलित थे, कुछ मुसलमान ऐसे थे जिन्होने अपना धर्म बदलकर हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया था। वे स्वय दर्जी जाति के थे, उनका जीवनकाल पन्द्रहवी शताब्दी का पूर्वाद्ध माना जाता है। इस युग के अन्य सुधारको की तरह उन्हे भी ईश्वर की एकता मे विश्वास था। वे मूर्ति पूजा तथा कर्म काण्ड के विरोधी थे । उनका मानना था कि ईश्वर भक्ति ही मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र साधन है।

भक्ति मार्ग के प्रवर्तको मे कबीर तथा नानक भी दो सन्त हुए। कबीर का जन्म बनारस की एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था लेकिन लोकलाज के भय से उसने बालक को एक तालाब के किनारे छोड़ दिया था, जहॉं से उसे एक मुसलमान जुलाहा दम्पति अपने साथ उठा ले गये। उनके जन्म तिथि के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है परन्तु ऐसा माना जाता है कि वे 15वी शताब्दी के अन्त मे हुए। आरम्भ से ही वे चिन्तन शील तथा धार्मिक प्रवृत्ति के थे किन्तु रूढ़िवादी नही थे वे रामानन्द के शिष्य हो गये थे। कबीर नाममात्र के मुसलमान रहे होंगे, क्योकि उनकी कविताए हिन्दुओ के धार्मिक तथा दार्शनिक विचारो से ओत प्रोत थी। उनपर सूफी विचारो तथा क्रियाओ का भी प्रभाव पडा था। कबीर ने गृहस्थ जीवन बिताया और जीवन के अन्य दैनिक कृत्य किये, फिर भी उच्च कोटि के भक्त हुए। कबीर ने जाति तथा धर्म के भेदभाव को छोडकर सभी लोगो मे प्रेम का सदेश सुनाया। हिन्दू तथा मुसलमानो में एकता स्थापित करना उनका एक मात्र उद्देश्य था। भक्ति मार्ग के अन्य सतो की तरह कबीर भी जाति व्यवस्था, कर्मकाण्ड तथा धर्म के बाह्य आडम्बरो को नही मानते थे उनका मानना था कि प्रेम तथा भगवत भक्ति से

मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। वे भजन गाया करते थे तथा वाह्य आडम्बरो के विरोधी थे।

कबीर की तरह ही गुरू नानक ने भी हिन्दू तथा इस्लाम के बीच एकता का सदेश दिया। उनका जन्म एक खत्री परिवार मे 1497 ई0 मे तालबडी नामक गॉव मे (आधुनिक नानकाना) में हुआ था। जो लाहौर के दक्षिण मे 315 मील की दूरी पर आधुनिक पश्चिम पजाब के शेखूपुरा जिले मे स्थित है। नानक के पिता पेशे से पटवारी थे। नानक ने शिक्षा ग्रहण की तथा आगे जाकर उन्होंने अपने बहनोई के यहाँ नौकरी कर ली। उनके बहनोई जयसिह सुलतानपुर में गल्ले के व्यापारी थे और दाउद खॉ लोदी के यहॉ कार्य करते थे । नानक का धार्मिक जीवन सुल्तानपुर से ही आरम्भ हुआ था। उन्होने भारत के बाहर मक्का तथा मदीना तक की यात्रा की जालन्धर दोआब मे स्थित करतार पुर में 1538 ई0 मे नानक की मृत्यु हो गई। नानक ने विवाहित जीवन व्यतीत किया था, उनके दो पुत्र हुए तथा भली भॉति गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। उनका विश्वास था कि विवाहित जीवन आत्मिक उन्नति के मार्ग मे बाधक नही होता। उन्होने प्राणी मात्र के प्रति सहिष्णुता का उपदेश देकर हिन्दू धर्म के बाह्य आडम्बरो जाति व्यवस्था तथा धार्मिक कट्टरता का विरोध किया। ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति तथा एकता ही उनकी शिक्षाओ का सार था। हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ही उनके शिष्य थे। उन्होने अगद नामक अपने एक शिष्य को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था।

भक्ति आन्दोलन काफी व्यापक था तथा सारे देश मे उसका प्रचार हुआ। यह जनसाधारण का आन्दोलन था इसलिए उनमे गम्भीर जागृति उत्पन्न हुई। बौद्ध धर्म के पतन के बाद भारत में इतना लोकप्रिय कोई आन्दोलन नही हुआ। इसके

दो प्रमुख उद्देश्य थे। पहला, हिन्दू धर्म का सुधार करना जिससे वह तबलीग के आक्रमण से अपनी रक्षा कर सके। दूसरा हिन्दू तथा मुस्लिम दोनो सम्प्रदायो मे मित्रता पूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सके। पहले इसी उद्देश्य मे इसे सफलता मिली। इससे परम्परागत जाति व्यवस्था कुछ उदार हुई। वे अपने गूढ विचारो को भूलकर सुधारको के इस सदेश मे विश्वास करने लगे कि ईश्वर की दृष्टि मे सभी लोग समान है तथा जन्म और मोक्ष के मार्ग मे बाधक नही हो सकता। आन्दोलन का दूसरा उद्देश्य हिन्दू मुस्लिम एकता की स्थापना करना पूरा नहीं हो सका। उन्होने यह विश्वास करने से इनकार किया कि राम रहीम, ईश्वर ओर अल्लाह एक ही ब्रह्म के नाम है । प्रान्तीय भाषाओ के साहित्य के उत्कर्ष का मुख्य श्रेय भक्ति आन्दोलन को है सन्तो ने जनसाधारण की भाषाओ मे अपने उपदेश दिये तथा धीरे धीरे हिन्दी, मराठी, बंगाली,मैथिली आदि आधुनिक भाषाओ को समुन्नत किया । प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य के विकास के इतिहास मे भक्ति काल स्वर्ण युग सिद्ध हुआ।

स्थापत्य

हिन्दुओ ने तुर्को के आने से पहले स्थापत्य कला का चरम विकास कर लिया था। हिन्दु स्थापत्य की मुख्य विशेषताए थी - (1) पतले तथा चौकोर खम्भे (2) पुश्ते (3) नोकदार तथा कैण्टीलीवर सिद्धान्त पर बनी हुई (एक साथ सपाट नही बल्कि ऊपर नीचे) मेहराबें तथा (4) सजावट की डिजाइने । हिन्दू इमारते सामान्य तथा रहस्यमयी थी, चौडी तथा खुली हुई नही। हिन्दू शासको को मंदिर तथा सस्कृत विद्यालय बनवाने का शौक था। मध्ययुगीन हिन्दू स्थापत्य के

नमूने राजस्थान विशेषतया मेवाड़ मे पाये जाते हैं। मेवाड के अधिकतर शासक कला तथा स्थापत्य के पोषक थे। राणा कुम्भा ने अनेक दुर्गो तथा इमारतों का निर्माण कराया। कुम्भलगढ़ का किला तथा कीर्ति स्तम्भ उनके सबसे सुन्दर है। इस स्तम्भ की गणना भारत की सबसे आश्चर्यजनक मीनारो में की जाती है। इसमे अनेक हिन्दू देवी देवताओ के चित्र उसकी शोभा बढाते हैं और चित्रो के नीचे लेख उत्कीण है । चित्तौड मे जैन स्तम्भ भी काफी प्रसिद्ध है । विजय नगर के सम्राट भी कला के आश्रयदाताओ के रूप मे विख्यात थे। उन्होने सभागृहो महलो, सार्वजनिक कार्यालयो , मन्दिरो तथा नहरो का निर्माण कराया। वे सभी अत्यन्त सुन्दर माने जाते थे ।

पृष्ठभूमि : अध्ययन काल से पूर्व नारी की स्थिति

नारी सस्कृति के उदभव एव विकास मे न केवल केन्द्रीय भूमिका निभाती है बल्कि किसी भी देश की सस्कृति का मुख्य मापदण्ड भी नारी की स्थिति ही रही है ये उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है, क्योकि वही सास्कृतिक धरोहर की मूल वाहिका मानी जाती है। समाजशास्त्रियो के अनुसार समाजीकरण का पहला पाठ बच्चा अपनी माँ की गोद मे ही पढता है। प्राचीनकाल की स्त्रियाँ पराधीन होते हुए भी सम्मानजनक दृष्टि से देखी जाती थी। मनु के अनुसार नारी सम्मान के बिना कोई भी धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न नही होता था और न ही स्त्री को दुखी रखकर कोई भी परिवार उन्नति ही कर सकता था। बल्कि वह घर जहाँ स्त्रियों की समुचित प्रतिष्ठा नही होती वह शाप का भागी होता है। सम्भवतः स्त्रियो की स्थिति में अवनति के लिए उत्तरदायी तत्व राजनीतिक अस्थिरता तथा सामाजिक सकीर्णता ही मुख्य थे।

वैदिक युग मे जहाँ तक नारी की स्थिति का प्रश्न है, उसका स्थान अपने घर मे सम्राज्ञी के रूप मे था । जहाँ वह घर के अन्य सदस्यो को निर्देशित करने का भी उसे अधिकार प्राप्त था। उसके बिना पुरूष अपूर्ण ही माना जाता था वह भी पुरूषो के समान ही शिक्षा ग्रहण कर सकती थी। पुत्री को उपनयन, वेदाध्ययन तथा यज्ञ सम्पादन का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। वे अपनी शिक्षा पूरी करने के साथ-साथ ब्रह्मचर्य पालन भी करती थी। उन्हे दर्शन तथा तर्कशास्त्र मे निपुणता हासिल थी। उन्ह मे से कई विदुषी स्त्रियो ने ऋग्वेद की प्रसिद्ध ऋचाओ की रचना की। उत्तर वैदिक काल में उन्हे यज्ञ के अधिकार से वचित कर दिया। किन्तु लालन पालन व उनकी शिक्षा मे कोई कमी नही की गई। साधारणतया सोलह वर्ष तक वे अविवाहित रहते हुए शिक्षा प्राप्त करती थी। उन्हे स्वयं अपने लिए वर ढूँढने का

भी अधिकार था सामाजिक धार्मिक कार्यो मे पत्नी पति के समकक्ष मानी जाती थी। धार्मिक अनुष्ठानो मे उसकी उपस्थिति अनिवार्य थी।

यह स्थिति ब्राह्मण रचनाकाल मे भी देखने को मिलती है। धार्मिक क्रिया विधि अत्यन्त कठिन होने के कारण पुरूष पुरोहितो को ही प्राप्त था । इस प्रकार धीरे-धीरे स्त्रियो का कार्य क्षेत्र सीमित होने लगा।

प्राचीन काल से ही विवाह हिन्दू समाज मे बहु विवाह की प्रथा रही है, किन्तु सम्पूर्ण वैदिक साहित्य से यह स्पष्ट है कि स्त्रियो को भी पुर्नविवाह का अधिकार था। परदा प्रथा का कोई भी उल्लेख हमे इस काल से नही प्राप्त होता है वे सभा-समितियो, उत्सवो मेलो में भाग लेने के लिये जाया करती थी यही नही कभी-कभी वे सम्पत्ति, विषयक, अधिकार के लिये भी जाया करती थी। वैदिक साहित्य मे अविवाहित कन्या को पिता की सम्पत्ति के रूप मे दर्शाया गया है। विवाह के समय पिता के घर से मिली सम्पत्ति व धन पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता था। जिसे ''स्त्री धन'' के नाम से सम्बोधित किया जाता था।

बौद्ध युग मे भी शिक्षित और शिक्षित विदुषी स्त्रियो के उल्लेख मिलते हैं। अध्यापन कार्य करने वाली स्त्रियाँ उपाध्याया कहलाती थी । बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार गुणवती पुत्री पुत्र से श्रेष्ठ समझी जाती थी। स्त्रियो को आध्यात्मिक एवं व्यवहारिक दोनो प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी। उन्हे ललित कलाओ का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। किन्तु कालांतर मे धीरे -धीरे नारी की स्थिति अवनति की ओर अग्रसर होने लगी तथा परिवार मे पुत्र को ही श्रेष्ठ समझा जाने लगा। भगवत गीताकाल में तो स्त्रियो को शूद्र के समकक्ष समझा जाने लगा। पचतत्र मे पुत्री के जन्म को चिन्ता का जन्म कहा गया है। उच्च वर्ग की कन्याओ को गुप्तकाल मे

सगीत, नृत्य, चित्रकला, ललित कलाओं मे प्रशिक्षित किये जाने का उल्लेख मिलता है।

मनु का काल स्त्रियो की स्थिति के सदर्भ मे वास्तव मे वास्तविक सक्रमण का काल था। इस काल के उत्तरार्ध मे अल्प आयु में ही कन्या के विवाह पर जोर दिया जाने लगा। दूसरी सदी ई0 पूर्व तक कन्याओं का उपनयन बद कर दिया गया क्योकि विवाह के अवसर पर उपनयन सस्कार भी कर दिया जाता था। मनु के अनुसार चूकि पति ही आचार्य था अत: घर-गृहस्थी के कार्य ही स्त्री के लिये अनुष्ठान की तरह ही था।

इसी काल से विधवा के पुर्नविवाह का भी विरोध किया जाने लगा और लगभग चार सौ ईसवी से धीरे-धीरे सती प्रथा लोकप्रिय होने लगी। इसी काल मे मदिरो मे देवदासियो को रखने की प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो चुका था।

पाच सौ ईसवी से लगभग नवीं शती तक नारी की स्थिति निरन्तर बदतर होने लगी इस काल मे पुत्र को सर्वश्रेष्ठ मानकर परिवार के सुख का प्रतीक और पुत्री को उसके दु:ख का मूल कहा गया। कम आयु मे विवाह हो जाने से स्त्री शिक्षा पर भी बुरा असर पडा बल्कि नारी के शिक्षण प्रशिक्षण का कार्य उच्च वर्ग तक ही सीमित रह गया। सती प्रथा भी उत्तर भारत के राजकीय घरानो तक सीमित थी। इस काल में गणिका आदर और प्रशंसा की पात्र थी। इस युग मे सम्पत्ति विषयक अधिकारो मे और अधिक वृद्धि हुई।

पूर्व मध्यकाल के सामन्तीय परिवेश में पुत्री का जन्म परिवार के लिए कष्टदायक माना जाने लगा। पूर्व मध्यकालीन सामाजिक जीवन आडम्बर पूर्ण होता जा रहा था। विधवा विवाह का निषेध था, बाल विवाह एव सती प्रथा जैसी प्रथाये

दृढ हो रही थी। समाज मे नारी की सुरक्षा की आवश्यकता ने पर्दा प्रथा जैसी प्रथाओं को जन्म दिया, स्त्रियों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगाये जाने लगे। साथ ही तत्युगीन युयद्ध के वातावारण मे पुत्र का जन्म पुत्री जन्म से अधिक महत्वपूर्ण था, एक और बडा परिवर्तन जो दसवीं शताब्दी मे हुआ वह है परदा प्रथा का प्रचलन। वैदिक काल के सह शिक्षा के वातावारण मे तो इसका प्रचलन बिल्कुल ही सम्भव नही था। भारतीय कृषक एव कामकाजी महिलाओ के सदर्भ मे हमे परदे का कोई उल्लेख प्राप्त नही होता रहे। स्त्रियों के आवरण वस्त्रों में दुपट्टे, चादर, ओढ़नी आदि के कारण ही उच्च वर्ग की स्त्रियो के आने जाने के लिए पालकी, डोली, हिडोला आदि का उपयोग किया जाने लगा।

विवाह के सदर्भ मे हमे शास्त्रोचित आठों प्रकार के विवाह का उल्लेख प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए हिन्दुओ मे क्षत्रियो के लिए गाधर्व विवाह का उल्लेख मिलता है। इस काल के साहित्य मे स्वयंबर के आयोजनो का वर्णन है। जिसमे कन्या द्वारा स्वतंत्र रूप से वर खोजने की परम्परा थी, इस काल मे कन्याओ का अपहरण करके उनसे विवाह किया जाता था, जो राक्षस तथा गांधर्व विवाह की श्रेणी में आते है। कम उम्र में विवाह सरक्षको की इच्छा पर किये जाने लगे। जिसमे अनेक प्रकार की सीमाए निर्धारित थी। जबकि इस काल के साहित्यों से हमे अन्तर्जातीय विवाह के भी उदाहरण प्राप्त होते है किन्तु अपनी जाति मे विवाह होने के कारण इस प्रकार के विवाह बहुत ही सीमित होने लगे। इसीलिए उनके उल्लेख हमें कम प्राप्त होते है। अलबेरूनी के अनुसार किसी भी व्यक्ति की पत्नियो की सख्या उसकी जाति पर निर्भर करती थी। देवल के अनुसार शूद्र एक, वैश्य दो, क्षत्रिय तीन, ब्राह्मण चार और राजा को इच्छानुसार विवाह करने की अनुमति प्राप्त है किन्तु बहुविवाह प्रथा समृद्ध लोगो मे ही प्रचलित थी क्योकि वे एक से

अधिक पत्नी रखने मे सक्षम थे। समाज मे बहुविवाह की प्रथा के चलते सामाजिक और पारिवारिक तनावों और जटिलताओं का वर्णन समकालीन साहित्य मे पर्याप्त रूप से मिलता है। आरम्भ मे विवाह के साथ-साथ दहेज दान स्वरूप दिया जाता था। किन्तु पूर्व मध्ययुगीन सामन्तीय परिवेश के कारण दहेज लेना व देना परिवारो के सामाजिक स्तर व उनकी प्रतिष्ठा का मानदण्ड बन गया। अत इस काल मे दहेज प्रथा प्रचलित हो गई। साहित्य के सदर्भों से इसके दो स्वरूपो का उल्लेख मिलता है, प्रथम श्रीफल ''पान'' अथवा ''तिलक'' के नाम से जाना जाता था। दहेज के अन्तर्गत बहुमूल्य रत्न, आभूषण, स्थाई सम्पत्ति, घोडे, हाथी, रथ, अनुचर, उपचारिकाएं विलास एव जीवन की आवश्यकताओ की सामग्रिया सम्मिलित होती थी।

भारतीय समाज मे ईसा के पूर्व विशेष परिस्थितियो मे विवाह विच्छेद की भी व्यवस्था थी। किन्तु पूर्व मध्ययुगीन समाज मे सामाजिक रूढिवादिता के चलते विवाह विच्छेद की प्रथा को समाप्त कर दिया गया। इतिहास कार अलबेरूनी के अनुसार पति पत्नी का सबंध विच्छेद केवल मृत्यु द्वारा ही होता था क्योकि उस समय विवाह विच्छेद की प्रथा नहीं थी।

प्रारम्भिक काल से ही माता का स्थान सर्वोच्च माना जाता था। पूर्व मध्य काल में भी परिवार में उनका सम्मान और मर्यादायुक्त तथा आदर्शात्मक था। पूर्व मध्ययुगीन समाज मे पिता की तुलना में संतान को जन्म देने के कारण माता को महिमा अधिक सुस्थापित थी। माता के विषय मे यहाँ तक उल्लेख मिलता है कि यदि माता विष भी दे तो उसका साथ नही छोड़ना चाहिए। युद्ध और वीरता के माहौल में वीर प्रसविनी होने के कारण भी माता का स्थान परिवार मे पिता से श्रेष्ठ

ही होता है। विवेच्ययुगीन साहित्यकारो के अनुसार प्रसूति की वेदना तथा शिशु के लालन पालन मे होने वाले कष्ट एव बलिदानों का ऋण सन्तान कभी नहीं चुका सकती । अतः परिवार मे एवं समाज मे माता का स्थान सर्वोच्च है। नारी की स्थिति सास के रूप मे भी समस्त अधिकारो वाली थी। माता के पश्चात नारी की स्थिति को समझने के लिए पत्नी के रूप मे उसकी भूमिका को समझना अत्यन्त आवश्यक है। इस मे पत्नी को घर की मर्यादा, धर्म, अर्थ और काम की संचालिका माना जाता था। पत्नी को पुरूष की सगिनी कहा जाता है अतः पति की सेवा करना उसका धर्म था। समकालीन साहित्यो के अनुसार पत्नी की तुलना देवियो से की गई है। विभिन्न प्रकार के धार्मिक उत्सवो, त्योहारो तथा दान मे भी पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। पति के अत्याचारो से बचने के लिए वह राज्य से प्रार्थना भी कर सकती थी क्योकि इसके लिए उसे राज्य से सरक्षण प्राप्त था, दूसरी ओर पत्नी के भरण पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व पति पर था, इसके साथ ही परित्यकता पत्नी के रहने और भोजन का प्रबन्ध भी पति को ही करना पडता था, यदि किसी पतिव्रता पत्नी को बिना किसी ठोस कारण के छोड़ दे तो राज्य की ओर से उसे दण्ड दिया जाता था। यदि पत्नी बिना पुत्र को जन्म दिये ही विधवा हो जाए तो पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी और यदि पत्नी भी जीवित न रहे तो पुत्री पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारिणी होती है।

इसी प्रकार इस काल की नारियों की सामान्य स्थिति का बोध हमे पूर्व मध्ययुगीन समाज मे विधवा स्त्री की स्थिति के अध्ययन से हो जाता है। स्त्री के लिए पति की मृत्यु के बाद दो प्रमुख कर्तव्य निर्धारित थे। एक तो पति के साथ ही सहमरण तथा अनुमरण अर्थात सती होना और दूसरा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए समस्त जीवन व्यतीत कर देना। अवलोकित काल के धर्म शास्त्रकारो के अनुसार

विधवा के रूप मे स्त्री के लिए अनेक कठोर सामाजिक प्रतिबन्ध, कठोर नियम व व्रत निर्धारित थे। यही नही संयम और प्रतिबन्ध के जीवन का सफलतापूर्वक पालन न कर पाने पर राजा विधवा स्त्री को उसे घर से निकाल भी सकता था। शुभ अवसरो व उत्सवो पर उसे उपस्थित होने का अधिकार नही था। इस युग मे विधवा स्त्री के पुर्नविवाह का भी विरोध होने लगा और उन्हे भी कठोर सामाजिक नियमो का पालन करना पडता था। इस काल मे विधवाओ का सम्पत्ति विषयक अधिकार स्वीकार किया गया। विधवाओ के साम्पत्तिक अधिकार मात्र उक्त सम्पत्ति के भाग तक ही सीमित था क्योकि अपनी इच्छा से पति की सम्पत्ति को बेचने या गिरवी रखने या दान देने का किसी प्रकार का अधिकार उसे प्राप्त नही था।

साहित्य एव कला में किसी भी युग की नारी की वेशभूषा एव आभूषण का जो वर्णन प्राप्त होता है। उससे प्रत्येक वर्ग की स्त्रियो की सामाजिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है। विभिन्न ऋतुओ के अनुसार ही भारत मे वस्त्र धारण किये जाते थे। ग्रीष्म ऋतु मे स्त्रियॉ दुकूल से निर्मित हल्की साडी तथा बसत ऋतु मे केसरिया साडी व लाल कचुक वस्त्र धारण करती थी । कुलीनों और सपन्न स्त्रियों के वस्त्रो का स्तर सामान्यवर्ग की स्त्रियों से भिन्न होता था। अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के अनुसार ही स्त्रियॉ तरह-तरह के वस्त्र धारण करती थी। उच्च वर्ग की स्त्रियॉ विभिन्न आकार-प्रकार के रग-बिरंगे, कढे हुए सुन्दर वस्त्र धारण किया करती थी। विभिन्न राज्यों मे निर्मित कुछ विशिष्ट प्रकार के वस्त्रो का उल्लेख भी साहित्य मे उपलब्ध है जैसे दुकूल जो कि बगाल से बनकर आता था। साडी, अगिया (कचुकी) और लहँगा नामक वस्त्र महिलाओ मे अति लोकप्रिय थे। इस युग से साहित्य ग्रन्थो मे हमे भारत के विभिन्न प्रदेशो मे पहने जाने वाली साड़ी के विभिन्न रूपो का वर्णन मिलता है। फुँदिया, कसनिया, हटागी, चोली इत्यादि शरीर के ऊपरी भाग मे

धारण किये जाने वाले भारतीय स्त्रियो के प्रचलित परिधान थे। इस युग मे लहँगा तथा घाघरा स्त्रियो मे अत्यन्त लोकप्रिय था। पर्दा करने के लिए महिलाएँ ओढनी का प्रयोग किया करती थी। जो आधुनिक प्रचलन मे भी है। उच्च वर्ग की स्त्रियाँ घर से बाहर जाते समय ओढनी, चुनरी या दुपट्टा अवश्य प्रयोग मे लाती थी। पर्दे का प्रचलन उत्तर भारत की अभिजात वर्ग की स्त्रियो मे एक सयतमार्गी, आशिक, परदे का प्रचलन था इसे घूँघट कहा जाता था। इसमे केवल चेहरे को छुपाया जाता था। पूर्व मध्यकालीन साहित्य मे पैरो में चमाऊ अर्थात् जूते धारण करने का उल्लेख मिलता है।

अपने सौन्दर्य में वृद्धि करने के लिए महिलाए आभूषण धारण किया करती थीं। नख से लेकर शिख तक शरीर के प्रत्येक अग को आभूषणो से अलकृत करना हिन्दू महिलाओ के सौभाग्य का प्रतीक था। बाल्यकाल से ही वे आभूषण धारण किया करती थी। बहुत कम उम्र की अवस्था मे ही उनके कान छेद दिये जाते थे। रत्नो मे मणि, मरकत, पद्मराग, लोहितक, मुक्ता, प्रवाल, पुष्पराग, वैदर्य, महानील, वज्र(हीरा) स्फटिक, सूर्यकांत तेषा का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। शरीर पर धारण किये जाने वाले जेवरातो मे मौलि, पट्ट, मुकुट और कौटीर आदि इस युग मे विशेष प्रचलित थे। 'शीशफूल' तथा 'शीश भूषण' नामक आभूषण माग मे धारण किया जाता था। इसके अतिरिक्त माथे पर गुम्बज के आकार का गहना 'बोर' भी पहना जाता था। माथे पर बिंदी तथा टिकुली लगायी जाती थी, तथा राजपूत स्त्रियाँ भौहो की सौन्दर्य वृद्धि हेतु एक विशेष प्रकार का आभूषण सोहाली भी धारण करती थी। कानो मे पहने जाने वाले आभूषणो में कर्णफूल सर्वाधिक लोकप्रिय था, इसके अतिरिक्त तलवट्टी, बाली, झुमका, ताटक, खूँट, कुण्डल इत्यादि का भी उल्लेख साहित्यों से प्राप्त होता है। अवलोकित काल मे स्त्रियाँ नाक

मे भी आभूषण पहनती थी। नकफूली, बेसर, बेसनी, बुलाक, नकमोती, नथ, तिलफूल चन्द्रगुन, गजमोती इत्यादि नाक मे पहने जाने वाले आभूषणो का उल्लेख तत्युगीन साहित्य मे मिलता है। विभिन्न प्रकार के ग्रीवा भूषणो का उपयोग भी महिलाओ द्वारा किया जाता था। कण्ठ के आभूषणो मे एकावली, कोष्ठिकाहार, हारयष्टि इत्यादि थे। गले मे पहने जाने वाले आभूषणो मे सिकडी, हार, मोहनमाला, हँसली, कण्ठी, मुक्ताहार, आदि का भी उल्लेख प्राय: समकालीन साहित्य मे मिलता है। अवलोकित काल की स्त्रियाँ अपनी भुजाओ व हाथो को अलकृत करने के लिए विभिन्न प्रकार के हस्त-अलकारों का प्रयोग करती थी जिनमे भुजबन्ध कलाई मे चूडियाँ, वलय हस्तफूल और उगलियों मे विभिन्न प्रकार की अगूठियाँ पहनती थी। भुजबन्ध को इस युग मे केयूर की सज्ञा प्रदान की गई है। सलोनी, नामक एक अन्य आभूषण का भी उल्लेख मिलता है। बाहुओ के अन्य आभूषणो मे बाहुती, बरया अथवा वलया, अगद तथा बाहुरखा अथवा बोरखा उल्लेखनीय है। कलाई को सुशोभित करने वाले विविध आभूषणो मे कंकण, हथपूर, चूड्डे, चूड़ी तथा वलय का उल्लेख मिलता है। पूर्वमध्ययुग मे दसो उगलियों में अंगूठी पहनना समृद्धि व सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता था। स्त्रियो मे कमर में पहने जाने वाले आभूषणो का विशेष लगाव रहा है। काँची मेखली, आदि के साथ-साथ छुद्रघटी किनकिनी, एव घर्घर मल्लिका जैसे आभूषणो का भी उल्लेख अवलोकित काल के साहित्यों मे उपलब्ध है। पैरों मे पहने जाने वाले आभूषणो, का भी उल्लेख अवलोकित काल के साहित्यो मे उपलब्ध है। पैरो मे पहने जाने वाले आभूषणो मे पाजेब, पायल, नूपुर, झाझर, घुघरू इत्यादि स्त्रियो के अत्यन्त प्रचलित आभूषण थे। पूर्वमध्यकालीन साहित्य मे झकार करने वाली पायल को पादहँसिक भी कहा गया है। अनवट तथा बिछुआ विवाहित महिलाओ

विवाहित स्त्रियाँ माग मे सिन्दूर भरती थीं क्योकि, यह अत्यन्त ही शुभ माना जाता है। अत: स्त्रियाँ अपनी माग मे सिन्दूर भरकर उन्हे मोतियो से अलंकृत करती थी। मस्तक पर तिलक रचना स्त्री श्रृगार का एक प्रमुख अग है, जो कि शोभा एवं मगल के साथ सौभाग्य एव सुहाग का भी प्रतीक है । माथे पर बिन्दी या तिलक कस्तूरी, चदन एव कुमकुम आदि से अकित किया जाता था। समकालीन साहित्य मे चदन, गोरोचन, कस्तूरी और धनसार द्वारा कपोल चित्र अकित किया जाता था। स्त्रियाँ अपनी ऑखो की सुन्दरता बढाने के लिए ऑंखो की देखभाल हेतु ऑंखो एव भौहो मे शलाका द्वारा सुरमा और अंजन अथवा काजल लगाया करती थीं।

सम्पन्न स्त्रियाँ अपने ओष्ठ एवं दाँतो को रगने के लिए पान का सेवन करती थी। साथ ही मोम और आलता का प्रयोग भी उल्लेख में मिलता है। ताबूल का डिब्बा रखने वाली दासियो को ताबुलक वाहिनी कहा जाता था । स्त्रियाँ अपने हाथो एव पैरो को रगने के लिए मेंहदी का प्रयोग करती थी। पैरों एव एडियो के श्रृगार हेतु जावक, महावर तथा आलता आदि द्रव्यो का प्रयोग करती थीं, दर्पण स्त्रियो के श्रृगार विधि का अनिवार्य अग था। चित्रकला एव मूर्तिकला मे स्त्रियो का बाये हाथ मे दर्पण लेकर व दाहिने हाथ मे श्रृगार करने मे व्यस्त दिखाया गया है। पुष्प अपने कोमलता, सुगध एव सुन्दरता के कारण सदैव से आकर्षित करते रहे है। पुष्प का प्रयोग स्त्रियाँ आभूषण की तरह ही किया करती थी। उच्च वर्ग की स्त्रियो के आभूषण बहुमूल्य धातु स्वर्ण मुक्ता मड़ियो- आदि से बने हुए होते थे। सामान्य वर्ग की स्त्रियाँ पुष्पो के द्वारा बने हुए आभूषणो को पहन कर अपने सौन्दर्य को निखारती थी। गणिकाओ की श्रृगार विधियो का उल्लेख भी पूर्व मध्ययुगीन साहित्यिक रचनाओ से मिलता है । इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि तत्युगीन स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के वस्त्र, आभूषण, श्रृगार एव प्रसाधनो के द्वारा अपने प्राकृतिक

के अत्यन्त लोकप्रिय आभूषण थे।

इस प्रकार विवेच्य युगीन स्त्रियॉं सिर से लेकर पैर तक कलात्मक आभूषण पहनती थी। श्रृगार और सौन्दर्य का प्रतीक होने के साथ ही विभिन्न आभूषण हिन्दू स्त्री के लिए सौभाग्य एव सुहाग के द्योतक भी माने जाते रहे है। इनका परित्याग वह विधवा होने के उपरान्त ही करती है ।

शारीरिक लावण्य एव सौन्दर्य मे वृद्धि करने के लिए स्त्रियॉं कई प्रकार के प्रसाधनो का प्रयोग सदैव से करती रही है। कालान्तर मे प्रसाधनकला मे दक्षस्त्री को सैरन्ध्री कहा जाता था। विवेच्ययुगीन स्त्रियॉं सोलह श्रृंगार से अच्छी तरह परिचित थी। सोलह श्रृंगार मे मञ्जन, स्नान, वस्त्र, पत्रावली रचना, सिन्दूर, तिलक, कुण्डल, अञ्जन, ओष्ठ सिगार, कुसुमगध, कपोल पर लित लगाना, गले में हार पहनना, कचुकी पहनना, कमर में छुद्र घंटिका पहनना तथा पैरो मे पायल पहनना की गणना होती थी। स्वय को आकर्षक बनाने के लिए स्त्रियॉं गोरोचन, कुंमकु, सुगन्धित कस्तूरी विलेपनो तथा चदन लेप का प्रयोग करती थी। श्रृगार सज्जा के पहले स्नान करने वाले जल मे सुगन्धित पदार्थ जैसे मृगमद व कर्पूर आदि डाला जाता था। अभिजात वर्ग की स्त्रियॉं शरीर को धूप से सुवासित करके सुगन्धियो का प्रयोग करती थी। केशों के सुरूचिपूर्ण ढंग से सजाया जाता था। केश विन्यास की कला मे तत्युगीन स्त्रियॉं पर्याप्त निपुण थी। उच्च वर्ग की स्त्रियों के केश दासियॉं सजाया करती थीं। इन दासियो को 'केशकारिणी' कहा जाता था। केशों मे विभिन्न प्रकार के सुगन्धित तेलो को लगाकर, कलात्मक ढग से गूँथ कर स्त्रियॉं अपने केशो की बेणियॉं बनाती थी। अपने केशो मे पुष्प लगाकर सुशोभित करती थी, साथ ही केशों को सोने- चॉंदी से निर्मित चद्रिकाओ से भी सजाया जाता था। हिन्दू समाज मे

सौन्दर्य को निखारती थी। किसी भी समाज के अध्ययन के लिए, उसके संस्कारो का अध्ययन भी अनिवार्य होता है, हिन्दू समाज मे सस्कारो का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है जिनके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को उन्नत व सुसस्कृत बनाता है। सस्कार मनुष्य के जन्म से पहले ही प्रारम्भ होकर मनुष्य की मृत्यु तक निरन्तर बने रहते है। सस्कारो की सख्या के विषय मे यद्यपि धर्मशास्त्राकार एक मत नही है। परन्तु अधिकाशत: सस्कारो की सख्या, सोलह मानते है इनमे - गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्रशासन, चूडा कर्म, कर्णवेध, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ केशान्त, समावर्तन, विवाह एव अन्तेष्टि माने जाते है, परन्तु समाज मे जितने संस्कारो का पालन किया गया वे ही अधिक प्रचलित हुए, सस्कारो की सख्या उनकी मान्यता पर ही निर्भर थी। गर्भाधान हिन्दू सस्कृति मे सम्पन्न होने वाला प्रथम सस्कार है। विवाह के उपरान्त स्त्री का गर्भवती होना ही गर्भाधान है। बारहवी शती तक साहित्य मे इस सस्कार को सपन्न होने का उल्लेख प्राप्त होता है। अल्बेरूनी ने इस सस्कार का विस्तृत वर्णन किया है। कालान्तर मे इस सस्कार का प्रचलन कम हो गया और अन्त मे समाप्त हो गया य। पुद्ध की उत्पत्ति के लिए ही पुसवन सस्कार होता था- इसके उल्लेख हमे पूर्वमध्ययुगीन साहित्य मे प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार की समीन्तोन्नयन नामक सस्कार का मूल उद्देश्य यह था कि स्त्री स्वस्थ एवं प्रसन्न रहकर वीर पुत्र को जन्म दे। पुत्र जन्म के समय एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सस्कार जातकर्म होता था जिससे कि अनिष्ठाकारी शक्तियो का नवजात शिशु पर कोई प्रभाव न पड़े। अलबेरूनी ने जात कर्म को तीसरा यज्ञ माना है। सन्तान को नाम प्रदान करने के लिए नामकरण संस्कार होता था। वैदिक युगीन बालिकाओ की शिक्षा का प्रारम्भ जिस उपनयन सस्कार द्वारा होता था आगे चलकर स्मृतिकारो ने उस पर प्रतिबन्ध लगा दिया कन्या के

विवाह को ही उसका उपनयन सस्कार घोषित कर दिया गया। हिन्दू समाज का एक महत्वपूर्ण सस्कार विवाह संस्कार है, यह सामाजिक तथा धार्मिक संस्कार भी है। विवाह सस्कार की सम्पन्नता से ही गृह-यज्ञ प्रारम्भ होता है। अत: विवाह सस्कार को सभी संस्कारो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण और गौरवशाली माना जाता है। इसके अन्तर्गत वर वधू की विभिन्न योग्यताए और गुण गौत्र और वर्ण आदि का विचार किया जाता था। धर्म के अनुसार यज्ञिक कार्य, सन्तानोत्पत्ति, वशोत्थान, गहिस्थ्य, तथा पितरों के लिए पिण्डदान आदि के लिए विवाह अति आवश्यक था मनुष्य के जीवन का अन्तिम सस्कार अंत्येष्टि -सस्कार था जिसे हिन्दू धर्म में बहुत अधिक महत्व प्राप्त था। अवलोकित काल के साहित्य से ये स्पष्ट होता है कि सतीनारी और शौर्यपूर्ण पुरूष के मृत्यु के पश्चात् चिता पर जलकर भस्म हो जाना, यह प्रथा ऐतिहासिक युग मे प्रारम्भ हुई तथा पूर्वमध्यकाल के आगमन तक इस प्रथा ने अपनी जड़े मजबूत कर ली थी। यर्थाथ मे सतीप्रथा इस युग मे वैधव्य के दु:ख से मुक्ति पाने का एकमात्र साधन बन चुका था। समाज मे विधवा स्त्री के लिए सती प्रथा एक क्रूर प्रथा थी। कुछ स्मृतिकारों ने इस धारणा का प्रचार करना भी बद कर दिया जो विधवा स्त्री अपने पति की चिता के साथ ही सती हो जाया करती थी वह सुख का जीवन व्यतीत करती थी। यह भी विश्वास दिलाया गया कि सती होने के बाद उसका पति से पुर्नमिलन होता है। तथा जो स्त्री पति के साथ सती नही होती थी उसे समाज तथा परिवार मे तिरस्कृत माना जाता था।

पूर्व मध्ययुगीन स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु विभिन्न जीविका अपनाती थी गृहस्थ कार्यो के अतिरिक्त कृषि कार्य में सहायता प्रदान करना सिलाई करना, टोकरी बुनना, कढ़ाई करना इत्यादि ऐसे कार्य थे, जिनके माध्यम से महिलाए अपने, परिवार की आर्थिक सहायता करती थी। इसके

अतिरिक्त धन अर्जित करने वाली महिलाओ में गणिकाये, देवदासियाँ, वाराँगनाये, सेवावृत्ति मे सलग्न दासियाँ, ग्वालिन, नाउन, वारवनिताओ का भी उल्लेख किया जा सकता है । समीक्षाधीन अवधि मे समाज मे गणिकाओ की सख्या बहुत अधिक थी। इन्हे मनोरजन एव नृत्य गान हेतु विशिष्ट अवसरो पर आमन्त्रित किया जाता था। उस काल मे गणिकाओ के व्यवसाय को हेय दृष्टि से नही देखा जाता है। ये गणिकाये सौन्दर्य के साथ-साथ चौसठ कलाओ मे निपुण होती थी। राजदरबारो मे इनकी कला का सम्मान किया जाता है। अलबेरूनी के अनुसार अभिजात वर्ग व शासको का विशेष समर्थन व प्रोत्साहन प्राप्त था, क्योकि इस व्यवसाय से राज्य को कर के रूप मे आय होती थी। मदिरो मे ईश्वर की आराधना पूजा व ईश्वर को प्रसन्न रखने के लिए तथा देव मंदिर को गुजायमान रखने के लिए मदिर मे नर्तकियों का होना अनिवार्य था। इस पूर्वमध्ययुगीन विचारधारा के परिणाम स्वरूप देवदासी वर्ग की उत्पत्ति हुई। प्राय: सभी मंदिरो मे देवदासियो का निवास था। यद्यपि हिन्दू समाज मे सभी वर्गो ने देवदासी प्रथा को मान्यता नहीं दी थी, ब्राह्मण तथा सन्यासी वर्ग इसके सख्त विरोधी थी । परन्तु विरोध के बाद भी शासक वर्ग के सरक्षण मे यह प्रथा काफी विकसित तथा प्रचलित हुई।

पूर्व मध्ययुगीन समाज मे महिलाओ का एक ऐसा वर्ग था जिनका कार्य उच्च वर्ग की सेवा करना था वह उनके स्नान, वस्त्र, प्रसाधन, शय्या, आसन आदि कार्यो की जानकारी का ध्यान रखती थी, तथा केशविन्यास, माला गूथना, चन्दन विलेपन, अगराज बनाना इत्यादि कार्यो में अत्यन्त निपुण होती थी। सम्पत्ति के रूप मे भी दासियो का आदान-प्रदान होता था। धनिक वर्ग कन्या के विवाह के समय दहेज के साथ दासियो को भी भेजते थे। दासियों को धात्री, परिचारिका, प्रेष्या, भूजिष्या, दूती आदि नामो से सम्बोधित किया जाता था। हिन्दू धर्म शास्त्रकारो ने

स्त्री के सम्पत्ति विषयक अधिकार का वर्णन किया तथा कन्या को भी पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारिणी माना। परन्तु अधिकाश धर्मशास्त्रकारो ने पुत्र के अभाव मे ही पुत्री को परिवार की सम्पत्ति का स्वामी माना है। पति एव पत्नी दोनो को ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत परिवार की सम्पत्ति का सयुक्त स्वामी माना जाता था। पूर्वमध्ययुगीन व्यवस्थाकारो के अनुसार पत्नी के भरण पोषण का पूर्ण उत्तरदायित्व पति पर था यहाँ तक कि परित्यका पत्नी के प्रति भी उसके भरण पोषण का उत्तरदायित्त्व पति पर ही था। समीक्षाधीन अवधि में स्त्रीधन की परिभाषा अत्यन्त व्यापक हो गयी थी। उत्तराधिकार मे प्राप्त धन, खरीदी हुई सम्पत्ति, बँटवारे मे प्राप्त सम्पत्ति, स्नेहियों से प्राप्त धन, इत्यादि पर स्त्री का पूर्ण स्वामित्व स्वीकार कर लिया गया। यद्यपि इस युग मे विधवा स्त्री को पति की सम्पत्ति को बेचने, गिरवी रखने या किसी को देने का अधिकार प्राप्त नही था। भारतीय दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत विविध अपराधो से सम्बन्धित मुकदमो के फैसले के लिए न्यायालयो की समुचित व्यवस्था थी।

अवलोकित काल के साहित्य से यह पता चलता है कि इस युग मे स्त्रियो की स्वतत्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। किन्तु फिर भी स्त्रियो के आमोद-प्रमोद की तथा मनोरंजन की उचित व्यवस्था थी। विभिन्न धार्मिक त्योहारो, उत्सवो, उद्यान, क्रीड़ा, झूला, नृत्य, सगीत तथा सामाजिक एवं धार्मिक परिचर्चा मे स्त्रियाँ भाग लेती थी। हिन्दुओ के धार्मिक त्योहार प्राय: सभी महत्वपूर्ण ऋतुओ मे सम्पन्न होते थे तथा स्त्रियो एव बच्चो द्वारा अत्यन्त ही उल्लास के साथ मनाये जाते थे। हिन्दू समाज मे इन महत्वपूर्ण त्योहारो के रूप मे बसन्त पचमी, होली, दिपावली, शिवरात्रि, एकादशी इत्यादि के त्योहारो का विस्तृत वर्णन इस युग के साहित्यो से प्राप्त होता है। विवाह स्वयवर एव अन्य अवसरो पर उत्सवो का

आयोजन किया जाता था। स्त्रियाँ वस्त्र–आभूषणो को पहनकर गीत एव नृत्य मे भाग लिया करती थी।

साहित्य मे वर्णित कन्दुक–क्रीड़ा, जल क्रीड़ा, दोलाकेलि–गुडियो का खेल, कथा कहानी एव पशु–पक्षी, विनोद इत्यादि महिलाओं के मनोरजन के विविध लोकप्रिय माध्यम थे। स्त्रियाँ ललित कलाओ मे भी अत्यन्त निपुण होती थी। जैसे चित्रकला नृत्य एव संगीत इत्यादि । ये स्त्री शिक्षा के अनिवार्य अग बन चुके थे। सगीत तथा नृत्य कला को यथोचित सम्मान राजदरबार मे मिलता था। इसलिए पूर्व मध्यकाल मे नृत्यांगनाओ की उपस्थिति अनिवार्य थी। वैदिक युग मे स्त्री शिक्षा अत्यन्त संतोषजनक थी। किन्तु पूर्व मध्ययुग तक नारी शिक्षा का महत्व कम हो गया था। परदा प्रथा, बाल विवाह तथा अन्य सामाजिक प्रथाओ एव रीति रिवाजो के बन्धनो के कारण स्त्री शिक्षा अवरूद्ध हो गई, लेकिन अभिजात वर्ग की महिलाए घर पर ही निजी शिक्षको द्वारा शिक्षा प्राप्त करती थी। इसमें स्त्रियो को व्यवहारिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक, धर्मशास्त्र एवं गृहविज्ञान सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। पूर्व मध्ययुग राजनीतिक क्षेत्र मे केवल राजपरिवारो की स्त्रियाँ ही भाग लेती थी। सामान्य वर्ग की महिलाओं का प्रवेश वर्जित था। शासन संचालन मे भी स्त्रियो ने बुद्धिमता का परिचय दिया तथा युद्ध क्षेत्र मे भी वीरता का प्रदर्शन किया एवं मातृभूमि की रक्षा हेतु युद्ध किया तथा कुशलता पूर्वक सचालन भी किया। स्त्रियाँ सदैव से ही पुरूषों की अपेक्षा धर्म के प्रति अधिक आकृष्ट थी। धार्मिक क्रिया कलापो तथा ईश्वर मे उन्हं अपार श्रद्धा थी।

साहित्य के माध्यम से किसी समाज के विचार, परम्परा, विश्वास, कार्य और लक्ष्य की सीधी अभिव्यक्ति होती है। ईसा की दसवी शती से लेकर तेरहवी शती तक

बौद्ध एव जैन धर्म प्रधान साहित्य के साथ ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा इतिहास एव साहित्य दोनो की विधाओ से सयुक्त अनेकानेक ग्रन्थो की रचना की गई जिनसे भारतीय समाज और सस्कृति पर विपुल प्रकाश पडता है।

****

<u>अध्याय- द्वितीय</u>

चौदहवी, पंद्रहवी शताब्दी की महिलाओ का सामाजिक स्तर

कन्या जन्म और उसको लेकर प्रचलित मान्यताएं-

भारतीय परम्परा के सैदान्तिक पहलू के अनुसार पारिवरिक सन्तुलन हेतु पुत्र व पुत्री मे कोई भेद प्रतीत नही होता और यह अवधारणा शास्त्रोचित भी है।[1] किन्तु हमारे अध्ययन काल के विवेचन से यह धारणा अनेकानेक कारणो से परिवर्तित हुई तथा निश्चित रूप से समाज मे पुत्र और पुत्री की स्थिति का अन्तर द्रष्टिगोचर होने लगता है। बदलते हुए सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिवेश के कारण कालान्तर मे पुत्री का जन्म परिवार में बहुत सुखदायक प्रतीत नही होता।[2] इस्लाम के आगमन तथा तुर्की सल्तनत की स्थापना के कारण बढती विलासिता की पूर्ति इस्लामी प्रभाव मे पर्दा प्रथा के चलते स्त्रियो के क्षेत्र संकीर्ण एव अधिकार कम होने लगे।[3] हालाकि राजपरिवारो में विशेष रूप से हिन्दु राजघरानो मे जैसा कि राजा रत्नसेन के घर पद्मवती के जन्म से स्पष्ट होता है।[4] समकालीन कतिपय ग्रथो मे पुत्री जन्म को एक विशेष शुभ अवसर के रूप

---

1 **वृहदारण्यक** उपनिष्द, 4 4 18

2 ए0 एस0 अलतेकर, **पोजीशन आफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन**, दिल्ली 1962 पृ0 3

3 अमीर खुसरो कृत **लैलामजनू** उद्धत शिबली शैर उल आजम, भाग-2 पृ0 123 **विद्यापति पदावली** पृ0 256

4 जायसी कृत **पद्‌भावत** सम्पादित वासुदेव शरण अग्रवाल, झासी, पृ0-60, पद सख्या-

मे भी वर्णित किया गया है एव इस अवसर पर खुशिया मनाई जाती रही है[5] अत: यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियो में पुत्र का जन्म नि:सदेह महत्वपूर्ण कार्य था, एक तो वश चलाने के लिये और दूसरा युद्व के वातावरण मे योद्वाओ की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए, तथापि पुत्री का जन्म भी परिवार मे स्वीकार्य था एव उसे भी महत्वपूर्ण माना जाता था।

इसी साक्ष्य मे ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दु राजकुलो मे स्त्री शिक्षा का भी प्रर्याप्त महत्व था।[6] लडकियो का शिक्षित व प्रशिक्षित होना, उनकी सुन्दरता के साथ-साथ एक सकारात्मक गुण माना जाता था।[7] शिक्षा दीक्षा के क्षेत्र मे चौदहवी, पन्द्रहवी शताब्दियो मे प्राय: काल की आवश्यकतानुसार धार्मिक ग्रथो के पठन पाठन पर विशेष जोर होता था।[8] ऐसा प्रतीत होता है कि सुन्दरता व शिक्षा के गुणो से युक्त विदुषी कन्याए परिवार मे सम्मान की भागी होती थी।[9]

51, तथा पृष्ठ-61, पद सख्या-52

5 **चादायन,** डा0 माता प्रसाद गुप्त, प्रकाशन, आगरा प्रथम सस्करण 1967, पद-32, पृ0-30-31, ''महर की कन्या चादा के जन्म के अवसर पर बधावे बजे तथा उत्सव मे छत्तीस जातियो एव सम्पूर्ण नगर को आमन्त्रित किया गया।''

6 **जायसीकृत पदमावत** सम्पादित वासुदेव शरण अग्रवाल, झासी, पृष्ठ-62 पद सख्या-53

7 वही

8 वही

9 वही तथा **अलतेकर** पूर्वोक्त पृष्ठ 9 तथा, गौरी शकर हीरा चन्द्र ओझा, **मध्यकालीन भारतीय सस्कृति** इलाहाबाद 1957 पृ0 119 -

बाल विवाह :

समय समय पर परिस्थितियो मे परिवर्तन के कारण जिस प्रकार सस्थाओ का प्रारूप बदलता रहा, उसी प्रकार नई नई विचारधाराओ का समागम होने के कारण विवाह की आयु मे भी सदैव परिवर्तन होते रहे। परिवर्तित राजनीतिक व सामाजिक परिवेश के कारण मध्य युगीन भारत मे अल्प आयु मे विवाह का प्रचलन अधिक हो गया था स्त्रियो की सुरक्षा व इस्लाम के प्रभाव के कारण भी विवाह की आयु घटती चली गयी तथा बाल विवाह प्रचालित हो गया।[10] अलबेरूनी के अनुसार हिन्दू बहुत छोटी अवस्था मे विवाह करते है अत: उनके माता पिता अपने पुत्रों का विवाह निश्चित करते है। बारह वर्ष से अधिक उम्र की स्त्री से विवाह करने का विधान नही है।[11] हमे अपने अध्ययन काल मे इस प्रकार के साक्ष्य प्राप्त होते है[12] बारह वर्षीय कन्या को विवाह योग्य सयानी मान लिया जाता था —

बारह बरिस माँह भइ रानी। राजै सुना सजोग सयानी।[13]

ढोला मारू रा दुहा नामक एक राजस्थानी कृति मे हमे मारवानी के विवाह का उल्लेख मिलता है। मारवानी की आयु विवाह के समय मात्र डेढ वर्ष एव उसके वर की आयु मात्र तीन वर्ष की थी।[14] विवेच्य युगीन साहित्य मे राजपूतो में बाल

---

10 अमीर खुसरो, **देवलरानी, खिज्र खॉ** पृष्ठ स0 93

11 **अलबेरूनीज इडिया** भाग - 2, सचाऊ, पृ0 261 तथा अलतेकर पूर्वोक्त पृ0 58

12 मुल्ला दाउद कृत **चादायन** पृ0 290 पद 296

13 **पदमावत,** जायसी, माता प्रसाद गुप्त, पृ0 63, पद - 54

14 **ढोला मारू रा दुहा** नागरी प्रचारिणी सभा द्वितीय सस्करण दोहा - 91, पृ0 21 दौध बरसरी मारूनी, त्रिहुन वरसानरूकन्त बलपनाय परायण पछाई, अतर-पदयोन अनत

विवाह के अनेक उदाहरण मिलते है ।[15] विवाह के सबध मे कोई आयु सीमा सम्बन्धी स्थापित मानदण्ड नही थे । ऐसा समकालीन साक्ष्यो के विवेचन से प्राप्त होता है। अभिभावको की इच्छा ही विवाह का एकमात्र निर्णायक आधार हुआ करती थी। स्त्री को विवाह आयु मे परिवर्तन या विदाई अवधि का विकल्प चुनने की स्वतत्रता नही थी कभी कभी एक बालक का विवाह भी एक युवती से हो जाता था जो बालक से बहुत अधिक आयु की हुआ करती थी, इस प्रकार के बाल विवाह का उल्लेख विद्यापति की पदावली में मिलता है ।[16]

विवाह :

हिन्दू सस्कृति मे विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है जिसे एक सामाजिक, धार्मिक सस्कार के रूप मे ग्रहण किया गया। पुरूष और स्त्री के व्यक्तित्व का विकास, वश का उत्थान तथा परिवार का सयोजन विवाह से ही सम्भाव्य है। विवाह स्त्री पुरूष की पूर्णता तथा उनकी सामाजिक और आध्यात्मिक अभिव्यजना का आधार है। वश, कुल और परिवार की निरन्तरता विवाह सस्था से ही बनी रही है।

विवाह के सबंध में यह मान्यता रही है कि विवाह के साथ साथ दुःख सम्प्रक्त है क्योकि विवाहोपरान्त पुत्री को माता पिता से अलग होना पडता है तथा अपरिचितो के बीच नया जीवन व्यतीत करने को वह विवश होती है—

---

15 दाउद कृत **चादायन** डा0 माता प्रसाद गुप्त पृ0 32 पद – 34 –35

16 **विद्यापति की पदावली,** सम्पादक श्री बसन्त कुमार माथुर, भारती भाषा भवन, दिल्ली 1952 पद – 258 (बाल विवाह) पृ0 460

''कबीर हसि हसि कत न पाइए, जिनि पाया जिनि रोइ

जे हासै ही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागणि कोई ।''[17]

उपरोक्त से यह भी स्पष्ट होता है कि मध्यकाल मे ऐसी मानसिकता की स्थापना हो चुकी थी जिसके अनुसार विवाह हो जाना अथवा पति प्राप्त कर लेना ही स्त्री की एक बडी उपलब्धि होती थी।[18] इसी लिए पुरूष पर आश्रित स्त्री को मर्यादानुसार एक विवाह करने पर ही बल दिया गया तथा कबीर स्त्रियो के बहुविवाह पर विशेष रूप से कटाक्ष करते है।[19] वैसे भी सुहागिन स्त्री को मध्य कालीन मान्यता के अनुसार सुखी स्त्री माना गया साथ ही बहु विवाह को व्यभिचार कहकर क्लकित करके स्त्रियो से उच्च नैतिक स्तर की प्रत्याशा की गयी,

''एक सुहागनि जगत पियारी।

सकल जीव जत की नारी ॥

खसम मरै वा नारि न रोवै। उस रखवाला औरै होवै ॥

रखवाले का होइ बिनास। उतहि नरक इत भोग विलास ॥

सुहागनि गालि सो है हार। सतनि विष बिलसै ससार ॥''[20]

---

17 **कबीर ग्रन्थावली**, सम्पादित, माता प्रसाद गुप्त पृ0 17 साखी 29,

18 वही

19 डा0 राम कुमार वर्मा, **संत कबीर** इलाहाबाद 1966 पृ0 5, पद 3

20 **कबीर ग्रन्थावली,** पूर्वोक्त पृ0 365-66 पद 9 तथा **मृगावती** सम्पादित डा0 माता प्रसाद गुप्त, आगरा 1968 पृ0 76 पद -97

अत· उस काल मे सखियाँ व बुजुर्ग सभी नवविवाहिताओ को सदा सुहागिन रहने का शुभ सदेश व आर्शीवाद देते थे जिसका प्रचलन आज भी है।

जरम सुहागिनी होइहु रानी। जब लगि गाग जउन मह पानी।।[21]

इसी प्रकार मृगावती के सपत्नी कलह खण्ड से मध्य कालीन भारत मे प्रचलित बहुपत्नीत्व प्रथा पर प्रकाश पडता है वही यह भी स्पष्ट होता है कि सुहागिन की यह अवधारणा जोर पकड़ती जा रही थी कि मात्र विवाहिता होने पर सुहागिन मानना पर्याप्त होगा अपितु सुहागिन उस स्त्री को मानना चाहिए जिसे मायके व ससुराल दोनो ही स्थानो पर समान भाव से स्नेह व आदर प्राप्त हो।इसी प्रकार सुहागिन स्त्रियाँ प्राय: प्रशसा की पात्र होती थी—

जहँसोवै सुख सेज्या, सोहागिनी, तीनीभुअन अजिआरि।

लै पालक तह डोसा समकै देखा रूप उन्हारि । ''[22]

समकालीन साक्ष्यो से ऐसा विदित होता है कि बहुविवाह तथा विशेष कर बहुपत्नीत्व की प्रथा राजघरानो एवं समृद्ध परिवारो तक ही सीमित थी जिसके परिणाम स्वरूप पारिवारिक कलेश, प्रतिद्वन्दिता एव गृह कलह व राजनैतिक दावपेच पर्याप्त देखने को मिलते हैं।[23]

---

21. **मृगावती** पूर्वोक्त पृ0 305, पद 353

22 **मृगावती** पूर्वोक्त, पृ0 342 पद 396

23 **मृगावती** पूर्वोक्त पृ0 340 पद - 394 तथा दाउद दलमई कृत **चादायन** बम्बई 1964 छन्द 13 पृ0 95-96

उपरोक्त से ऐसा प्रतीत होता है कि सजातीय पत्नियाँ अन्य पत्नियो की तुलना मे अपने को श्रेष्ठ मानती थी ।[24]

अपनी रचना चदायन मे मौलाना दाउद दलमई ने दास मेहर की चौरासी पत्नियो का उल्लेख किया है ।[25]

यही नहीं बहुविवाह प्रथा के कारण सपत्नियो मे द्वेष होना स्वाभाविक था जिसके परिणाम स्वरूप गृह कलह का भी उल्लेख तत्युगीन अनेक रचनाओ मे मिला है। [26] इस प्रकार सौतिया डाह हो जाना स्वाभाविक था जिसके अनुसार नारी सब कुछ सहन कर सकती है, किन्तु पति प्रेम का बॅटवारा नही सहन कर सकती ।[27]

सौतो के मध्य की कलह का विस्तृत वर्णन मृगावती मे प्राप्त होता है - लागिसी करइ सौति कर दाई।

''खरभरि सुनी सासु बहुअन कै आई तेहिवां धाई।

बहुअन्ह जूझि बिसरि गई सासु जो पहुँची आई ।।[28]

उपरोक्त पद से यह स्पष्ट हो जाता है कि भले ही स्त्री दूसरी पत्नी के रूप मे किसी घर मे प्रवेश करे फिर भी उससे आशा की जाती थी कि वह पति के समक्ष पूर्ण समपर्ण करेंगी, उपरोक्त पद से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियो और विशेषत: पत्नियों से उपेक्षा की जाती थी वे पतियो की इच्छाओ को क्षीरोद्धार

---

24 वही

25 मौलाना दाउद दलमई कृत **चन्दायन,** प्रकाशक हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर, बम्बई 1964 छन्द 13 पृ0 95-96

26 **चन्दायन** पृ0 243-244, छन्द 25

27 दाउद कृत **चदायन**, पृ0 156 छन्द 17

28 **मृगावती** पृ0 343-344 पद - 398-399

मानेगी इससे यह भी सुस्पष्ट है कि किसी भी मूल्य पर विवाहित स्त्री को छोडा नही जा सकता है ।[29]

दहेज प्रथा :

वैदिक युग से ही कन्या विवाह के साथ कन्या को धन आदि से समृद्ध करके विदा करने का प्रचलन रहा है, विशेष रूप से वस्त्र आभूषण आदि प्रदान किये जाते थे ।[30] यह प्रथा शनै शनै दान से पृथक होकर विशुद्ध रूप से दहेज का रूप धारण करने लगी। अत: पूर्व मध्ययुग मे इसके सस्कार सामाजिक धार्मिक न होकर सामाजिक आर्थिक हो गये क्योकि उस युग के सामन्तीय परिवेश मे दहेज लेना व देना सामाजिक स्तर का द्योतक हो गया [31] प्रारम्भ मे तो यह प्रथा राजपरिवारो कुलीनो व सम्पन्नों मे ही अधिक प्रचलित थी। अलबरूनी ने हिन्दुओं की विवाह विधि का वर्णन करते हुए लिखा है। कि दहेज का सामान्य प्रचलन नही था, अपितु पति अपनी पत्नी को उपहार देता है जिस पर पति का कोई अधिकार नही होता किन्तु स्वेचछा से पत्नी इसे वापस कर सकती थी ।[32] यह प्रथा हिन्दुओ के साथ साथ मुस्लिमों मे भी प्रचलित हो गई जहां इसे जहेज के नाम से सम्बोधित किया गया ।[33] पूर्व मध्य काल मे शनै: शनै: दोनो

---

29 **मृगावती,** पूर्वोवत, पृ0 318- पद 369

30 **अथर्ववेद** 14 1 13 मनु 7 1 94 साथ ही देखिए धम्मपद टीका 1 7 3

31 ए0ए0 अलतेकर, **पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन** पृ0 71

32 **अलबेरूनीज इण्डिया** सचाऊ भाग 2 पृ0 154

33 के0पी0 जायसवाल   रिसर्च इस्टीट्यूट पटना, खण्ड 1, **अफसाना ए-बादशाही या तारीख ए अफगानी** के फेरो प्रिण्ट के पृ0 439 पर दहेज का उल्लेख

समुदायो द्वारा मान्यता प्राप्त होने के कारण इस काल मे दहेज प्रचलित हो गया।[34] अत: साहित्यिक साक्ष्यो से यह सुस्पष्ट है कि विवाह के दौरान लडकी के पिता से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह दहेज मे अनेक प्रकार की वस्तुए अपनी पुत्री व दामाद को देगा।[35] चादायन के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि राज परिवार सामन्त एव धनी वर्ग दहेज के रूप मे अचल के साथ साथ चल सम्पत्ति भी प्रदान करते थे—

''गाउ तीस मल दइजे पाए ।[36]

जहाँ तक दहेज का प्रश्न है जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है कि धनी सामन्त वर्गो मे यह प्रथा प्रचलित थी और वे अधिक से अधिक दहेज देना ।अपनी प्रतिष्ठा एव समृद्धि का द्योतक मानते थे।[37] सामन्त वर्गो व राज घरानो मे ंदहेज के अन्दर सुन्दर कीमती वस्त्र स्वर्ण रत्न आभूषणो के साथ साथ घोडो तथा हाथियो तक के दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[38] ये उपहार वर तथा वधू पक्ष की सामाजिक स्थिति के अनुसार ही दिये जाते थे, तथा इन उपहारों मे विशेष कर बहुमूल्य जवाहरात, तथा धातुए, आभूषण, स्थावर सम्पत्ति घोड़े, हाथी, रथ, अनुचर और उपचारिकाए तथा जीवन की आावश्यकताओं और विलास की अन्य सामग्रिया

---

34 ॠतु जायसवाल, ''**वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फ्राम द 10 टू द 13 सेन्चुरी एस द डिपिक्टेड इन द कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिटरेचर**'' इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0फिल0 उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध पृ0 56 से 58

35 **सूरसागर** पृ0 543 पद 4808 तथा पृ0 543 - 544 पद 4810

36 **चादायन** पूर्व पृ0 40 पद 42

37 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 478 पद 386

38 वही, पृ0 477, पद 385 **मृगावती** पृ0 121, पद 150 तथा **मधुमालती** पृ0 147 पद 456

सम्मिलित होती थी।[39] दहेज प्रथा को सामान्यत: धनिको एव सम्पन्न वर्ग के लोगो मे ही आश्रय मिलता था, सामान्य जनता इस प्रथा से कम आकर्षित थी। उपहार के इस स्वरूप को बिहार उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्रो एव राजस्थान मे दहेज अथवा दाइज।[40] के नाम से जाना जाता था ।

परदा प्रथा :

जिस प्रकार से वर्तमान ग्रामीण भारतीय परिवेश मे हम आज भी बहुतायत से स्त्रियो के चेहरे को आवरण युक्त देखते है उसी प्रकार पूर्व मध्य कालीन भारत मे भी चेहरे को आवरण युक्त रखने की प्रथा थी अवश्य ही ऐसा सित्रयो की कुलीनता का परिचायक था, कुल मिलाकर इस पर्दे को ''घूंघट'' कहा गया है। जैसा कि समकालीन साहित्यिक कृतियो से सुस्पष्ट है।[41] मात्र कुलीन व समृद्धपरिवारो की स्त्रियो द्वारा ही इसका प्रयोग होता हो ऐसा भी नही है, तत्कालीन समाज मे वेश्या द्वारा भी चेहरे को आवरण युक्त रखने का विवरण मिलता है।[42] दुपट्टे के महत्व की ओर सकेत करते हुए अमीर खुसरो ने उसकी तुलना सुलतान के ताज से की है।[43] प्राचीन काल मे पर्दा उतना लोकप्रिय नही

---

39 दाउद कृत **चादायन** पृ0 40 पद 42

40 **ढोला मारू रा दुहा,** दोहा 595 पृ0 143 मे प्रसग है कि ढोला और मारवानी के विवाह अवसर पर राजा पिगल दहेज के रूप मे रत्न जटित आभूषण हाथी और अनेक दासियाँ देते है –

''सोवान जटित सिगार, बहु मारवणी मुकलई

गाय हेवार दासी बहुत , दिहिन पिगल शाय''

41 पृथ्वी राज रासो भाग 4 दोहा 286 पृ0 684 दोहा 299 पृ0 658 के एम0 अशरफ **लाइफ एण्ड कन्डीशन आफ दी पीपुल्स आफ हिन्दुस्तान** पृ0 139

42 **पृथ्वी राज रासो,** भाग 4, पृ0 658, दोहा 289

43 अमीर खुसरो कृत **मतलाउल अनवार,** पृ0 226

था परन्तु सामान्यत: घूँघट करना उस काल के नारीत्व का सामन्य लक्षण था इसीलिए पर्दा प्रथा लोकप्रिय हुआ।[44] रामायण और महाभारत से सीता और द्रौपदी का उदाहरण देते हुए एस0 एम0 जाफर महोदय ने मुखावरण को हिन्दू नारी का धार्मिक कर्तव्य माना है।[45] पूर्व मध्य काल मे सामाजिक समारोहो मे स्त्रियो के उठने बैठने की अलग व्यवस्था होती थी, जो कि पूर्णत. आवरण युक्त होती थी।[46] मुखावरण की प्रथा हिन्दू समाज मे मुसलमानो के आगमन के बाद आई इस तथ्य को विद्वान इतिहासकार अस्वीकृत करते है।[47] हिन्दू समाज मे महिलाओ का एकात निवास और घूँघट से चेहरे को ढक कर रखना सम्मान का प्रतीक माना जाता था तथा पर्दा प्रथा समाज मे केवल कुलीनता का प्रतीक था।[48] मध्य काल मे प्राचीन काल से चली आ रही पर्दा प्रथा मुस्लिम रीति रिवाजों से बल पाकर और सशक्त हो गयी। पहले जो शर्म या पर्दा आखों में थी वह अब वस्त्र के आवरण की स्थूल हो चुकी थी।[49] घूँघट का प्रचलन शनै: शनै: बढता ही गया और स्त्रियो से विशेष रूप से बडो के समक्ष व ससुराल मे इसके पालन की आशा की जाती थी।[50] कबीर जैसे समाज सुधारक घूँघट को मात्र मर्यादा का आडम्बर मानते थे इनके मतानुसार घूँघट का महत्व तो बस नई नवेली वधू के

---

44 विन्सेन्ट **ए स्मिथ दी आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इडिया** पृ0 261

45 एस0 एम0 जाफर, **समकलचरल ऐस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया,** दिल्ली 1972 पृ0 198-199

46 हरिवश पुराण, अध्याय 19, उद्घृत **सम कलचरल आस्पेक्ट्स आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया**

47 एस0एम0 जाफर पृ0 201, एन0सी0 मेहता का लेख - **पर्दा** , लीडर , इलाहाबाद मई 1928, एन0एन0ला एन्शियेन्ट हिन्दू पालिटी पृ0 144

48 के0 एम0 अशरफ, **लाइफ एण्ड कन्डीशन्स ऑफ दी पीपुल आफ हिन्दुस्तान** पृ0 172

49 **सूर सागर** पूर्व भाग दो पृ0 16 पद 2439

50 **सूर सागर** भाग 2 पूर्व पृ0 120, पद 2968, पृ0 123, पद 2980, पृ0 198, पद 3358

साथ सम्बद्ध था, क्योकि बाद मे घूँघट नही अपितु उसका प्रचलन ही महत्वपूर्ण हो जाता है। और इसी से वधू का उचित मूल्याकन सम्भव होता था कि वह स्त्रियोचित व्यवहार करती है अथवा नही। घूँघट काढने का गौरव तो दस पॉच दिन ही है कि यह बहू अच्छी आई है सच्चा घूँघट कबीर उसे मानते है जो पवित्र हृदय एव आचरण का परिचायक हो।[51] घूँघट का प्रचलन इतना अधिक हो गया था कि हर अवसर पर स्त्री से घूँघट की अपेक्षा की जाती थी जैसे शादी ब्याह तीज त्योहार मनोरजन तथा दैनदिनी कार्यो के दौरान भी घूँघट उसके वस्त्राभूषण का अविभाज्य अंग बन गया था ।[52] स्त्री से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह ससुराल मे घूँघट अवश्य काढेगी विशेष रूप से ससुराल के बुजुर्गों के प्रति आदर स्वरूप ।[53]

विवाह विच्छेद :

समकालीन साहित्यिक श्रोतो के विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्यत: कुलीन वर्गो मे विवाह विच्छेद का विशेष प्रचलन नही था।[54] हालाकि उपरोक्त साक्ष्यो से यह भी स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि इस वर्ग में बहु विवाह की प्रथा सामान्यत. प्रचलित थी। समृद्ध पुरूष बहु विवाह करने के पश्चात भी सभी पत्नियो को एक साथ रखते थे स्त्रियो के परित्याग अथवा उनसे

---

51 रामकुमार वर्मा, **सत कबीर** पृ0 124, पद 34 सा0 म0 प्र0 लि0 इलाहाबाद 1966

52 **सूर सागर** भाग 2 पूर्व पृष्ठ 85 पद 2784

53 **मृगावती,** डा0 माता प्रसाद गुप्त, पृ0 344 पद 399

54 कुतुबन कृत **मृगावती,** डा0 माता प्रसाद गुप्त, पृ0 318 पद 369

सबध विच्छेद [55] करने की प्रथा को सम्भवत: अप्रतिष्ठ माना जाता था। इसी करण वश हमे अपने अध्ययन काल मे ऐसा एक भी साक्ष्य प्राप्त नही होता है। कुॅअर के माध्यम से जहॉ एक तरफ यह स्पष्ट होता है कि उच्च कुल मे विवाहित स्त्री को स्वामी द्वारा परित्याग का प्रचलन नहीं था, हालाकि उस काल मे बहुविवाह की प्रथा सामान्य थी फिर भी यह सामान्य प्रचलन था कि अभिजात्य पुरूष प्राय· बहुविवाह करते थे। किन्तु दोनो अथवा सभी पत्नियो को साथ ही रखते थे। ऐसा ही उस काल के दिल्ली सुलतानो व मुगल बादशाहो के हरम के अध्ययन से भी स्पष्ट व स्थापित हो जाता है।[56] प्रथम पत्नी के गर्भवती न होने की दशा मे भी तथा वश को आगे बढाने के लिए भी दूसरा विवाह अत्यन्त आवश्यक हो जाता था ऐसा समकालीन साक्ष्यो के प्रमाण से ज्ञात होता है।[57] हालाकि बहुविवाह के पश्चात पारिवारिक शान्ति एवं सतुलन बिगडने का उल्लेख हमे कम से कम कबीर साहित्य में तो प्राप्त होता है कबीर इस भावना को मुखरित करते है [58] कि प्राय: अन्य स्त्री के आगमन से गृह क्लेश स्वाभाविक हो जाता है अत घर की शान्ति के लिए कबीर इस प्रथा के विरूद्ध बोलते पाये जाते है। सम्भवत: पूर्व मध्य काल से विवाह विच्छेद की अनुमति लगभग समाप्त प्राय: हो गयी, इसका मुख्य कारण हिन्दू धर्म सस्कार मे ढूॅढा जा सकता है जहॉ धर्म शास्त्र कार विवाह को एक पवित्र संस्कार समझते थे अत: विवाह

---

55 वही

56 कुतुबन कृत **मृगावती,** डा0 माता प्रसाद गुप्त, पृ0 318, पद 369

57 राम कुमार वर्मा, **सत कबीर** पृ0 122 पद 32, सा0 म0 प्रा0 लि0 इलाहाबाद 1966

58 **कबीर ग्रन्थावली,** डा0 माता प्रसाद गुप्त, पृ0 194 पद 81

विच्छेद अकल्पनीय था।[59] अपितु ऐसा चलन पूर्व मध्यकाल से ही प्रारम्भ हो गया था जैसा कि अलबेरूनी के कथन से स्पष्ट हो जाता है।[60]

गृहणी तथा पत्नी के रूप में :

हिन्दू परिवार मे पत्नी को गरिमायुक्त पद प्राप्त रहा, प्राचीन काल से ही इसका स्थान महत्वपूर्ण रहा उसे तथा उसके कर्तव्यो को परिवार के सचालन की धुरी के रूप मे मान्यता प्राप्त रही पतिव्रत धर्म एव पति की सेवा उसका कर्तव्य माना गया। ऐसी स्त्री जो इस धर्म का पालन नहीं करती हैउसे आदर योग्य नही माना जाता।[61] इसी मे स्त्री एव परिवार का सुख निहित माना जाता था।[62] पति सेवा के बिना स्त्री का कल्याण सम्भव ही नही माना जाता था, पति चाहे मूर्ख हो रोगी हो, पत्नी को पूर्ण समर्पण भाव से उसकी सेवा करनी चाहिए —

''इहि विधि वेद मारग सुनौ

कपट तजि पति करौ पूजा, कहा तुम जिय गुनौ

कत मानहु भव तारौगी और नाहि उपाइ

ताहि तजि क्यों विपिन आइ, कहा पायौ आइ

---

59 ऋतु जायसवाल, **वूमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फ्राम दी 10 टू दी 13 सेन्चुरी एस डिपिक्टेड इन द कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिटरेचर.** इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0फिल0 उपाधि प्राप्त अप्रकाशित शोध प्रबन्ध

60 **अलबेरूनीय** इण्डिया सचाऊ भाग 2, पृ0 154

61 **कबीर ग्रन्थावली** माता प्रसाद गुप्त पृ0 130 पद 2 साथ ही देखिऐ सूरसागर पृ0 97, पद 352

62 **सूरसागर** नददुलारे बाजपेयी पृ0 430– पद 1418

विरध अरू बिन भाग हूँ कौ, पतित सौ पति होइ

जउ मूरख होइ रोगी, तजै नाही जोइ

यह मै पुनि कहत तुम सौ, जगत मै यह सार

सुरपति, सेवा बिना क्यों, तारौगी संसार।''[63]

अत· पत्नी को दासी के रूप मे व पति को स्वामी के रूप मे प्रतिबिम्बित करने का प्रयास मध्य कालीन साहित्य मे किया जाता था। पति की उदासीनता बहुत बडा दण्ड माना जाता था। उससे यह प्रत्याशा की जाती थी कि पति चाहे तो उसका अग भी चीर दे किन्तु पत्नी उफ तक न करे।[64] जहाँ कहीं भी स्त्री का उल्लेख हुआ है वहाँ उसे पतिव्रता पत्नी के रूप में गरिमा प्रदान की गई है स्त्री के मूल्याकन का उस काल मे उसकी स्वामी निष्ठा का आधार थी।[65] जहाँ कही भी पति का उल्लेख है वहां पत्नी को ऐसे दर्शाया गया है जैसे प्रियतम की सेवा ही उसका एक मात्र कर्तव्य है।[66] जो भी स्त्री पतिव्रत धर्म का पालन नही करती थी उसकी उस काल के साहित्यकारो ने घोर निदा की है क्योकि वह कुल लाज व कुल धर्म को वरीयता देते हुए उसके महत्व को स्पष्टत· रेखाकित करते थे।[67] ऐसी स्त्रियो को कुलटा आदि विशेषणो से सम्बोधित करने मे मध्ययुगीन साहित्यकारो

---

63 **सूरसागर** प्रथम खण्ड, पृ0 485, पद 1634

64 रामकुमार वर्मा **सत कबीर** पृ0 125 पद 35 तथा पृ0 120 पद 30

65 वही, पृ0 68 पद 1

66 वहीं, पृ0 53 पद 50

67 **सूर सागर** भाग दो, पृ0 130 पद 3019

को कोई हिचक नही है।[68] प्राय: स्त्रियो की प्रशसा करते हुए इसी गुण को मुख्य आधार माना जाता था।

"ए कुलवति सुरूप सुलखिनि" अवट की पुजई कोइ

'बरी' बियाही उतिम सुबसी अरू घी कि सरबारि होइ"[69]

विधवा स्त्री

चूँकि समाज मे सुहागिनों का महत्व था अत. विधवाओ के लिए जीवन बहुत दुश्कर होता थाा, सामान्यतया आलोच्यकालीन समाज मे विधवा की स्थिति अत्यन्त दयनीय नियन्त्रित और दुखद थी।[70] अलबेरूनी ने समकालीन समाज मे उसकी स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि विधवा के रूप मे जीवित रहने पर उसके साथ सम्पूर्ण जीवन दुर्व्यवहार किया जाता है।[71] कुतुब अपनी मृगावती मे लगभग यह दशा चित्रित करता है।[72]

माँ बनने के लिए स्त्री को अत्यन्त कष्ट कारी परिस्थितियो के दौर से गुजरना पडता है फिर भी मध्य युग मे चूँकि माँ का स्थान बहुत ऊँचा था अत·

---

68 **सूरसागर** भाग एक् पृ0 564-65 पद 1294, तथा चादायन, पृ0 49 पद 21

69 कुतुबनकृत **मृगावती**, पृष्ठ 333 पद 386

70 दी रेहला आफ इब्नबतूता अनुवाद डा0 महदी हुसैन, बडोदा 1953, शकुलता राव शास्त्री **बुमैन इन सेकेन्ड लाज** पृ0 123, **लाइफ एण्ड कडीशन आफ पीपुल आफ हिन्दुस्तान** पृ0 189, **ए राशिद सासोइटी एण्ड कल्चर इन मेडीवल इण्डिया,** कलकत्ता 1969, पृ0 144

71 **अलबेरूनी का इण्डिया**, भाग 3 अनुच्छेद 69, पृ0 155

72 कुतुबन कृत **मृगावती** पृ0 239 पद 280

शायद उस स्त्री से भी यह उम्मीद की जाती थी कि वह एक उपलब्धि के रूप मे इस प्रक्रिया के कष्ट को सहजता से सहन करे।[73] माता के रूप मे स्त्री की स्थिति सदैव दयालु सहृदय रूप मे की गई है। उससे माता के रूप मे यह प्रत्याशा रहती थी कि वह अपने बच्चो के अवगुणो, कुकृत्यो एव अपराधो को नित्य क्षमा करती रहेगी चाहे वह पुत्र अपनी माता को उत्पीडित क्यो न करे।[74] हालाकि कबीर जैसे साहित्यकार ऐसे पुत्रो की निंदा करते हुए उन्हे माया के वशीभूत मानते है। [75] स्त्रियो की दशा के रूप मे अपने ससुराल पक्ष के साथ सबंधो की विवेचना आवश्यक हो जाती है। प्राय· सास को प्रताडित करने वाला चित्रित किया जाता है[76] साथ ही जेठ से भय का आभास होने के सकेत मिलते है किन्तु सास और नन्द की मुख्यत: विरोधी भूमिका रहती है जो सहजता से नवागन्तुक, नवविवाहिता को स्वीकार नही कर पाती।

''ननदी तौन दिये बिनु गारी रहति

सासु सपने हु नहि ढरकौ

माई निगोडी काननि मै लियै रहै, मेरे पायानि कौ खरकौ ।''[77]

यहाँ तक कि सास और ननद को गाली देते हुए भी चित्रित किया गया है,

---

73 **कबीर ग्रन्थावली** पृ0 317 पद 24

74 **कबीर ग्रन्थावली** पृ0 209 पद 110 तथा रामकुमार वर्मा, **सत कबीर** पृ0 102 पद 12

75 **सत कबीर** रामकुमार वर्मा पृ0 113 पद 23

76 रामकुमार वर्मा, **संत कबीर** पृ0 115 पद 25 तथा **कबीर ग्रथावली** पृ0 282 पद 27–28

77 **सूर सागर** भाग 2 पृ0 36 पद 2534 साथ ही देखे पृ0 37 पद 2539 पृ0 37 पद 2538 तथा **मृगावती** पृ0 340 पद 394 पृ0 343–44 पद 398, पृ0 342 पद 396

''सासु ननद हारी दैगारी, सुनति नही कोउ कहति कहारी ।''[78]

शायद उपरोक्त का कारण घर के भीतर का वर्चस्व रहा हो। सास एव ननद जो बहू के काफी पूर्व से घर मे सुस्थापित थी किन्तु बहू के आगमन से एक असुरक्षा का भाव जागृत होता था अज्ञात का भय। बहु अज्ञात थी कैसी होगी, कैसा आचरण होगा, कैसे व्यवहार करेगी अत: आक्रामक व्यवहार को ही सुरक्षा कवच मानकर बहुओ के साथ सासों एव ननदो के ऐसे व्यवहार के ढेरो उल्लेख हमे प्राप्त होते है ।

---

78 **सूर सागर** भाग 2 पृ0 94 पद 2834 तथा **विद्यापति पदावली** पृ0 99 पद 73 पृ0 112 -13 पद 82

अध्याय- तृतीय

संस्कारों में स्त्रियों की भूमिका

हिन्दु समाज मे सस्करो का सयोजित विधान-प्राचीन काल से ही रहा है। मनुष्य का वैयक्तिक और समाजिक विकास करने के किए ही जीवन मे सस्कारो की सयोजना की गई। सस्करों के माध्यम से ही मनुष्य अपनी सहज प्रवृत्तियो का पूर्ण रूपेण विकास करके अपना तथा समाज दोनो का कल्याण करता था। सस्कार का मूल आधार धर्म है जिसके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को उन्नत, परिष्कृत एव सुसस्कृत बनाता है। सस्करों के विभिन्न क्रमिक रूप मनुष्य के जन्म के पहले से ही प्रारम्भ होकर उसकी मृत्यु के बाद भी निरन्तर बने रहे।[1]

सस्कारो का प्रचलन वैदिन युग से ही रहा है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन विभिन्न प्रकार के सस्कारो से आवृत्त रहा है जो समय-समय पर सम्पादित किये जाते रहे है। सस्कारो के विषय मे सूत्रो तथा स्मृतियो मे विस्तार से लिखा गया है। मनुष्य के जीवन मे कितने सस्कार होने चाहिए इस विषय मे धर्म शास्त्रकारो मे मतभेद है। किन्तु प्राय: अधिकाश धर्म शास्त्रकार संस्कारों की सख्या सोलह ही मानते है- गर्भाधान, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूणाकर्म, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केसान्त, समावर्तन, विवाह और अन्त्येष्टि।[2]

---

1 डा0 हेरम्ब चतुर्वेदी अप्रकाशित शोध प्रबन्ध " **द सोसाइटी आफ नार्थ इण्डिया इन द सिक्सटीन्थ सेन्चरी ऐज डिपिक्टेड थ्रू कन्टैम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर**" इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय।

2 ऋतु जायसवाल, "**वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फॉम द 10 टू द.13 सेन्चुरी एज द डिपिन्टेड इन कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर**" इलाहाबाद

वस्तुतः सस्कारों की सख्या इतिहासकारो अथवा धर्मशास्त्रकारो की मान्यता पर ही निर्भर करती थी। समाज मे जितने सस्कार स्वीकार किये गये तथा समय-समय पर जिन सस्कारो का ज्यादा प्रयोग किया गया वे ही अधिक प्रचलित हुए।

गर्भाधान हिन्दू समाज मे किया जाने वाला प्रथम सस्कार है, वस्तुतः विवाह के उपरान्त ही स्त्री का गर्भवती होना ही गर्भाधान है। वैदिक काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक इस संस्कार का प्रचलन रहा। अलबेरूनी के अनुसार विवाह के बाद सन्तान प्राप्ति के लिए व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह गर्भाधान नामक यज्ञ करे।[3] किन्तु लज्जावश इस संस्कार का प्रचलन धीरे-धीरे समाप्त हो गया। कुछ धर्मशास्त्रकारो ने गर्भाधान सस्कार को निषेक, चतुर्थीकर्म अथवा चतुर्थी होम नाम से ही अभिहीत किया है।[4]

स्त्री के गर्भधारण के समस्त काल का बहुत महत्व था प्रत्येक मास मे किस तरह से शैने.-शैने- विकास द्वारा अन्ततोगत्वा शिशु का क्रमिक विकास होता है, उसका पूर्ण विवरण हमे समकालीन साहित्य मे प्राप्त होता है।

''हरितै विमुख होइनर जोइ। मरिकै नरक परत है सोई॥

तहॉ जातना बहु विधि पावे। बहुरौ चौरासी मे आवै॥

चौरासी भ्रमि नर तन पावै। पुरूष वीर्य सौंतिय उपजावै॥

विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 की उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध पृ0-147-148

3 अलबेरूनी इडिया, **सचाउकृत,** भाग-2, पृ0-156

4 ऋतु जायसवाल, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, **वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फ्रॉम द टेन्थ टू द थर्टीन्थ सेन्चुरी एस द डिपिक्टेड इन द कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर** पृ0 149 एव वाद टिप्पणी 9, पृ0 149

मिलि रज वीर्य बेर सम होई। द्वितीय मास सिर धरै सोई॥

तीजे मास हस्त पग होहि। चौथे मास कर अँगुरी सोहि॥

प्रान वायु पुनि आइ समावे। तरकौ इत उत पवन चलावै॥

पचम मास हाड बल पावै। छठै मास इद्री प्रग टावै॥

सप्तम चेतनता लहै सोइ। अष्टममास सपूरन होइ॥

नीचे सिर अरू ऊँचै पाई। जठर अग्नि कौ ब्यापै ताई॥

कष्ट बहुत सो पावै उहाँ। पूर्व जन्म सुधि आवै तहाँ॥

नवम मास पुनि विनती करै। महाराज मम दुख यह हरै।

तै जो मै बाहर परौ। अहनिसि भक्ति तुम्हारी करौ॥

अब मोपै प्रभु कृपा करीजै। भक्ति अनन्य आपुनी दीजै॥

अरू यह ज्ञान चित्त तै टरै। बार-बार यह विनती करै॥

दसम मास पुनि बाहर आवै। तब यह ज्ञान सकल बिसरावै॥[5]

गर्भ के तीसरे माह में पुसवन नाम सस्कार का आरोपण किया जाता है। पुत्र की उत्पत्ति के निमित्त यह संस्कार सम्पन्न होता था।[6] वस्तुत· पुत्र की उत्पत्ति हिन्दू परिवार मे अत्यन्त ही महत्वपूर्ण थी- पुत्र से ही वश और कुल की निरन्तरता बनी रहती थी-, श्राद्ध व पिण्डदान आदि का अधिकार केवल पुत्र को ही दिया

---

5 हरदेव बाहरी व डा0 राजेन्द्र कुमार सम्पादित, **सूरसागर सटीक** भाग-1, लोक भारती प्रकाशन, तृतीय स्कन्द- पृ0-181

6 **आपस्तम्ब गृह्यसूत्र**-14 9, ऋतु जायसवाल के शोध प्रबन्ध के उद्धत

गया था। अतः इस सस्कार के द्वारा पुत्र उत्पन्न होने मे बाधा पैदा करने वाली स्थितियो का देव-पूजन के माध्यम से निवारण किया जाता था। सम्भवत· पुसवन सस्कार का धार्मिक महत्व होने के साथ-साथ कुछ आयुर्वेदिक महत्व भी था।[7] सीमान्तोन्नयन सस्कार गर्भ के चौथे महीने में आयोजित होता था। इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि स्त्री स्वस्थ एव प्रसन्नचित्त रहकर वीर पुत्र को जन्म दे।[8] अलबेरूनी ने तत्युगीन भारतीय समाज मे प्रचलित इस सस्कार का उल्लेख किया है। स्त्री के सुख तथा विघ्न बाधाओ से उसकी रक्षा हो सके इस लिए इस सस्कार का सम्पादन किया जाता था।[9]

हिन्दू विधिवेत्ताओ के द्वारा निर्धारित सोलह प्रमुख सस्कारो में से कुछ का ही पालन प्राय अधिकाश हिन्दुओ मे पाया जाता है जिनमे, जातकर्म, नामकरण, चूणाकरण, उपनयन, विवाह तथा मरणोपरान्त के कर्म- अधिक महत्वपूर्ण होते है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण सस्कार जातकर्म (जन्म अनुष्ठान) पुत्र जन्म के समय सम्पन्न होता था। यह सस्कार इसलिए सम्पादित किया जाता था कि नवजात शिशु पर किसी भी प्रकार की अनिष्टकारी शक्ति का कोई प्रभाव न पड़ने पाये। बालक स्वस्थ प्रखर बुद्धि वाला बनाना ही इस सस्कार का प्रमुख उद्देश्य होता था।[10]

विशेषरूप से इस अवसर पर ब्राम्हणो की सहायता से जातकर्म सस्कार करवाया जाता था:

---

7 ऋतु जायसवाल, "**वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फ्रॉम द टेन्थ टू द थर्टीन्थ सेन्चुरी एज द डिपिक्टेड इन द कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर**" इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृ0-149

8 पूर्वोक्त पृ0-150

9 अल्बेरूनीज इण्डिया, **सचाऊ** भाग-2 पृ0-156

10 देखिए डा0 हेरम्ब चतुर्वेदी अप्रकाशित शोध ग्रन्थ

''जातकर्म कर पूजि पितर सुर पूजन विप्र करायौ

दोई लख धेनु दई तेहि अवसर बहुतहि दान दिवायौ।[11]

इस पूजन के उपरान्त दो लाख गाये तथा बहुत सा दान देने का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

विवेच्ययुगीन मे हमें शिशु जन्म के समय नाल काटने से सबधित कर्मकाण्ड का उल्लेख प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि यह भी एक महत्वपूर्ण सस्कार रहा होगा जिसको सपन्न कराने हेतु दाई इत्यादि महगे एव अधिक नेग की आशा करती थी। विशेष रूप से यह नेग पुत्र जन्म के अवसर पर स्वत: ही बढ जाता था—:

''जसंदा नार न छेदन दैहौ,

मनिमय जटित हार ग्रीवा की, वहै आजु हौ लै हो।

औरनि के है गोपखटिक बहु, मोहि ग्रहएक तुम्हारौ।

मिटि जू गयो सताप जनम कौ, देख्यो नद दुलारौ।

बहुत दिननि की आसा लागी, झगरनि झगरौ कीनौ।

मन मे बिहॉसि तबै नदरानी हार हिय कौ दीनौ।''[12]

---

11 **सूरसारावली** पृ0 65 पद 392

12 **सूरसागर**, दशम् स्कन्ध, पृ0-338-पद-15

पुत्र जन्म के अवसर पर मगलगीत गाने को प्रथा बडी आम थी।[13] मगल गीत गाने के साथ-साथ उक्त अवसर पर चौक पूरने या लगाने तथा नृत्यगायन का कार्यक्रम भी आयोजित होता था:

''जौ पाउँ तौ मगल गाउँ, मोतियनि चौक पुराऊँ

रस करि नाचौ गाउँ बजाउँ, चदन भवन लिपाऊँ[14]''

अत· यह एक हर्ष एव उल्लास का अवसर माना जाता था।

समकालीन साहित्य से हमे इस बात के सकेत प्राप्त होते है कि पुत्र जन्म के अवसर पर अनेक आयोजन सम्पन्न किये जाते थे।[15] पुत्र जन्म के उपलक्ष्य मे बधाई देने की भी प्रथा थी.

''रधुकुल प्रगटे है रधुवीर देस-देस तै टीकौ आयौ रतन कनन मनि हरि

घर-घर मगल होत बधाइ अति पुर बासिनि मीर,

आनंद मगन भये सब डोलत कछु न सोध सरीर,

मागधबदी सूत लुटाये गो गयद हय चीर,

देत असीस सूर चिरजीवौ रामचंद्र रनधीर।''[16]

---

13 डा0 रामकुमार वर्मा, **सतकबीर,** इलाहाबाद, पृ0-1 पद-1 तथा सूरसागर नददुलारे बाजपेयी द्वितीय खण्ड पृ0-71 पद-2724

14 उपरोक्त एव **मृगावती** पृ0 219-220 पद-258

15 **मृगावती** पृ0 9-11 दोहा 13-15

16 **सूरसागर** सटीक नवम स्कन्ध पृ0-248- पद18

शिशु जन्मोपरान्त छठवे दिन छठी पूजन नामक विशेष सस्कार सपन्न किया जाता था।[17] छठी के दिन शिशु को विधि विधान से स्नान कराया जाता था तथा सभी लोगो को इस सस्कार मे सम्मिलित होने तथा भोजनोत्सव मे सम्मिलित होने के लिए आमत्रित किया जात था·

''पॉचउ दिवसु छठी भइ राती, नेउता गोबर छठी अउजाती

घर-घर कहॅ कर टेका' आवा, अह तेहि पाठे (पाछे) बाजबधावा

महरी सहस 'सात' इकआइ, आग मूड सेहुर अन्हवाई

बाभन सभा आइ जो बईठी, काढि पुरानु रासि गनि दीठी''[18]

छठी पूजन बालक तथा बालिकाओ दोनो ही के जन्मोपरान्त एक महत्वपूर्ण सस्कार था जैसा कि समकालीन साहित्य से विदित है:

''भई छठि राति छठी सुख मानी, रहस कोड सो रैनी बिहानी,

भा विहान पडित सब आए, काढि पुरान जनम अरथाए,

उत्तिम धरी जनम या तासू, चॉद उवा भुइँ दिया अकासू

कन्या रासि उदौ जग किया, पदुमावती नाउॅ जिसु दिया।''[19]

छठी के गाने बजाने तथा आयोजन के साथ बारहवे दिन आयोजित बरही नामक संस्कार का उल्लेख भी हमें प्राप्त होता है·

---

17 **पदमावत**- पृ0-61- पद 52 पृ0 62- पद - 53

18 **चादायन,** माता प्रसाद गुप्त पृ0 31-पद-33

19 जायसी कृत **पदमावत,** पृ0 562 पद-52

''बरहै दिन बरहै भौ मारी, नग्र लोग जो नेवता झारी,

दु:खी लोग बैसाइ जैवावा, अमनैकन्ह घर घोर पठावा

मारन्ह घोरा दै बहुराये, भाटिनि सबै पटोर पेन्हाये

जो जाचक जहाँ लगु आवा, जो जस तेहि तस तै बहुरावा

नग्र छत्तीसो जौनि-सवाई, सबके राजे दीन्ह बधाई[20]

इसमे 'छठी' की भाति खाने पीने आदि के साथ धार्मिक सस्कार भी सबद्ध था।[21] 'छठी' अथवा 'बरही' के आयोजन मे खास तौर से गौरी-गणेश के पूजन का आयोजन होता था।[22] तथा अनेक प्रकार के ईश्वर की वदना गाई जाती थी। साथ ही ईश्वर की आरती के साथ-साथ नवजात शिशु की भी आरती उतारी जाती थी, नाइन इस अवसर पर सबके महावर लगाती थी, तथा उसका नेग पाती थी, इसी अवसर पर प्राय: शिशु के लिए झूला अथवा पालने आदि का निर्माण करवाया जाता था।[23] इसी प्रकार इस अवसर पर शिशु को काजल तथा रोली लगाने तथा विधि विधान से स्नान कराने का आयोजन होता था जो मगल गीतों के मध्य सम्पन्न होता था:

''पालनौ अति सुन्दर गढ़ि लयाउ रे बढैया

---

20 मझन कृत **मधुमालती** सपादक डा0 शिवगोपाल मिश्र पृ0-18 जन्मौति खण्ड

21 उपरोक्त

22 **सूरसागर** सटीक, पृ0-352-354 पद-40

23 उपरोक्त

सीतल चदन कटाउ धरि खराद रग लाउ विविध चौकरी बनाउ धाउरै बनैया, पचरग रेसम लगाउ हीरा मोतीनि गढाउ, बहु विधि जरि-करि जरार लयाउ रे जरैया।''24

इस कार्यक्रम का पूर्ण आयोजन प्राय: रनिवास तक ही सीमित हुआ करता था। इस अवसर पर महिलाओ मगल गीत का गायन होता था। तथा नवजात शिशु की न्योछावर उतारी जाती थी तथा इसी दिन ब्राम्हणो द्वारा नवजात शिशु की जन्म पत्रिका अथवा कुण्डली भी बनवाई जाती थी।25 जन्म मूहर्त विचारने का प्रचलन तथा जन्म समय देखकर भविष्यकाल के सबध मे जानकारी प्राप्त करने की पद्धति विशेष रूप से प्रचलित थी.

''भोर मौ पडित जन आये, रासि बारागन जो गरह गनाये

पडित गुनि-गुनि कहा विचारी, होई नरेस छत्रपति मारी''26

नामकरण-

हिन्दू समाज मे सतान को नाम प्रदान करना भी एक सस्कार माना जाता था। जिसे नामकरण सस्कार कहा जाता है। हिन्दू दर्शन मे नाम का अत्यधिक महत्व रहा है। जो शुभ कर्मो और भाग्य का आधार माना जाता है।27

---

24 उपरोक्त पृ0- 354- पद-41

25 **मृगावती** पृ0-11 दोहा-15

26 मझनकृत **मधुमालती**, पृ0-17 जन्मौति खण्ड, तथा **चांदायन**, सम्पादक माता प्रसाद गुप्त पृ0-29-30 छन्द-32 एव पृ0 31, छन्द 33

27 जयशकर मिश्र, **प्राचीन भारत का सामाजिक जीवन**- पृ0-271

समकालीन साहित्यो मे नामकरण सस्कार का सविस्तार वर्णन किया गया है

''गनि गुनि 'पत्रा' देखहु कौन गरह दहु सुद्ध

नाउ धरहु 'निरमल' के लखन देखि 'औ' बुद्धि''28

नामकरण के लिए काल और नार्माथक शब्दो वग भी विचार आवश्यक था।29 हिन्दू धर्मशास्त्रकारो ने नामकरण के चार आधार निर्धारित किये। देवता नाम, मासनाम, नक्षत्र नाम, और व्यवहारिक नाम सतान को प्रदान किये जाते थे। नामकरण सस्कार सम्पन्न कराते समय विभिन्न देवी देवतओ और अपने कुल देवता का पूजन अर्चन होता था।30

अन्नप्राशन-

इसी प्रकार शिशु जन्मोपरान्त अन्नप्राशन का आयोजन भी आवश्यक सस्कार के रूप मे सम्पन्न किया जाता था। अन्नप्राशन मे भी विशेष उबटन स्नान, पूजापाठ सम्पन्न कराने के पश्चात खीर जिसमे शहद एव घी अलग से डाला जाता था, वह बच्चे को चटाई जाती थी।31

---

28 कुतुबन कृत **मुगावती** पृ0-11 पद-15 पृ0 12-पद-16

29 जायसी कृत **पदमावत** पृ0-61 पद-52

30 ऋतु जायसवाल अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, **वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फ्रॉम द टेन्थ टू द थर्टीन्थ सेन्चुरी एज द डिपिक्टेड इन द कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर** पृ0 - 153- 154

31 **सूरसागर** सटीक पृ0-374 पद-89 तथा पृ0-1 पद-17

कर्ण छेदन

बालक तथा बालिकाओ दोनो के ही प्रारम्भिक जीवन काल मे कर्ण छेदन एक आवश्यक सस्कार माना जाता था, जिसमे स्नान ध्यान पूजा पाठ के साथ-साथ लोकगायन तथा खाने-पीने का विशेष आयोजन होता था:

''विधि विहँसत- हर हसँत हेरि हरि जसुमति के धुक धुकी सुउर की

रोचन मरि लै देत सीक सौ सावन निकट अति ही चातुर की

कचन कै दै दुर मगाइ किए कहौ कहॉ छेदनि आतुर की

लोचन भरि-भरि दोउमाता कन छेदन देखत जियमुर की।''32

वर्षगांठ

इसी प्रकार विभिन्न संस्करो के सम्पन्न होते -होते एक वर्ष बीत जाता था, और वर्षगाठ के आयोजन को विशेष सस्कार के रूप मे उत्साहपूर्वक मनाया जाता था.

''अरी मेरे लालन की आजु बरषगॉठि

सबै सखिनि कौ बुलाइ, मगल गान करावो

चदन ऑगन लिपाई मुतियनि चौक पुराइ

उमगि-ॲगनि आनद सौ तूर बजावौ'' 33

---

32 **सूरसागर** सटीक-भाग-1 पृ0-414 पद-180

33 **सूरसागर**- पृ0 376 पद-94

आज भी परम्परागत भारतीय सस्कृति एव पाश्चात्य सस्कृति दोनो मे ही वर्षगाठ का विशेष महत्व है तथा इसका आयोजन सभी घरो मे एक आम बात है।

विद्याध्यन

पाच वर्ष की आयु पर बालक तथा बालिका को विद्याध्ययन अर्जित करने हेतु विधिवत विद्यार्थी के रूप मे प्रविष्ट किया जाता था। सामान्यत: हिन्दु समाज मे विद्यारम्भ के लिए कोई निश्चित अवस्था न थी। वे लिखना, पढना, बोलना व्यवहारगत विधि विधान से परिचित होने के साथ-साथ भाषा साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष धर्म एव गणित का विशेष रूप से अध्ययन करते थे:

> ''पुनि पडित कुँअर मनलावा, एक वचन बहुअर्थ पढावा
>
> जो अस बोल कुअर औरावा, चित्र उरेहे अर्थ बुझावा
>
> थोरे दिन भा कुअर सयाना, वेद-वेद बहु या भाति बखाना
>
> अमर औ अमरू सतभावा पिगल कोक कठ औराबा
>
> व्याकरण जे जेतिरू गीता, गीत गोविन्द अर्थ कोकीता
>
> औ जो ग्रथ ग्यान जोग, पढा अनेग कुमार
>
> निपुन भौ गुन विद्या, बादि न को उपार''34

---

34 **मधुमालती** कथा, पृ0-19

इसी प्रकार कन्याओ की भी पाच वर्ष की आयु से शिक्षा प्रारम्भ होने का उल्लेख पदमावत मे प्राप्त होता है तथा इन्हे भी वही परम्परागत विषयो का ज्ञान दिया जाता था:

''अही जन्मपत्री सो लिखी, दै असीस बहुरे जोतिषी

पाच बरिस महँ मई सोबारी, दीन्ह पुरान पढै बैसारी

मै पदुमावति पडित गुनी''[35]

योग्य राज कन्याओ के वेद, कामशास्त्र[36] छन्दशास्त्र, ज्योतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, पुराण धर्मशास्त्र, उपनिषद, तत्रविद्या, गणित, कल्पशास्त्र, सगीतशास्त्र तथा चित्रकला आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी।[37] मलिक मुहम्मद जायसी रचित समकालीन साहित्य 'चित्ररेखा' से भी नारी शिक्षा की प्रत्यक्ष झलक मिलती है, नयिका चित्ररेखा का विद्यारम्भ पाच वर्ष की अवस्था से होता है। वह गुरू गणेश के निरीक्षण मे अध्ययन करती है। उसका अध्ययन क्रम तब तक निरन्तर चलता रहा है जब तक वह पूर्ण विदुषी नही हो जाती है:

''पाच बरिस मॅह भई सो बारी, रसना अंब्रित बैन संवारी

लाग पढावई गुरू गनेसू, भई पंडित सम सुनी बरेसू''[38]

इसके अतिरिक्त समकालीन साहित्यकार मझनकृत 'मधुमालती' सेभी विक्रम राजकुमारी मधुमालती के विद्यारम्भ का उल्लेख मिलता है। वह पूर्ण शिक्षित

---

35 **पदमावत** पृ0562-पद-53

36 मझन कृत **मधुमालती** डा0 माता प्रसाद गुप्त दोहा- 550 पृ0 395

37 जायसी कृत '**पदमावत**' , दोहा-168, पृ0-161

38 मलिक मुहम्मद जायसी कृत '**चित्ररेखा**' पृ0-81

थी। उसने कामशास्त्र का अध्ययन किया था।[39] मधुमालती अपनी माता के आग्रह पर अपनी प्रिय सहेली प्रेमा को पत्र लिखती है।:

''समाचार जेत इहां के रहे, तै सम लिखि कागर पर कहे।''[40]

वह राजकुमार मनोहर के पास भी प्रेम-पत्र प्रेषित करती है। विवाहोत्सव मे सम्मिलित होने के लिए अपनी अभिन्न सहेली प्रेमा को पत्र लिखकर निमत्रित करती है।[41]

मधुमालती की सखी चित्रसेन की राजकुमारी प्रेमा भी शिक्षित थी। एक अवसर उसने राजकुमार मनोहर को अपनी सहेली मधुमालती का पत्र पढकर सुनाया था। साथ ही उसने अपनी सखी के पत्र का उत्तर कागज पर स्याही से सुन्दर रीति से लिखकर दिया था।[42] कुतुबन प्रणीत पुस्तक की नायिका मृगावती भी शिक्षित थी।[43] उसे कामशास्त्र का ज्ञान था। राजकुमार पंदमावती की शिक्षा पाच वर्ष की आयु से सुन्दर वातावरण मे आरम्भ होती है। उसे विविध प्रकार की शिक्षाए दी जाती है। वह पुराणो का अध्ययन करती है। अध्ययन के बल पर वह पूर्ण विदुषी बन जाती है। रूप लावण्य के साथ-साथ उसकी विद्वता की प्रसिद्धि चतुर्दिक फैल जाती है।[44] वह चित्रकला तथा वीणा वादन मे भी निपुण थी।[45] समकालीन साहित्यो के अध्ययन से हमे पता चलता है कि हिन्दू राजाओ ने अपने

---

39 मझन कृत **मधुमालती** दोहा- 450 पृ0-395

40 वही, दोहा- 400 पृ0-349

41 वही, दोहा0-433, पृ0-379

42 वही, दोहा0 423, पृ0- 370

43 कुतुबन कृत '**मृगावती**' पृ0-143

44 जायसी कृत **पदमावत** दोहा-53 पृ0 62

45 वही- दोहा- 168 पृ0-161

आत्मजो की सर्वागीण एव सम्पूर्ण शिक्षा के लिए समुचित प्रबन्ध किया था। साधारण तथा राजपुत्रो को वेद, वेदाग, व्याकरण, ज्योतिष[46] कामशास्त्र[47] स्मृति, काव्य धर्मशास्त्र, दर्शन आदि की शिक्षा दी जाती थी। मानसिक तथा शारीरिक शिक्षा सहगामी थी।[48] राजपुत्रो की शिक्षा भी प्राय: पाच वर्ष की आयु से आरम्भ होती थी।[49]

विवाह संस्कार-

हिन्दू संस्कृति मे प्रारम्भ से ही विवाह का अपना महत्वपूर्ण स्थान है जो समाजिक, धार्मिक सस्कार के रूप में स्थापित है। विवाहोपरान्त व्यक्ति की नवीन सामाजिक धार्मिक एवं सास्कृतिक स्थिति प्रारम्भ होती है। नि:सदेह विवाह एक स्त्री के जीवन की एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण अवस्था है। समाज मे विवाह का उल्लेख करते हुए अलबेरूनी लिखता है ''कोई भी राष्ट्र एक सुव्यवस्थित वैवाहिक जीवन के बिना अपना अस्तित्व कायम नही रख सकता क्योकि यह उन्नत मन के वीभत्स आवेशो के कोलाहल को रोकता है और यह उन सभी कारणो को नष्ट करता है जो कि मनुष्य के अन्तर्मन मे छिपी हुइ पशुता को उद्वेलित करते है जिसका कारण सदैव विनाश कारी होता है।[50] विवाह शब्द के अनेक पर्याय प्राप्त है जैसे- उद्वाह, परिणय, उपयम, पाणिग्रहण आदि। संस्कार के नियम के आधार पर पाणिग्रहीता शब्द परिणता स्त्री के लिए प्रयुक्त होता था। विवाह का सामान्य

---

46 मझन कृत '**मधुमालती**- छद-57, पृ0-47

47 कुतुबन कृत **मृगावती**- पृ0 - 143

48 मझन कृत **मधुमालती**- छद-58, पृ0-48

49 वही, छन्द-56, पृ0-46-47

50 **अलबेरूनीज इण्डिया** भाग-2 (सचाउ) पृ0 -154

अर्थ था 'विशिष्ठ रूप से वहन करना' अर्थात विवाह मे वधू को विशेष रूप से पिता के घर से पति के घर मे ले जाना है।[51] विवाह का अभिप्राय है समाज द्वारा सन्तानोत्पत्ति के लिए स्थापित दामपत्य सबध की स्वीकृत पद्धति। मध्यकालीन 'कवि मझन' भारतीय नारी वर्ग की इस मर्यादा के पोषक थे, उन्होंने वैधानिक विवाह को ही मान्यता प्रदान की है। वे मधुमालती और राजकुमार तथा प्रेमा और ताराचद का विवाह विधिपूर्वक सपन्न कराते है। साथ ही कन्यादान दहेज, गौना, विदा, इन समस्त रीतियो का यथाविधि उल्लेख करते है। आज भी यदि किसी की कन्या बडी हो जाती है और कन्यादान नही हो पाता है तो लोग उसे हेय दृष्टि से देखते है-

" सबन्ह कहा धी वैस जो होई, पिता ग्रिह मल बोल न कोई

आठ बरित लहि दुहिता बारी, नवांए रहै पिता कहँ गारी"

कन्यादान के पश्चात ही किसी प्रकार का संभाग विहित माना जाता है-

" जौ लगि - पिता न सकल्पै, करै न कन्यादान

तो लगि होई न सुरत रस और सबै रस मान"[52]

प्राचीनतमकाल से विवाह सस्कार पद्वति मे समय-समय पर अनेक विधान जुडते चले गये। जो आज भी समाज मे प्रचलित है। हिन्दू दर्शन के अनुसार मनुष्य जब तक गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करके सन्तानोत्पत्ति नही करता तो वो पितृऋण से उऋण नही हो सकता अतः प्रजनन हेतु गृहस्थाश्रम मे विधिवत प्रवेश

---

51 ऋतु जायसवाल, "**वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी- फ्रॉम द टेन्थ टू थर्टिन्थ सेन्चुरी एज द डिपिक्टेड इन कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर**" इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 की उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध पृ0- 155

52 मझन कृत **मधुमालती** पृ0-40

भी अनिवार्य है।[53] इसी प्रकार गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ भी विवाह सस्कार से होता है अत: विवाह का मानव जीवन मे प्रारम्भ से ही महत्व रहा है। जिसके अभाव मे मनुष्य अनेक प्रकार के मागलिक कार्य से अनुष्ठान जुडते चले गये। अत: इस प्रकार से प्राचीन काल से लेकर आज तक मूलत: विधिविधान अनेक परिवर्तनो के बावजूद वर्तमान समय मे भी प्रचलित है। वैवाहिक अनुष्ठानो के अन्तर्गत सर्वप्रथम कन्या विवाह मे उपयुक्त वर खोजने का उल्लेख प्राप्त होता है। उक्त पुरोहित यथा सामर्थ्य धनधान्य, फल-फूल मिठाई वगैरह वर पक्ष को प्रदान कर कन्या के विवाह का प्रस्ताव रखता है।[54] इसी प्रकार वधु पक्ष द्वारा विवाह के पूर्व की रस्मो के अनुसार टीका करने की प्रथा का भी उल्लेख प्राप्त होता है इसे लगन भेजना भी कहते थे। इसके अन्तर्गत पुरोहित से ही नारियल व स्त्राभूषण मुद्राए व मिष्ठान फल आदि वर पक्ष को पहुचाने की प्रथा थी।[55] वरच्छा तथा तिलक भी विवाह से पूर्व होने वाली रस्म है इसके बाद ही विवाह की तैयारी की जाती है:

> ''मिला सुबस अस उजियारा, भा बरोक औ तिलक सॅवारा''[56]

सर्वप्रथम वर पक्ष के स्वागत हेतु जनवासे की व्यवस्था की जाती थी, जहा पर शादी हेतु वर पक्ष की बारात के ठहरने की व्यवस्था की जाती थी। जनवासे मे

---

53 ऋतु जायसवाल, ''**वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फ्रॉम टेन्थ टू थर्टिन्थ सेन्चुरी एज द डिपिक्टेड कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर**'' इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 की उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध- पृ0-157

54 **पदमावत** समय, छद 19-20, तथा पृ0-372 छद-9 **चादायन** पृ0-33 छद-35

55 ऋतु जायसवाल, ''**वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फ्रॅाम द टेन्थ टू द थर्टिन्थ सेन्चुरी एज द डिपिक्टेड इन कम्टम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर**'' इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी0 फिल0 की उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध- पृ0- 157

56, जायसी कृत **पदमावत**- पृ0-311, पद- 274

खाने-पीने इत्यादि का उत्तम प्रबन्ध किया जाता था।[57] इसी प्रकार कन्या के घर पर बदनवार[58] सजाने का उल्लेख मिलता है जिसे शुभ माना जाता था इसी प्रकार मडप की सरचना का भी उल्लेख मिलता है, जिसे समकालीन इतिहासकार माडव कहकर सम्बोधित करते है:

''आये नाथ द्वारका नीके रच्यों मांडवो छाय

ब्याह केलि-विधि रची-सकल सुख सौज गनी नहि जाए''[59]

उक्त मडप को भाति-भाति से अलकृत करने का उल्लेख भी हमे प्राप्त होता है।

''माडव ऊँचा त्रिव किया खरे, तेहि तर पाट पटोरा परे''[60]

पाच व्यक्तियो के सहयोग से ही मडप की स्थापना की जाती थी

''पच जना मिली मडप छायौ, तीनि जना मिलि लगन लिखाई

सखी सहेली मगल गावै, सुख-दुख माथै हल्द चढाई

नाना रगै भावरि फेरी, गाठ जोरि-बावै पति ताई''[61]

मडप के साथ-साथ मंगल कलश की स्थापना भी आवश्यक मानी जाती थी।[62] जिसे शगुन का प्रतीक होने के नाते शगुन कलश भी पुकारा जाता था।[63]

---

57 **मुधमालती**-मझनकृत पृ0-132, पृ0-143, पद-446 ब्याहखण्ड

58 वही

59 **सूरसारावली** पृ05108 पद-639 तथा कबीर ग्रथावली पृ0 280 पद-24

60 **मधुमालती**- पृ0 -132, **कबीर ग्रथावली**- पृ0-280 -पद- 24

61 **कबीर ग्रथावली** पृ0-280 पद-24

62 **सूरसागर** भाग-1 पृ0-219 पद-645

इसी के साथ लगभग मंगलगान का कार्यक्रम शुरू हो जाता था।[64] कन्या पक्ष द्वारा सुहाग नामक गीत मुख्य होता था जो विवाह के समय गाया जाता था:

''चॉद सुरूज मनि माथे मागू, और गावाहे सब नखत सोहागू''[65]

सर्वप्रथम हमे विवाह विधि के अन्तर्गत वर पक्ष के वधु के घर आगमन का उल्लेख मिलता है। वर पक्ष को 'बारात' सम्बोधन से पुकारा जाता था और इनके आगमन मे स्वागतार्थ वधू पक्ष द्वारा मगलगीत गाने की प्रथा थी·

''दुलहनी गावहू मंगल चार

हम घरि आये हो राजाराम भरतार

तनरत लाई, मै 'मनरत' करिहु पचतत बाराती

रामदेव मौरै पाहुॅनै- आए है, मै जोबन मैमाती

सरीर सरोवर बेदी करिहूॅ, ब्रम्हा वेद उचार

रामदेव सगी भॉवरि लैहूं, धनि धनि भाग हमार

सुर तैतीसू कौतिग आए, मुनियर सहस अढ़्यासी

कहै कबीर हम ब्याहि चले है, पुरूष एक अविनासी''[66]

---

63 **मधुमालती**- पृ0- 132

64 **सूरसागर** भाग-1 पृ0 -219 पद-645, **कबीर ग्रंथावली,** पृ0-280 पद-24

65 जायसी कृत **पदमावत** पृ0-312 पद-275, **चादायन** माता प्रसाद गुप्त पृ0- 52 पद-54

66 **कबीर ग्रथावली** पृ0-140, पद-1, तथा डा0 राम कुमार वर्मा **सत कबीर** पृ0-114- पद - 24, जायसी कृत **पदमावत** पृ0-320 पद-282

तत्पश्चात विधि के अन्तर्गत वेदी के निर्माण के एव हवन का उल्लेख प्राप्त होता है। हवन की वेदी के लिए चारो ओर प्रदक्षिणा करने पर वर-वधू पति-पत्नी हो जाते है। इस प्रक्रिया को भॉवर से सम्बोधित किया गया।[67] भावर के दौरान वर-वधू को सम्बद्ध व एकीकृत करने के लिए दोनो के वस्त्रो को एक गाठ से जोडने की प्रक्रिया भी सम्पन्न की जाती थी:

''गॉठि जोरि कै भॉवरि दिही

रीति चार कुल मही से किही''[68]

भावर के पश्चात ही कन्यादान की मागलिक रीति भी सपन्न होती थी, जिसमे अन्तत: वधू के माता पिता मंत्रोच्चारण के मध्य अपनी पुत्री को वर के हाथो मे सौप देते थे:

''पुनि दै भावरि कुवर पानि वर, वरदायिनी कर राखि

कन्यादान कीन्ह त्रिपविक्रम, देख पित्तर दै साखि''[69]

इसी के साथ मगलगान, वर वधू की आरती व न्योछावर जैसे अनुष्ठान भी किये जाते थे। जिनके परिणाम स्वरूप हिन्दू विवाह का संस्कार सम्पन्न होता था। कन्यादान का सामाजिक, सांस्कृतिक महत्व तो था ही इस पूरी प्रक्रिया का एक धार्मिक महत्व भी होता था इसे मुक्ति के मार्ग में किये गये सत्कर्म के रूप मे उल्लिखित किया गया है:

---

67 पूर्वोक्त

68 **मृगावती,** पृ0-121 पद-150

69 **मधुमालती** पृ0-144 पद-447

''सबन्ह कहा धी वैस जो होई, पिताग्रिह मल बोल न कोई

आठ बरिस लाहे दुहिता बारी, नवए रहै पिता कह गारी''

''जौ लागि पिता न सकल्पै करै न कन्यादान

तौ लागि होइ न सुरत रस और सबै रसमान''70

इसी प्रकार कुछ अन्य छोटे-छोटे संस्कारों का उल्लेख हमे विवाह के अन्तर्गत समकालीन साहित्य मे प्राप्त होता है। जैसे वर का वधू के हाथ को स्पर्श करना तथा कगन की गाठ खोलना अन्य मगल चिन्हो की पूजा इत्यादि करना और इन सब के साथ स्त्री परिजनो का उत्साहपूर्वक गालिया गाना पूरी वैवाहिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अग था:

''कर कवै ककन नहि छूटे, राम सिया क परस मगन भये कौतुक

निराखे सखि सुख कूटे, गावत नारि गारि सब दै-दै तात

म्रात की कौन चलावै, तब कर डोरि छुटे रघुपति जू

जब कौसिल्या माता आवै, पुगी फल जुत जल निरमल धरि-

आनि भारि- कुडी जो कनक की, खेलत जूप सल जुबतिनी मै

हारै रघुपति जिति जनक धी, धरै निसार अजिर ग्रहमंगल

विप्र वेद अभिषेक करायै, सूर अमित आनन्द जनक पूर

सोई सुकदेव पुरानिनि गायो।''71

---

70 **मुधमालती**- पृ0- 59-60

71 **सूरसागर सटीक** पृ0-250 पद-25

विवाहोपरान्त कन्या पक्ष द्वारा वर पक्ष को अपने सामार्थ्यानुसार दहेज दिये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है मध्यकाल मे दहेज का प्रचलन अधिक था और बडी मात्रा मे दहेज दिये जाने का विवरण हमे प्राप्त होता है.

''उत्सव भयो परम आनद को बहुत दायजो दीन्हों

भये विदा दसरथ नृप नृपसो, गयन अवधपुर कीन्हो''[72]

दहेज में प्रायः दिये जाने वाली वस्तुओं का सविस्तार उल्लेख हमे समकालीन सहित्य सूरसागर मे प्राप्त होता है:

''ताराचन्द महथ औराजा, भोर होत तौ दायज साजा

पीठि वाहि, पाखर सोनवानी, आये है सै सहस पलानी

और गज मैमन्त सिह समाना, दायज दीन्ह जगत सम जाना

अमरत समै-जरावन जरा, झापि सहस झापि के धरा

सोनरूप बहुलादि चलावा, मानिक मुक्ता गन तन आवा

कपरा नाउँ जहा लगि, जो मोहि कहै न जाइ

बहस सहस दस आदि कै आगे दिया चलाइ

चेरी सहस तौ सग चलाई, जेहि देखि परै चाद मुरझाई

औ संग यौ ते साठि सहेली, लरिकाई संग साथ जो खेली

बरियाती जत गोहने लाये, बागा सौ सौ तिन्ह समपाये

---

72 **सूर सारावली** पृ0-41 छद-235

भाजन सोने रूप को दिये, पाट पाटबर-गनत न आये

पालकी आठौ टूक जरावा, सुरग पटोरे बीनि उचावा

अग्र कपूर जो प्रमल, कुकम सादि-जवादि

बदाम, छुहारा और चिरौजी बसह, सहसदिय लादि''[73]

अर्थात उस काल मे समृद्ध लोगो या अभिजात्य वर्ग द्वारा सभी जडाउ वस्त्र दिये जाने, स्वर्ण, चादी, माणिक्य, मुक्ता इत्यादि दिये जाने का उल्लेख प्राप्त है प्रायः दहेज का सामान इतना अधिक होता था कि गिना नही जाता था, साथ मे नौकरानिया तक दिये जाने का उल्लेख है, अगर, कपूर, कुकुम, बादाम, छुआरा और चिरौजी वगैरह तक दिये जाने का उल्लेख प्राप्त है।

प्रायः हमे समकालीन साहित्य मे विवाहोपरान्त गौन के उल्लेख प्राप्त होते है। सम्भवतः विवाह कम उम्र मे होने के कारण कुछ वर्ष पश्चात ही गौने का प्रावधान था। गौना ही मूलत. उसकी विदाई होती थी जब कन्या अपना गृह त्यागकर पति के घर के लिए प्रस्थान करती थी।

''हरख मयारे आयेस पावौ, साधि सुदिन प्रस्थान करावौ

आग्या होइ तौ गौन कराई, अपने जन्म भूमि तह जाई

गौन करैं कर साज कराई, अपने जन्मभूमि कह जाई

जौन करै कर साज नराई मधुमालती के संग चलाई

उन्ह की सेवा करि उन्ह बेरा, चाद सताइस जी उन्ह केरा''[74]

---

73 **सूरसागर**-2 पृ0- 134, तथा **पदमावत** पृ0-477, पद - 385

74 **मधुमालती**- पृ0 -149

ऊपर से स्पष्ट होता है, कि गौने हेतु भी दिन आदि पडित से विचार करवा कर निर्धारित होता था, जब अन्ततः लडकी जन्मभूमि या पितागृह परित्याग के लिये तैयार होती थी:

''सुनि कुअन्हि कर गौन अवादा भौ त्रिप दुनौ घर बिसमादा

सुनतहि बात रूप मंजरी, भई अचेत मूरछि भुइ परी

विक्रमराय समुझावै, धी के रहे जस नैहर पावै

ससुरै धी कर होई, निरवाहा मैके काज न धी कर आहा

छाड़ा बाप भाई धरमारा, आजु गौन परदेश हमारा''[75]

किन्तु पितृगृह का परित्याग एव ससुराल के विषय मे अनभिज्ञता के कारण दुख एवं सशंका का वातावरण निर्मित होता था और कम उम्र की वधुये प्राय. घबड़ाकर मूर्छित तक हो जाती थी, अन्ततः मॉ बाप आदि बडे बुजुर्ग लडकियों को समझा बुझा कर विदा हेतु तैयार करते थे। गौने के समय प्रायः माताए एव परिवार की अन्य बडी बूढी महिलाए कन्या को नये जीवन के दायित्वो कर्तव्यो आदि की शिक्षा प्रदान करती थीं, ताकि नव-वधु का वैवाहिक जीवन सफल एव सुखमय हो सके। जिसका विस्तृत विवरण मझनकृत मधुमालती मे प्राप्त होता है·

''फुल अपने कर करबै काजा, सेइब स्वामी छाडि सब काजा

सासुहि उतर न दीजै काऊ, सैदुइ जुनि परवारब पाऊ

---

75 **मुधमालती**- पृ0 163 पद-502 गौन खण्ड, पृ0-169, पद 522, तथा जायसी कृत **पद्मावत्** पृ0 465-66 पद-378

हसि कै पैलब सासु के गारी उलटि उतर न दीजै बारी

सासु कबोल प्रछि सिर लीजै, ऊँच बोल सुन उतर न दीजै

सौतिन्ह सौ जो करब मिताई रहब एक जनु जननी की नाई

उँच बोल जनि बोलहू, रिस राखेहू मन भारि

सतति लाज धरब जिउ कुल नहि आवै गारि''76

मझन सम्पूर्ण काव्य के माध्यम से भारतीय समाज को जो शिक्षा देना चाहते है वह है माता की पुत्री को शिक्षा, आज भी अपनी लडकियो को विदा करते समय माताए सजल नयन हो पति सेवा का प्रथम पाठ पढाती है वह उसे कहा तक कार्य रूप मे परिणत करती है कहा नही जा सकता, किन्तु शिक्षा का अक्षर-अक्षर व्यवहारिक रहता है और यदि वे उसे सुनकर सच्चा अर्थ समझ लेती है, वर्तमान युग मे शिक्षा और विलम्ब से विवाह होने के कारण सम्भवत· ऐसे उपदेशो की कोई आवश्यकता प्रतीत नही होती, किन्तु अनुभव गम्य होने के कारण सदैव ही मान्य रहेगी और उनकी शिक्षाए विपत्ति के समय आलोक स्तम्भः

''साई सेवा करब चित लाये, जनि डोले चित दांये बाये

महादुष्ट जो पुरूष को जाती चित्त परखत रहबै दिन राता

कहेहु सेवादि न जानेहु जैसे सगरी रैनि गोड चापब जैसे

जौ धै बाह उकारै सगा, बेलसि सेज सुख मानेहु रंगा''77

---

76 **मधुमालती** कथा-152

77 मझन कृत **मधुामलती** पृ0-46

इस प्रकार हम कह सकते है कि समकालीन साहित्य मे कन्यादान गौना, विदा की समस्त रीतियो के द्वारा विवाह सम्पन्न होने का उल्लेख प्राप्त होता है।

सती-

मध्यकालीन हिन्दू समाज मे विधवा स्त्री के लिए सती होकर अपना जीवन समाप्त कर देना अथवा जीवित रहकर कठोर सामाजिक नियमो का पालन जीवन पर्यन्त करते रहना यही दो प्रारब्ध थे।[78] हिन्दू समाज मे पति के साथ स्वय को प्रज्वलित अग्नि मे भस्मकर लेने की प्रथा अत्यन्त प्रचलित हो चुकी थी।[79] धार्मिक ग्रथों मे यह उल्लेख है कि पति की मृत्यु के साथ सती हो जाने वाली स्त्रियो को स्वर्ग की प्राप्ति होती है उन्हे पुनः जन्म नही लेना पडेगा।[80] सती होने के समय स्त्री अपने पूर्ण श्रृगार मे होती थी। जिस प्रकार वह विवाह के समय होती थी:

''पदुमावती नइ पहिरी पटोरी, चली साथ होइ पिय की जोरी

सुरूज छपा रैनी होइ गई, पूनिवं ससि सो अमावस भई

छोरे केस मोति कर छूटे, जानहूं रैनि नखत सब टूटे

सेदूर परा जो सीस उधारी, आगि लाग जनु जग अधियारी

---

78 देखिए डा0 हेरम्ब चतुर्वेदी अप्रकाशित शोध ग्रथ पूर्वोक्त

79 **पदमावत** पृ0- 874 - पद-650

80 जायसी कृत **पदमावत्** पृ0-872 पद- 648

सारस पखि न जियै निनारे है, तुम्ह बिनु का जियौ पियारे

नेवछावरि कै तन छेरि आवौ, छार होइ सगि बहुरिन आवौ

दीपक प्रीति पतगा जेउँ जनम निबाह करेउँ

नेवछावरि चहुँ पास होइ कठ लागि जिउदेउ''81

जब स्त्री सती होने के लिए जाती थी तो हाथ में सिघौरा (सिदूर पात्र) लिए होती थी,82 क्योकि सिघौरा ही वास्तव मे सुहाग का प्रतीक माना जाता था:

''सती होइ कह सीस उधारी, धन मह बिज्जू धाय जस मारी

सदुर जरै आगि जनु लाई, सिर की आगि सभारि न जाई''83

अर्थात सिर उघाडना वैधत्य का चिन्ह समझा जाता था।

अलबेरूनी के अनुसार विधवा के रूप मे जब तक स्त्री जीवित है उसके साथ बुरा व्यवहार किया जात है।84

निस्सदेह हिन्दू स्त्री के जीवन मे सबसे दु:खद घटना उसके पति की मृत्यु होती थी। हिन्दुओ मे, निम्न वर्गो के लोगो के अतिरिक्त अन्य सभी वर्गो मे विधवा विवाह की अनुमति न थी। विधवा को या तो अपने मृत पति की चिता पर या पति की मृत्यु के तुरन्त बाद एक अलग चिता पर जलकर मर जाना पडता था। यदि ये दोनो बाते न होती थी अर्थात वह पति की मृत्यु के बाद जीवित रह जाती थी तो

---

81 पूर्वोक्त

82 **कबीर ग्रथावली** पृ0-219, पद 128

83 **पदमावत,** पृ0- 496, पद - 402

84 **अलबेरूनी का भारत** भाग-3, अनुच्छेउ 69, पृ0- 199

उसे एक सादा और पवित्र जीवन बिताना पडता था। जिसमे किसी तरह का आकर्षण नही रहता था।[85] हिन्दू विधवाओ की दयनीय स्थिति और सती प्रथा की चर्चा करते हुए अलबेरूनी लिखता है कि "यदि किसी स्त्री का पति मर जाता है तो वह किसी अन्य पुरूष से विवाह नही कर सकती उसे सामने केवल दो ही रास्ते बच जाते है" या तो वह आजीवन विधवा रहे अथवा जल मरे और दूसरी बात अर्थात उसके जल मरने को उत्तम समझा जाता है क्योंकि विधवा के रूप मे जीवित रहने पर उसके साथ सम्पूर्ण जीवन, दुर्व्यवहार किया जाता है। जहा तक राजाओ की पत्नियो का सबध है उन्हे, चाहे वे चाहे या न चाहे जल कर मर ही जाना पडता है और इस प्रकार यह प्रबंध किया जाता है कि वे कुछ ऐसा न कर बैठे जो उनके स्वर्गीय महान पति की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हो इस सबध मे उन्ही विधवाओ को छोडा जाता है जिनकी उम्र बहुत अधिक हो गई होती है और उन्हे जिनको की बच्चे होते है, क्योकि पुत्र अपनी मॉ का उत्तरदायी सरक्षक समझा जाता है।[86] सती प्रथा से सबधित धार्मिक कृत्य या तो पति के शव के साथ या उसके बिना ही किये जाते थे। पहली स्थिति में यानी पति के शव के साथ इस प्रकार के धार्मिक कृत्य को 'सहमरण' या 'सहगमन' अर्थात पति के साथ मर जाना या उसके साथ इस ससार से चला जाना कहा जाता था और दूसरे प्रकार के धार्मिक कृत्यो को अनुमरण या अनुगमन अर्थात पति के बाद मरना या उसके पीछे पीछे इस लोक से चला जाना था फिर भी सहमरण की प्रथा लोकप्रिय थी[87]

---

85 किसोरी प्रसाद साहू कृत **मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष** पृ0- 226

86 **अलबेरूनी इण्डिया-2** सचाउ पृ0- 155

87 कुतुबन की **मृगावती** पृ0 - 336 पद-423, कबीर साखी सार साखी-34-36, पृ0-172-173, तथा जायसी की **पदमावत** (पदमावती - नागमती सती खण्ड) दोहा-

जो महिलाए सती नही होना चाहती थी उनसे आधा की जाती थी कि अपने माता-पिता के साथ भक्ति और सादगी का जीवन व्यतीत करेगी। सामान्यत ऐसा विश्वास किया जाता था कि जो महिलाए अपने मृत पति के साथ जल मरती थी वे पूर्व पापो से उद्धार पाकर सीधे स्वर्ग चली जाती थी।[88] साथ ही ऐसा विश्वास भी किया जाता था कि यदि पति अपनी मृत्यु के बाद नर्क गया है और उसकी पत्नी सती हो गई तो वह पति को नर्क से वापस ला सकती है। इसके अतिरिक्त जो स्त्री अपने मृत पति के साथ जल मरती थी उसके बारे मे विश्वास किया जाता था कि फिर से जन्म न लेगी और यदि जन्म लेगी भी तो स्त्री के रूप मे नहीं बल्कि पुरूष के रूप मे। जो स्त्री अपने पति की मृत्यु के उपरान्त सती न होती थी तो विधवा का जीवन बिताती थी। उसके बार मे यह आशा की जाती थी कि वे पुनः स्त्री के रूप में जन्म लेने से मुक्ति पा सकेगी। अत. सभी विधवाए जो पति की मृत्यु के समय गर्भवती न रहती थी, अपने पति के शव के साथ पवित्र अग्नि की शरण मे जाना ही श्रेयस्कर समझती थी। ब्राम्हणी विधवा से अपने पति की चिता मे ही जल जाने की आशा की जाती थी। जबकि अन्य जातियो की विधवाओं के लिए अलग चिता सजाई जाती थी। जो विधवा अपने मृत पति के साथ जल जाना चाहती थी उसे इस काम से रोका नही जाता था।[89]

648/1, 649/2, 650/3, 651/4 पृ0- 872-875

88 **मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष** किसोरी प्रसाद साहू पृ0-228

89 वही

जौहर-

जौहर प्रथा राजपूत नारीत्व की प्रतिष्ठा का प्रतीक था, इसमे सदेह नही है। इसके कई प्रमाण हमे समकालीन साहित्य मे मिलते है:

''चदन अगर मलैगिरि काढा, धर-घर कीन्ह सरा रचि ठाढा

जौहर कहॅ साजा रनिवॉसू, जेहिसत हिएॅ कहा तेहि ऑसू

''पुरूखन्ह ख्ररग समारे चदन होवरे देह

मेहरिन्ह सेदुर मेला चहाहि भई जरि खेह।''90

इसको स्त्रियो के शौर्य का प्रदर्शन माना जा सकता है। राजपूत युग के सामन्ती परिवेश की कुप्रथाओ में एक जौहर प्रथा ऐसी प्रथा थी जिसके अनुसार जीवित महिलाए समूह में अत्मदाह कर लेती थी अथवा सहर्ष मृत्यु का वरण कर लेती थी।

---

90 जायसी कृत **पदमावत** पृद्ध-697 पद-531, तथा पृ0-875 पद-651, पृ0-698 पद-532

स्त्रियों की वेशभूषा, आभूषण तथा प्रसाधन

स्त्रियो की श्रगारिक अभिरूचि वेशभूषा तथा आभूषणो की विविधता का जो चित्रण किसी भी युग के साहित्य और कला मे उपलब्ध होता है, उसमे प्रत्येक वर्ग की स्त्रियो की सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक स्थिति की रूपरेखा निश्चित हो जाती है। प्राचीन काल से ही भारत मे ऋतु के अनुसार वस्त्र धारण करने की प्रथा रही है।[1] भारतीय साहित्य के अध्ययन से महिलाओ मे धारण किये जाने वाले वस्त्रो मे चार प्रकार के वस्त्र परिलक्षित होते है। साडी[2] चुनरी[3] लहगा[4] चोली, कचुकी अथवा अगिया।[5] हमारे अध्ययन काल मे सारी या साडी महिलाओ का प्रचलित परिधान था समकालीन साहित्य मे ''सुरग पटोरी'' का उल्लेख मिलता है:

''पटोरी'' रेशमी वस्त्र से निर्मित एक प्रकार की साड़ी का सम्बोधन है, सामान्यता इसे पटोर वस्त्र से निर्मित किया जाता था। इसी प्रकार साहित्यिक कृति मे हमे विरोदक साडी का भी उल्लेख मिलता है:

---

1 गौरी शकर, हीरा चन्द्र ओझा, **मध्यकालीन भारतीय संस्कृति** प्र0स0 1945, पृ0 42, डा0 मोती चन्द्र कृत **प्राचीन वेशभूषा** भारती भण्डार प्रयाग पृ0 15, एस0बी0 गुप्त **कास्ट्यूम टेक्सटाइल्स कास्मेटिक एण्ड काफयर इन एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया** पृ9 147

2 **चादायन,** माता प्रसाद गुप्त पृ0 81 पद 83 पृ0 149 पद 153 पृ0 287 पद 393 तथा **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 351 पद 3934 पृ0 491 पद 1661

3 **सूरसागर** प्रथमखण्ड पृ0 13 पद 44

4 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 13 पद 44 पृ0 481-83 पद 1916, पृ0 491 पद 1661

5 सूर सागर खण्ड एक, पृ0 13 पद 44, पृ0 482-82, पद 1916, पृ0 608 पद 2093

मलमल या रेशम की उत्तम प्रकार की साडियाँ सम्पन्न वर्ग की महिलाओ मे अत्याधिक लोकप्रिय थी।[6] स्वाभाविक ही उच्च मूल्य एवं किस्म के कारण, वे ही इसे पहनने मे सक्षम थी, क्योकि जन साधारण के लिए इतने मूल्य की साडी हेतु धन उपलब्ध नहीं था। साधारण वर्ग की महिलाए साधारण किस्म के वस्त्र धारण करती थी, तथा वे बहुमूल्य वस्त्रो की अपेक्षा इसी मे कुछ रगीन व अलकृत परिधान पहन कर अपने शौक पूरे करती थी जैसे कि, चादायन के एक उल्लेख से सुस्पष्ट हो जाता है कि एक ग्वालिन फुदिया से मिलती हुई सिदूरी रग की साड़ी 'मेधवाना', और 'कुसियारा' धारण किये हुए है तथा, जोगिया चौकडिया वाला चीर पहने है।[7] सिर पर वह 'मूँगिया ओढनी' तथा चुँदरी पहने है।[8] एव सावन जैसे महीने मे एक 'खण्ड छाप' की गुजराती साडी तथा 'कुसुंभी साडी' पहनती है।[9] ''खीरोदक'' नामक साडी भी हमारे अध्ययन काल मे प्रचलित थी:

''पहिरि चाद खीरोदक सारी।''[10]

अनेक अवसरो पर महिलाएं अपनी साडी के साथ साथ 'कोछा' अथवा 'कछनी' भी पहनती थी, जिसका उल्लेख हमें समकालीन कृति 'मृगावती' मे विशेष रूप से प्राप्त हुआ है।[11]

---

6 पाताल चीर (पतली साडी) **विद्यापति की पदावली** - पद 164 पृ0 270 साथ ही देखे जायसी का **पद्मावत** साहित्य सदन चिरगाँव, 1961 सर्ग 27 दोहा 329/39, पृ0 395

7 **चादायन** सपादक माता प्रसाद गुप्त, पद 83 पृ0 81-82

8 वही

9 वही

10 वही, पृ0 149 पद 153

11 कोछा अथवा कछनी के उल लेख समकालीन साहित्य मे प्राप्य है- **मृगावती** सम्पादक डा0 शिव गोपाल मिश्र, पृ0 149 कछनी हेतु, **मीराबाई की पदावली** सम्पा0 परशुराम चतुर्वेदी प्रयाग 1884 पद 8 पृ0 103

वक्ष ढाकने हेतु धारण करने वाले विभिन्न परिधानो मे ''अगिया'' अथवा ''क्चुक'' का विवरण हमे समकालीन हिन्दी कृतियो मे मिलता है। अगिया को ''क्चुकी'' या चोली भी कहा जाता था, जैसा कि साहित्यिक उल्लेख से सुस्पष्ट है:

''कचुकी'' पहिरि सनाह के भेसा''

अथवा

''चोली'' कसनि जो खोलइ ताही।[12]

फुदिया, कसनिया, हटागी, चोली इत्यादि अत्यन्त प्राचीन काल से ही स्त्रियो द्वारा धारण किये जाने वाले प्रचलित परिधान है, जिनका उल्लेख समकालीन साहित्य में यत्र तत्र मिलता है। फुदिया, कसनिया, चोली (पतागी)[13] के ऐसे रूप प्रतीत होते है जो आगे और पीछे से खुले हुए होते थे तथा उन्हे किसी डोरी की सहायता से बाधा जाता था। फुदिया की डोर में कभी कभी फुदना लगा होता था तथा इससे परिधान मे गाठ लगाई जाती थी, समकालीन साहित्य मे फुंदिया के वर्णन से ऐसा ही प्रतीत होता है। सम्भवत: कसनिया पीछे की ओर से बाधा जाने वाला ऐसा ही परिधान था।

अगिया का प्रयोग प्राय: स्त्रियाँ आन्तरिक वस्त्र के रूप मे करती थी, अगिया को हटागी के नाम से भी जाना जाता था। उच्च वर्गीय स्त्रियाँ जडाऊ दार अगिया पहना करती थी:

---

12 मझनकृत **मधुमालती** मिश्र प्रकाशन इलाहाबाद 1961 , दोहा 206 तथा 451, पृ0 174, 396, कुतुबनकृत **मृगावती** डा0 माता प्रसाद गुप्त, पृ0 203 पद 239, कुसुम्मी चोली **पदमावत** दोहा 337/7 पृ0 407, **मृगावती** पृ0 261 छन्द 302

13 **चादायन,** सम्पादक माता प्रसाद गुप्त, पद 267 पृ0 254

"बहु नग जरे जराऊ अंगिया"[14]

लहगा महिलाओ मे पहना जाने वाला अधोवस्त्र है। इस युग मे "लहगा" तथा "घाघरा" स्त्रियो मे अत्यन्त प्रचलित पोशाक था।

"कटि "लंहगा" नोलौ बन्यो, कोजो"[15]

व

"घाघर बाधि आइ पगु दीन्दे"[16]

विवेच्ययुगीन साहित्य में "पटोर" लहगे का भी विवरण हमे प्राप्त होता है, साहित्य मे पटोर वस्त्र से निर्मित लहगे को पहन कर चलती हुई स्त्री की तुलना, लहराते हुए समुद्र से भी की गई है।[17]

लहगे की तरह घाघरा भी अत्यन्त लोकप्रिय परिधान था। घाघरा वैसे तो मुस्लिम महिलाओ मे प्रचलित था।[18] अलतेकर, **दि पोजीशन आफ वुमैन इन हिन्दू सिविलाइजेशन,** पृ0 296 परन्तु कुछ खास पेशेवर वर्ग की महिलाएं भी इसे पहनती थीं।[19] सम्भवत: उनको इसे पहनकर काम करने मे सुविधा होती होगी।

---

14 **चादायन** दाउदकृत 94/1

15 **सूर सागर** प्रथम खण्ड, पृ0 13 पद 44

16 **मृगावती** कुतुबनकृत पृ0 213-14, पद 251

17 **चादायन,** डा0 माता प्रसाद गुप्त 25/2 तथा, **पदमावत,** पृ0 132 पद 117

18 अलतेकर , **दि पोजीशन आफ वुमैन इन हिन्दू सिविलाइजेशन,** पृ0 296

19 **मृगावती** कुतुबन कृत पृ0 213-14 पद 25

शरीर के ऊपरी भाग को ढकने के लिए महिलाए चुदरी का प्रयोग करती थी, जिसे ''मडिला'' या ''छुदरी'' के रूप मे जाना जाता था।[20]

उच्च वर्ग की हिन्दू महिलाए जब भी घर के बाहर जाती थी तो चुनरी का प्रयोग करती थी:

''पहिरै राती ''चूनरी'' सेत उपरना सो है''[21]

''चुदरी'' (कपड़े का बडा टुकड़ा जिससे सिर और शरीर का ऊपरी भाग ढका जाता था) का भी उल्लेख हमे साहित्य मे मिलता है।[22]

समकालीन साहित्य ''चीर'' (सूती कपडा) का भी पर्याप्त विवरण हमे मिलता है:

''नव सत साजि चीर चोली बनी''[23]

महिलाए साडी के साथ कभी कभी एक डोरी का भी प्रयोग करती थी जिसे निबिन्ध[24] कहा जाता था। पूर्व मध्यकालीन सहित्य मे विभिन्न प्रकार तथा रंग के चमाऊ (चमड़े के) जूते (पाई पादत्री) पहनने का भी उल्लेख हमे मिलता है।[25]

---

20 **चादायन** माता प्रसाद गुप्त पृ0 81- पद 83 **सूर सागर** प्रथम खण्ड पृ0 13 पद 44

21 **सूर सागर** प्रथम खण्ड पृ0 13 पद 44

22 **चादायन** ''चूदरी'' पद 83 पृ0 91

23 **चांदायन,** दाउद कृत 42/3, 47/3, 50/5, 51/1, 97/6, 90/3, 94/2, 26, 173/2, 224/2 इत्यादि, **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 57 पद 2646

24 **विद्यपति की पदावली** पद 76 दोहा 8पृ0 124 पद 84 दोहा 2 पृ0 134

25 मुल्ला दाउद कृत **चादायन** सम्पादक, माता प्रसाद गुप्त पद 95 पृ0 83

आभूषण :

महिलाओ की आभूषणो के प्रति सौन्दर्य प्रियता प्राग्वैदिक काल से विद्यमान रही है। आभूषण वैभव व सम्पन्नता के साथ अलकरण का प्रतीक है। हिन्दू स्त्री के लिए सुहाग या विवाहित जीवन का तात्पर्य समग्र देह पर अंलकारो का प्रयोग था। केवल वैधव्य की अवस्था मे वह अपने अलकारो और जवाहरातो को उतार देती थी और सिर से सिदूर को मिटा देती थी।[26] मध्य कालीन इतिहासकारो व साहित्यकारो ने अपनी कृतियों मे स्त्रियो के विभिन्न आभूषणो का विस्तृत वर्णन किया है। शीश के आभूषणो मे हमे एकाध उल्लेख मुकुट के भी प्राप्त होते है:

''घुँघट मुकुट विराजज सीस, मनि कुंडल ताटक विलोल''[27]

इसी प्रकार ''जडाऊ टीका'' तथा शीशफूल का भी विवरण प्राप्त होता है·

''टीका गूथि माग मोतिनि की शीश फूल सिर धारति

टीका धरयो जराऊ''[28]

जैसा कि ऊपर से स्पष्ट है शीशफूल लोकप्रिय शीश आभूषण था।[29] सम्भवत. महिलाए इसे मांग की वृद्धि हेतु धारण करती थी। इसे शीश भूषण भी

---

26 विद्यापति ठाकुर कृत **पदावली** बगीय पृ0 117

27 **सूर सागर** प्रथम खण्ड पृ0 531 पद 1798

28 **सूरसागर** प्रथम खण्ड, पृ0 614-15, पद 1216 तथा पृ0 89 पद 2808

29 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 171 पद 3229 तथा पृ0 89 पद 2808 तथा **सूरसागर** खण्ड एक, पृ0 614 पद 1216

कहा गया है। समृद्ध महिलाए स्वर्ण व मोतियो से निर्मित शीशभूषण पहनती थी।[30] साथ ही हमे शीश के आभूषणो से सबधित बेदी का भी उल्लेख समकालीन हिन्दी साहित्य में प्राप्त होता है:

''कुडल तट तरिवन लै साजत नासा बेसरि धारत है

''बेदी'' भाल माग सिर पारत, बेनी गूथि सवारत है''[31]

केश सज्जा हेतु बालो की बेनी अथवा वेणी बनाने व उसे माग के साथ मोतियो से सुसज्जित करने का उल्लेख हमे समकालीन साहित्य मे प्राप्त होता है.

''बेनी गूथी माग मोतिनी की सीस फूल सिर धरति ''[32]

मस्तक पर श्रृंगार के लिए स्त्रिया सिंदूर की ही बिन्दी लगाती थीं।[33]

महिलाए अपनी सौन्दर्य वृद्धि हेतु अपने कानो मे विभिन्न प्रकार के कर्ण आभूषण अत्यन्त ही चाव से पहनती थी। ''कर्ण फूल'' कान मे धारण किया जाने वाला अत्यन्त ही लोकप्रिय आभूषण था।[34]

''मानौ कर्नफल चारा कौ

बेसरि बनी सुभग नासा पर, मुक्ता परम सुढार''[35]

---

30 **चादायन** 75/5

31 **सूर सागर** खण्ड 2 पृ0 79 पद 2755

32 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 614 पद 1216 तथा **सूरसागर** द्वितीय खण्ड, पृ0 89 पद 2808

33 **सूरसागर** द्वितीय खण्ड, पृ0 172 पद 3231

34 कर्णफूल के लिए देखिए **विद्यापति की पदावली** पृ0 263 पद 261

35 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 170-71 पद 3228

अन्य लोकप्रिय कर्णाभूषणो मे "खूँट" एक गोलाकार कर्णाभूषण था जिसका आकार दीप के समान होता था। जिसे "खूँट" कहकर सम्बोधित करते थे।36

तेहि पर "खूँट" दीप दुइ बारे। दुइ ध्रुव दुऔ "खूँट" बैसारे।37

समकालीन साहित्य मे हमे कुछ ऐसे उल्लेख प्राप्त हुए है जिनसे ये पता चलता है कि कर्ण आभूषण के प्रति महिलाओ मे विशेष रूचि रही है। तथा आधुनिक काल मे भी महिलाए कानो मे अलकरण के लिए विभिन्न प्रकार के कर्ण आभूषणो को अत्यन्त चाव से पहनती हैं। कुछ ऐसे भी कर्ण आभूषण है, जो प्राचीन काल मे भी प्रचलित थे तथा आज भी कुछ परिवर्तित रूप मे प्रचलित है। कुडल एक ऐसा ही चिर परिचित कर्ण आभूषण है जो कान मे धारण किया जाता था:

कुडल तर तरिवन लै साजत, नासा बेसरि धारत है।38

राजकीय वर्ग की महिलाए कान मे स्वर्ण कुडल धारण करती थी:

"कुंडल कनक रचे उँजिआरे"39

समकालीन साहित्यो मे हमे हीरे जवाहरात आदि से जडे हुए कुडल का उल्लेख प्राप्त होता है :

---

36 **चादायन** छन्द 226 दोहा 2 पृ0 124 तथा छन्द 9 दोहा 2 पृ0 131

37 जाायसी कृत **पदमावत** पृ0 124-125 पद 110

38 **सूरसागर** द्वितीय खण्ड, पृ0 79 पद 2755 तथा **चांदायन** पृ0 82 पद 84

39 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 124-25 पद 110

''कुडल सुवन जरै लइ हीरा''[40]

तथा

''मनि कुडल चमकहि अति लोने, जनु कौधा लौकहिं दुहुँ कोने ''[41]

कान मे पहनने वाले आभूषणो मे 'खुम्भी' नामक एक आभूषण प्रचलित था। जो कुकुरमुत्ते की टोपी के आकार का होता था कान के छेद मे पहना जाता था।

''पहिरे खुभी सिघल दीपी, जानहुँ भरी कचपची सीपी।''[42]

उल्लिखित काल मे महिलाए नाक को सुशोभित करने के लिए विभिन्न प्रकार के कलात्मक आभूषणो का प्रयोग करती थी। नकफूली (छोटी कली के आकार का एक नाक का आभूषण) जिसका डठल नाक से सटा होता है·

''उवइ अगस्ति नाक काई फूली''[43]

''बेसर'' या ''बेसरि'' भी नाक मे पहना जाने वाला एक अर्ध चद्राकार आभूषण था जिसका निर्माण इस प्रकार से होता थाा, कि वह नाक से लटकता रहता था,

''बेसरि बनी सुमग नासा पर मुक्ता परम सुदार''[44]

---

40 **चांदायन** माता प्रसाद गुप्त, पृ0 82 पद 84

41 जाएसी कृत **पदमावत** पृ0 124-25 पद 110

42 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 124-25, पद 110 पृ0 44-45 पद 38

43 **चादायन** माता प्रसाद गुप्त पृ0 82 पद 84 तथा छन्द 93 दोहा 3 पृ0 131, (यहाँ इसे नाककाई फूली कहा गया है)

44 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 170-71 पद 3228, **विद्यापति की पदावली** पृ0 608 पद

नथ या नथिया भी नाक में महिलाएं बडे चाव से पहनती थी, इनमे से कुछ इतनी लम्बी होती थी कि होठो तक लटकती थीं:

''नासा नथ मुक्ता के मारहि, रहयो अधर तट जाइ''[45]

उल्लिखित काल मे गलो मे पहने जाने वाले विभिन्न आभूषणों मे हार सर्वप्रमुख था:

''लम्बित सोभए हार विलोल''[46]

हार विभिन्न मोतियो तथा स्वर्ण धागो से प्राय: निर्मित होता था और वक्ष स्थल तक लटकता रहता था। हार को मोहन माला का पर्याय मान कर सोने के मनको से बना कण्ठ आभूषण कहा गया।[47] स्वर्ण, रजत व अन्य धातुओ द्वारा विभिन्न प्रकार के कलात्मक व विविधतापूर्ण नमूनो मे कण्ठा आभूषणो को निर्मित करवाया जाता था।[48] अन्य उल्लिखित ग्रीवाभूषणो मे सिकड़ी[49] गले मे पहनने वाली जजीर या श्रृंखला का एक पूर्व मध्य कालीन रूप प्रतीत होती है। गले के पास छाती के ऊपर दोनो धन्वाकार हड्डियो को ''हसली'' कहते है, इन्ही पर मडित होने के कारण एक अन्य ग्रीवाभूषण का नाम हसली[50] पडा जो प्राय: गले

2093 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 79 पद 2755 पृ0 88 पद 2801

45 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 614 पद 1216

46 **विद्यापति की पदावली** पृ0 125-26 पद 944 तथा **सूरसागर** द्वितीय खण्ड पृ0 234 पद 3480

47 **चादायन** पद 34 पृ0 82-83

48 स्वर्ण मातियो, हीरो तथा सुगन्धित पुष्पो के अनेक हारो का उल्लेख समकालीन साहित्य मे मिलता है मातिम हार, **विद्यापति की पदावली** पद 24 दोहा 4 पृ0 45

49 **चादायन** दाउद कृत छन्द 95 दोहा 4 पृ0 13

50 **चादायन** दाउद कृत छन्द 359 दोहा 2 पृ0 285 तथा पद 329 पृ0 326-327

मे पहनने पर इन हड्डियो पर टिका सा रहता है यह आभूषण वस्तुत अत्यन्त प्राचीन है। कण्ठ मे धारण करने वाले आभूषण को एक नाम कठसिरी भी दिया गया है

"कठसिरी उर पटिक विराजत, गुजयोतिन केहार"51

समकालीन साहित्य मे दो लर के कठ आभूषण को 'दुलरी' तथा तीन लर वाली को इसी प्रकार 'तिलरी' कहकर सम्बोधित किया गया है ·

"कठसिरी से, दुलरी , तिलरी उर मानिक मोती हार रंगकौ"52

महिलाए गले की शोभा बढ़ाने के लिए हार इत्यादि धारण करती थी, जो प्राय: समृद्ध वर्गो मे रत्नजडित तथा स्वर्ण के होते थे.

"कचनहार दिये नहि मानति" 53

सुहागिन स्त्रियॉं गले मे मगलसूत्र धारण करती थीं

"एक सुहागनि जगन पियारी, सगले जीअ जंत की नारी सुहागनि गलि सो है हारू"54

---

51 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 608 पद 2093 (1475) तथा पृ0 623 पद 2158 (1540) **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 170-71 पद 3228

52 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 608 पद 2093 (1475) तथा पृ0 614-115 पद 1216 (1498) तथा पृ0 623 पद 2153 (1540)

53 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 491 पद 1661 **चादायन** माता प्रसाद गुप्त पृ0 162, पद 166, **सूरसागर** प्रथम खण्ड, पृ0 215 पद 634 तथा **कबीर गन्थावली** पृ0 370 पद 2

54 **संत कबीर** राम कुमार वर्मा, पृ0 170 पद 7

कुछ हार मोतियो के बने होते थे तथा उन्हे स्वाभाविक रूप से मोतियो का हार अथवा मोतिन हार कहते थे।[55]

भुजाओ की शोभा बढाने के लिए हाथ के ऊपरी भाग मे, अर्थात बाहु पर महिलाए बाजूबद[56] भी धारण करती थीं ।

बहुँटा, कर ककन, बाजूबंद एते पर है तौकी[57]

हाथो को सुसज्जित करने वाले आभूषणो मे अगद और केयूर अधिक प्रचलित थे।[58] ये भी बाजूबद के ही रूप थे 'बाजू बद' की तरह भुजाओ मे टाडया ''टड्डे'' भी महिलाए धारण करती थी जो बाह मे कसे हुए होते थे।[59]

कलाई को सुशोभित करने के लिए स्त्रियॉ ककण और वलय नामक अलकृत आभूषणो को धारण करती थी[60]

मध्य युगीन साहित्य मे उल्लिखित हस्त अकलारो मे सलोनी नामक आभूषण का भी उल्लेख मिलता है।[61] वह भी सभवत: बाजूबंद की ही भॉति भुजा मे धारण किया जाता रह होगा । मध्य कालीन इतिहास कारो ने स्त्रियो द्वारा

---

55 **सूर सागर** प्रथम खण्ड पृ0 491 पद 1661 पृ0 623 पद 2158 (1540) **मृगावती** पृ0 40 छन्द 50

56 **सूरसागर** खण्ड 2 पद 3228 पृ0 170-71

57 **सूरसागर** खण्ड 1 पृ0 623 पद 2158 (1540)

58 **ढोला मारू रा दुहा दोहा** 481 पृ0 114

59 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 126-27 पद 112

60 **विद्यापति की पदावली** पद 38 दोहा 8 पृ0 67, **सूर सागर** खण्ड 2 पृ0 88 पद 2801

61 दाउद कृत **चादायन** 266/3, **चादायन** (माता प्रसाद गुप्त) पद 260 पृ0 253

बाजुओ की सौन्दर्य वृद्धि हेतु धारण किये जाने वाले आभूषणों में 'बरया' अथवा 'बलया' का वर्णन किया है

अइस न देखेउ काहु कलाई। बरया जनु चरचहि ही, सुहाई।[62]

व

''बरया'' फूटि का गही जो नाहा पहुँचिउ टूटि उबरि गई बाहाँ।[63]

इसी प्रकार बाहु रखा अथवा बोरखा[64] (जो कि राजपूत स्त्रियो मे विशेष प्रचलित था) का उल्लेख भी समकालीन साहित्य में प्राप्त होता है। जो बाजुओ की सौन्दर्य वृद्धि के लिए धारण किया जाता था।

अवलोकित काल मे स्त्रियाँ कलाई को सुशोभित करने वाले विविध अलकारो को धारण करती थी जिनका विवरण समकालीन साहित्य मे प्राप्य है। इन आभूषणो मे ककण, हथपूर, चूडे, चूड़ी, तथा वलय का उल्लेख हमे मिलता है। ककण अथवा कगन [65] (जिसे ककन भी कहा जाता था) कलाई पर धारण किया जाने वाला एक प्रमुख आभूषण था। यह प्राय: दोनों सिरो पर घुडी वाला ठोस अलकार था।

''कर कगन भर पहिर कलाई''[66]

---

62 **मृगावती** कुतुबनकृत डा0 माता प्रसाद गुप्त पृ0 50 छन्द 64 तथा बरया कुतुबन कृत **मृगावती** दोहा 203 एव 260 पृ0 136 तथा 159 पृ0 209 पद 239

63 **मृगावती** कुतुबनकृत पृ0 204 छन्द 240

64 **ढोला मारू रा दुहा** दोहा 481 पृ0 114

65 **विद्यापति की पदावली** पद 171 दोहा 6 पृ0 277

66 **चादायन** सम्पादक माता प्रसाद गुप्त पृ0 82 पद 84, **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 88 पद 2801 तथा **विद्यापति** पदावली पृ0 84-85 पद 62 **मृगावती** कुतुबनकृत पृ0 239 पद

विभिन्न धातुओं से निर्मित रग बिरंगी चूडियो[67] (जिन्हे बालाया, बलया अथवा तार भी कहा जाता था) के उल्लेख समकालीन साहित्य मे हमे मिलते है। स्वर्ण एव काच के अतिरिक्त हाथी दात, शख, पत्थर एव पुष्पो की अलकृत चूडिया बनती थी, हतपूर या हतपूर से अभिप्राय कदाचित हाथ फूल से है, हाथ फूल पांच जजीरो वाले उस बलय को कहते हैं जो करमूल अथवा कलाई पर पहना जाता है, इसकी प्रत्येक जजीर हाथ की पाचों उगलियो मे पहनी गई अगूठियो के साथ बधी होती थी।[68] विवेच्य युगीन साहित्य मे दोनो हाथो की दसो अगुलियो मे महिलाओ द्वारा अगूठी पहने जाने का भी विवरण हमे मिलता है।[69] दसो उगलियो मे अगूठी धारण करना वैभव, समृद्धि, सपन्नता एव अभिरूचि का प्रतीक माना जाता था:

''दस अगुरिन्ह अगूठी पगवाइ''[70]

सम्पन्न वर्ग की महिलाएं प्राय: हीरे जवाहरातो व अन्य बहूमूल्य नगो से निर्मित जड़ी हुई अगूठियाँ पहनती थी:

''ओ पहिरे नग जरी अगूठी, जगबिनु जीव जीव नही भूठी''[71]

203, **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 170 पद 508 तथा पृ0 491 पद 1661 (1043) **पदमावत** पृ0 346 पृ0 296

67 **विद्यापति की पदावली** पद 38 दोहा 8 पृ0 67 बालाय, चूडी, **ढोला मारू रा दुहा** दोहा 349, पृ0 81 **सूर सागर** प्रथम पृ0 491 पद 1661 (1043)· पृ0 530-31 पद 1798,

68 **चदायन का सास्कृतिक परिवेश** डा0 ज्ञान चन्द शर्मा पृ0 167

69 **चादायन** माता प्रसाद गुप्त पृ0 92-93 पद 329

70 **चादायन** माता प्रसाद गुप्त, पृ0 82 पद 84

71 जायसी कृत **पदमावत**, पृ0 126-27 पद 112

प्राय: अगूठी के लिए मुद्रिका अथवा मुदरी का भी सम्बोधन समकालीन हिन्दी साहित्य मे हमे प्राप्त होता है।

''हाथ मुद्रिका प्रभु दई, सदेश सुनायौ''72

अगूठे मे पहनी जाने वाली दर्पण युक्त एक विशेष प्रकार की अगूठी को ''आरसी'' कहा जाता था जिसके उल्लेख हमें समकालीन साहित्य में प्राप्त होते है73

स्त्रियो द्वारा धारण किये जाने वाले विविध आभूषणो मे कमर अथवा कटि प्रदेश को अलकृत करने वाले आभूषणो का विशेष आकर्षण रहा है। कटि प्रदेश मे धारण किये जाने वाले प्रमुख अलंकारो मे विशेषकर छुद्र घटियो 74 का उल्लेख किया जा सकता है। इस आभूषण को सोने के तारो मे छोटी छोटी घटिकाओ को पिरो कर बनाया जाता था तथा घुंघरूओ की भाँति यह भी स्त्रियो के चलने पर मधुर संगीत लहरी उत्पन्न करती थी75 इसी प्रकार कमर के लिए 'किनकिनी' भी एक विशेष आभूषण था:

''मनि किकिनी कर मधुर बिराव''76

---

72 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 170- पद 508 तथा पृ0 530-31 पद 1798

73 दाउद कृत **चादायन** 94/4 तथा 95/6

74 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 608 पद 2093 (1475) **पदमावत** पृ0 346 पद 296

75 **सूर सागर** प्रथम खण्ड पृ0 623 पद 2153 (1540)

76 किकिनी के लिए देखिए **विद्यापति की पदावली**, पृ0 18-19 पद 13 तथा पद 13 दोहा 2 पृ0 26 एव पद 171 दोहा 2 पृ0 277

पदाभूषणों मे पायल अथवा पाजेब 77 अवलोकित काल की स्त्रियो का अत्यन्त प्रचलित आभूषण था। वस्तुत· पायल, जजीर और झूलनो से युक्त चादी अथवा स्वर्ण निर्मित एक पदाभरण था। स्त्रियो के अन्य चरणाभूषणो मे 'नूपुर' भी था,78 जिसे यदा कदा बहूमूल्य एवं जड़ाऊ बनाने के लिए जवाहरातो तथा विभिन्न प्रकार के मोतियो का प्रयोग किया जाता था:

''चरन महावर नुपुर मनिमय, बाजत भाँति भली''79

अथवा

''रतन जटित पग सुमग पावरी, नूपुर परम रसाल''80

नर्तकियो द्वारा धारण किये जाने वाले चरणभूषणो मे घुघरू 81 तथा झाझर 82 का उल्लेख किया जा सकता है, जो अत्यन्त लोकप्रिय थे। ये आभूषण पैरो को अलकृत करने के साथ ही सगीतमय ध्वनि उत्पन्न करते है। यही कारण है कि ये पदाभूषण आज भी महिलाओं मे लोकप्रिय है और स्त्रियाँ इन्हे बड़े चाव से पहनती है। चूड़ा83 पिण्डलियो पर धारण किये जाने वाले खोखले अथवा

---

77 दाउद कृत **चादायन** 122/7 पैजनिया **चांदायन** माता प्रसाद गुप्त पद 94 पृ0 92-93 पद 179 पृ0 82 पद 84 **पदमावत** पृ0 346 पद 296

78 **सूर सागर** द्वितीय खण्ड पृ0 79 पद 2755

79 **सूरसागर** द्वितीय खण्ड पृ0 1744 पद 3237

80 **सूरसागर** द्वितीय खण्ड पृ0 9 पद 2409

81 घुघरू (जिसे घुघरी अथवा घुघरा भी कहा जाता था) का उल्लेख समकालीन साहित्य मे मिलता है **ढोला मारू रा दुहा** दोहा 539 पृ0 129, **मृगावती** पृ0 87 दोहा 3 पृ0 21 दोहा 27

82 **ढोला मारू रा दुहा,** दोहा पृ0 114 दोहा 481

83 दाउद कृत **चांदायन** 359/3,4, **कबीर ग्रन्थावली** पृ0 225 पद 138

ठोस कडे का नाम है। यह पहनने वाले के सामर्थ्य पद एव मर्यादा के अनुरूप स्वर्ण, रजत अथवा रांगा आदि धातुओ से निर्मित होता था। इसे पादचूड़ की भी सज्ञा दी जाती थी। अनवट तथा बिछुआ या बिछिया[84] मध्य युगीन विवाहित महिलाओ मे अति लोकप्रिय आभूषण था, जिसे पैर की उगलियो मे धारण किया जाता था। आज भी इन आभूषणो को सौभाग्य चिन्ह मानकर धारण करने का पर्याप्त प्रचलन है। अनवट नामक पादभूषण को पैर के अंगूठे मे पहना जाता था।[85] तथा बिछुआ पॉव की अन्य अगुलियो में विशेषत· अगूठे के साथ वाली उगली मे पहना जाने वाला आभरण था।[86] कभी कभी पाव मे एक से अधिक बिछुए भी स्त्रियॉ धारण करती थी वस्तुत: 'बिछुआ' और 'अनवट' अत्यन्त प्राचीन काल से ही महिलाओं के सुहाग का प्रतीक माना जाता था।[87] स्त्रिया जब उन पादभूषणो को पहन कर चलती थीं तब उनसे कर्ण प्रिय सुमधुर ध्वनि निकलती थी:

'' पग जेहरि बिछियनि की झमकाने, चलत परस्पर बाजति''[88]

इस प्रकार अवलोकित काल की महिलाए शरीर के अन्य अगो की भाति अपने पैरो को भी विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य पदाभूषणो से अलंकृत किया करती थी, जो इनकी सौन्दर्य प्रियता एवं आभूषण प्रियता का परिचायक है। पैरो मे

---

84 दाउद कृत **चादायन** (माता प्रसाद गुप्त) पृ0 326 - 27 पद 329

85 माता प्रसाद गुप्ता पृ0 326 पद 228 जायसीकृत **पदमावत** पृ0 133-34, पद 118

86 **कबीर ग्रंथावली** पृ0 225 पद 138, **पदमावत** पृ0 349 पद 299

87 जायसीकृत **पदमावत** पृ0 133-34 पद 118

88 **सूर सागर** खण्ड द्वितीय पृ0 83 पद 2774 **चांदायन,** माता प्रसाद गुप्त पृ0 326 पद 328 **सूरसागर** प्रथम खण्डपृ0 623 पद 2158 (1540)

विभिन्न प्रकार के आभूषणो को पहने जाने के कारण सम्भवत स्त्रियो को जूते धारण करने मे किचित असुविधा का अनुभव होता था।[89]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अवलोकित काल की स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के आभूषणो के प्रयोग मे विशेष रूचि रखती थी। स्त्रियो द्वारा धारण किये जाने की एक लम्बी परम्परा है, जो युगो के अनुरूप किचित परिवर्तनो एव सशोधनो के साथ आज भी मान्य है। भारतीय स्त्रियाँ प्राय: सिर से पाँव तक शरीर के प्रत्येक अग को विभिन्न प्रकार के कलात्मक आभूषणो से अलकृत करती थी। अलकार एव श्रृगार के साथ ही आभूषण हिन्दू स्त्रियो के लिए सुहाग एवं सौभाग्य का प्रतीक चिन्ह माने जाते रहे है, अत: स्त्रियो के जीवन मे इनका विशेष महत्व रहा है, केवल वैधत्य की अवस्था मे हिन्दू स्त्री अपने अलकारो का त्याग करती है।

प्रसाधन

प्रसाधन से अभिप्राय है सुवेश और साज सज्जा। मानव मन निसर्गत· श्रृगाराभिमुख रहा है सौन्दर्य तथा शारीरिक लावण्य के प्रति आकर्षण के कारण स्त्रियाँ विभिन्न प्रसाधनो का प्रयोग चिरकाल से करती रही हैं और उनकी इस चिरन्तन प्रवृत्ति की सत्यानुभूति पूर्व मध्य कालीन साहित्य (एव कला कृतियो) से भी सिद्ध होती है। अवलोकित काल मे भारतीय स्त्रियाँ सोलह श्रृगार

---

89 दाउद कृत **चादायन** 163/1

(षोडस श्रृगार) से भली भॉति परिचित थी, मध्य युगीन साहित्य मे नारियो के सोलह श्रृगारो का उल्लेख अनेक स्थलो पर हुआ है।[90]

नारियो के सोलह श्रृगारो मे, उबटन, सुगन्धित स्नान, वेणी, माग, काजल, बिंदी, तिल, चित मेंहदी, महावर, पुष्प माला तथा पान-रचना, सुन्दर वस्त्र एव विविध आभूषण परिगणित किये जाते है।[91]

दर्पण[92] अदर्शिका या आइना श्रृगार विधि का अभिन्न अग व उपकरण था। स्त्रियॉ दर्पण मे अंग प्रत्यग की छवि निहार कर तदनुरूप श्रृगार करती थी।

''कै सिगार दरपन कर लीन्हा, दरसन दे खिगरव जिय कीन्हा''[93]

जैसा कि उपरोक्त विवरण से सुस्पष्ट है महिलाए किसी न किसी रूप मे आइने का प्रयोग करती थी, आइना अथवा शीशा श्रृगार प्रसाधन हेतु भी महिलाओ के उपयोग की एक आवश्यक सामग्री थी।[94]

उबटन लगाने का प्रचलन तत्कालीन स्त्रियो की श्रृगारिक पद्धति में सम्मिलित था, इसे वे अपने मुख एव शरीर के अन्य अगो को आभायुक्त एवं सुन्दर बनाने के लिए प्रयोग मे लाती थी।

---

90 दाउद कृत **चादायन** 163/1

91 दाउद कृत **चादायन** 287/25, **विद्यापति की पदावली** पद 73 दोहा 4 पृ0 111

92 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 93 पद 83

93 जायसीकृत **पदमावत**, पृ0 93 पद 83

94 वही

"कुमकुम उबटि कनकतन गोरी, अग सुगन्ध चढाई कि सोरी95 "

समकालीन साहित्यकार जाएसी ने मञ्जन और स्नान मे भेद माना है, उबटन द्वारा मैल आदि की सफाई मञ्जन और उसके पीछे सुगन्धित जल से स्नान होता था। 96 शारीरिक कान्ति की वृद्धि के लिए चदन का लेप97 भी प्रयुक्त होता था, कांति की वृद्धि के साथ ही चदन लेप शरीर को सुगन्धित भी करता था कतिपय विशिष्ट अवसरो पर कुमकुम98 तथा सुगन्धित कस्तूरी99 विलेपनो (अगरागो) का प्रयोग मध्ययुगीन स्त्रिया स्वय को आकर्षक बनाने के निमित्ति करती थी महिलाए अपने शारीरिक आकर्षण की वृद्धि हेतु अनेको युक्तिया अपनाती थी। स्त्रिया प्राय: सुगन्धित तेलो के प्रयोग के पश्चात ही स्नान करती थी:

कारिख तेल धलिमुख मॉंजा 100

स्नान भारतीय जीवन का एक अनिवार्य नित्यकर्म है, इसके अतिरिक्त हिन्दुओ मे धार्मिक दृष्टिकोण से भी स्नान को एक पावन कर्तव्य माना जाता है। हिन्दू समाज मे प्रत्येक धार्मिक और मागलिक अवसर पर स्नान का विधान रहा है।101 स्त्रिया अपनी श्रृगार सज्जा प्रारम्भ करने से पूर्व विभिन्न प्रकार की

---

95 **सूरसागर** द्वितीय खण्ड पृ0 250 पद 3519

96 **पदमावन** पृ0 347 पद 297

97 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 258-59 पद 226, पृ0 333 पद 290 तथा **कबीर ग्रन्थावली** पृ0 308 पद 9 तथा **लोर कहा** माता प्रसाद गुप्त पृ0 14 पद 7

98 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 333 पद 290 पृ0 326 पद 285 **चादायन** पृ0 47 पद 50

99 वही

100 विद्यापति की **कीर्ति लता** , तृतीय पल्लव, छन्द 24 दोहा 101 पृ0 184 **आखिरी कलाम** पृ0 343 पद 11

101 मुल्ला दाउद कृत **चांदायन** 41/1 तथा **कबीर ग्रंथावली** पृ0 370 पद 2

सुगन्धित वस्तुओ तथा मृगमद[102] तथा कर्पूर[103] आदि से जल को सुवासित कर उससे स्नान करती थी[104] स्नान के पश्चात विलेपन का विधान था, मध्य कालीन स्त्रियां शरीर को सुवासित रखने तथा त्वचा की शोभा एव काति मे अभिवृद्धि हेतु अगर [105] चदन[106] कस्तूरी[107] केसर [108] जैसे द्रव्यो के उलोपन का प्रयोग करती थी। समकालीन साहित्य मे स्नान क्रिया तथा तत्पश्चात विलोपन द्वारा शरीर को सुवासित करने की क्रिया को सोलह श्रृगारो मे स्थान प्रदान किया गया क्योकि इन विलोपनो के प्रयोग द्वारा शरीर का अंग प्रत्यग निखर उठता था:

''अगर चदन बेना कस्तूरी, मलयागिरि कचोरन्ह भरी

कुकुहं मेलि अरगजा किया, ढावहि ढाव राखे ते लिया

चोवा भेद सिला रसफुलएल मिवसैनी बहु तबुल्ल

सबै बासु रस बैर सहि परिमल फूल तबुलल''[109]

---

102 **विद्यापति की पदावली** पद 135 एव 145 तथा पद 180 पृ0 190 **सूरसागर** द्वितीय खण्ड पृ0 74 पद 2736

103 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 71 पद 2724

104 दाउद कृत **चादायन** 52/12, 448/1 तथा 249/3

105. डा0 ज्ञान चद शर्मा, **चादायन, सास्कृतिक परिवेश** पृ0 156, **मृगावति** पृ0 193 पद 228 **कबीर ग्रन्थावली** पृ0 308, पद 9 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 400 पद 332, **सूरसागर** खण्ड पृ0 71 पद 2724

106 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 400 –332 पृ0 333 पद 290

107 **विद्यापति पदावली** पद 135 एव 145 पृ0 180 एव 190

108 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 333 पद 290 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 233 पद 3477

109 **मृगावति,** पृ0 193 पद 228

विवेचन से स्पष्ट होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ अपने शारीरिक लावण्य तथा सौन्दर्य के प्रति जाग्रत थी। विभिन्न प्रसाधनो के सुरूचिपूर्ण प्रयोग द्वारा अपने शारीरिक सौन्दर्य मे वृद्धि करना स्त्रियो को सदैव ही प्रिय रहा है।

केश विन्यास :

समकालीन साहित्य मे उल्लिखित स्त्रियाँ अपने केश विन्यास का एव प्रसाधन के विषय मे पूर्णतया सजग थी। केश विन्यास के प्रति स्त्रियों की विशेष रूचि रही है, केशो को सुरूचि पूर्ण विन्यास के द्वारा अपने सौन्दर्य मे अभिवृद्धि करना स्त्रियों को चिरकाल से ही प्रिय रहा है सुन्दर केश विन्यास वस्तुत एक कला भी होती है।

अभिजात और धनिक वर्ग की स्त्रियों के केश प्राय· दासियाँ प्रसाधित करती थी, जो सेविकाओ के रूप मे नियुक्त की जाती थीं। ऐसी सेविकाओ को केश कारिणी[110] की सज्ञा से तत्कालीन साहित्य में संबोधित किया गया है।

स्नान के पश्चात केशो को विन्यस्त कर माग निकाल कर[111] माग को मोतियो से अलकृत कर[112] अगरू चंदन तथा बेला चंपा[113] इत्यादि से

---

110 अलतेकर **बुमैन पोजीशन इन हिन्दू सिविलाइजेशन** पृ0 300

111 दाउद कृत **चादायन** 52/2, 75/2

112 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 821,22 पद 615

113 दाउद कृत **चादायन** 252/3, **विद्यापति की पदावली** पद 42 दोहा 6 **लोरकहा** पृ0 14 पद 7

सुगन्धित कर उन्हें विभिन्न कलात्मक ढग से गूथकर स्त्रिया अपनी केश राशि की बेणियाँ बनाती थी।[114]

प्रसाधनों में पुष्प प्रयोग :

पुष्प सदैव अपनी सुगन्ध कोमलता एवं सुदरता के कारण लोकप्रिय रहे है। देव अर्चना से लेकर वैयक्तिक श्रृंगार तक पुष्पों के विविध प्रकार के प्रयोग के उदाहरण हमे समकालीन साहित्य मे मिलते हैं। प्राचीन काल से पुष्पो को विविध आभूषण निर्मित कर स्त्रियाँ उनसे अपने अग प्रत्यग को सुसज्जित करती थी।[115] श्रृगार विधियो के अनेक वस्तुओ मे पुष्प का विशेष महत्व था, स्त्रियां अपने केशो को पुष्पो से सुशोभित करती थी तथा पुष्पों को आभूषणो की भॉति पहनती थी।[116] मध्य युगीन साहित्य मे पुष्पहारो की गणना आभूषणो के अन्तर्गत की गई है।[117] प्राय. वे महिलाए जो स्वर्णाभूषणो व अन्य प्रसाधनो का प्रयोग आर्थिक सामर्थ्य के चलते नही करती थी वे उनके स्थान पर पुष्प सज्जा करती थी। स्त्रियो द्वारा अपनी केशराशि से बनाई गई बेणियो के लिए अन्य भी अनेक शब्दों का प्रयाग मध्यकालीन साहित्य मे उपलब्ध है, यथा जूडा[118]

---

114 दाउद कृत **चादायन** 76/2-3 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 57 पद 2027 पृ0 61 पद 2670 पृ0 79 पद 2137 **पदमावत** पृ0 594 पद 471

115 **विद्यापति की पदावली** पद 42 दोहा 6

116 **विद्यापति की पदावली** पद 42 दोहा 6 **लोर कहा** पृ0 14 पद 7 जायसीकृत **पदमावत** पृ0 594 पद 471

117 **चांदायन** माता प्रसाद गुप्त पृ0 205 पद 210

118 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 872 पद 648, पृ0 821 22 पद 615

वेणी[119] खोपा [120] आदि। वेणी केशो को पीछे कर गूथकर बनाई जाती थी बेणी की तुलना समकालीन साहित्य कारों ने काले नाग से की है:

बेनी कारी पुहुप कै निकसा जमुना आइ[121]

खोपा एक प्रकार के बालो के जुडे को कहा जाता है जो प्राय: दक्षिण भारत का केश विन्यास है।[122] मध्य कालीन साहित्य मे उल्लिखित सम्पन्न वर्ग की स्त्रियाँ अपने केशो के अलकरण हेतु भी कतिपय आभूषणो का प्रयोग करती थी।[123] स्त्रियो द्वारा जूड को स्वर्ण अथवा चादी से निर्मित चाद्रिकाओ से अलकृत किये जाने के उल्लेख हमे समकालीन साहित्य मे प्राप्त होते है। बालो को सुसज्जित करने के लिए महिलाए रत्नजड़ित हार का प्रयोग करती थी।[124]

माग मे सिदूर भरना विवाहित हिन्दू स्त्रियो मे शुभ एव सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है अत: मध्य युगीन स्त्रियाँ भी अपनी माग सिन्दूर एव मोतियो से अलकृत करती थी।

रचि पत्रावली माग सेदूरा, भरि मोतिन्ह औमानिक पूरा [125]

---

119 **मृगावती** पृ0 141, **चादायन** 252/3 **सूरसागर** द्वितीय खण्ड पृ0 57 पद 2027 पृ0 61 पद 2670 पृ0 79 पद 2137

120 दाउद कृत **चादायन** छन्द 207 दोहा 45 पृ0 114 जायसी पृ0 70 पद 61

121 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 594, पद 471

122 जयसीकृत **पदमावत** पृ0 70-71 पद 61

123 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 170 -171 पद 3228, **कीर्तिलता** तृतीय पल्लव छन्द 24 दोहा 101

124 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 170-171 छ 2610

125 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 347 पद 297 तथा दाउद कृत **चांदायन** छन्द 52 दोरा 2 पृ0 109 पद 64 पृ0 62

समकालीन साहित्य में कुमकुम तथा केसर जैसे सुगन्धियों से भरी देदीप्यमान मांग के भी उल्लेख प्राप्त है·

''मोतिनि माग सवारि प्रथम हि, केसरि आड सवारि''126

विवाहित स्त्रिया सिदूर रखने के लिए एक सुदर डिबिया (सिदूर का पात्र) रखती थी जिसे ''सिघोरा''127 कहा जाता था। यह एक विशेष महत्व की वस्तु थी जिसे सुहाग व सौभाग्य का प्रतीक माना जाता था।

तिलक रचना :

मस्तक पर तिलक रचना का हिन्दू सस्कृति मे विशेष महत्व है तिलक की रचना शोभा एव मगल हेतु की जाती है, एव इसे विवाहित स्त्रियो के सौभाग्य एव सुहाग का प्रतीक माना जाता है। समकालीन साहित्य मे तिलक का वर्णन नारी श्रृगार के एक प्रमुख अग के रूप में किया गया है।128 स्त्रियो द्वारा माथे पर लगाया जाने वाला तिलक कस्तूरी, चंदन एव कुमकुम आदि से निर्मित किया जाता था।129 कस्तूरी, चंदन और कुमकुम का प्रयोग केवल मस्तक को ही सुसज्जित करने के लिए ही नहीं किया जाता था वरन यह शीतलता एव सुगन्ध

---

126 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 57 पद 2027 पृ0 73 पद 2732 पृ0 234 पद 3480

127 दाउद कृत **चादायन** छद 88 दोहा 2 पृ0 124 तथा छन्द 253 दोहा 1 पृ0 68 पद 59 पृ0 239 पद 247-48 तथा जायसीकृत **पदमावत** पृ0 333 पद 290

128 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 347 पद 297 पृ0 872 पद 648 तथा **कबीर ग्रन्थावली** पृ0 370 पद 2

129 विद्या पति कृत **कीर्तिलता** द्वितीय पल्लव छन्द 24 दोहा 136 पृ0 84

प्रदान करता था।[130] तिलक एक वैवाहिक महिला के श्रृगार का प्रतीक था, निस्सदेह दुर्भाग्यवश यदि वह विधवा हो जाती थी तो अपने मस्तक से तिलक अथवा बिदी पोछ देती थी ।

आलोच्यकाल मे नारिया अपनी ढोडी पर तिल बनाकर अपने मुख की शोभा मे वृद्धि करती थी[131] समकालीन साहित्य मे तिल बनाकर श्रृगार को नारी के सोलह श्रृगारो मे से एक माना गया है:

तेहि कपोल बाए तिल परा । जेइँ तिल देख सो तिल तिलजरा

जनु धुँधची वह तिल करमुहॉ । विरह बान सोधा सामुहा

अगिनि बान तिल जान हूँ सूझा । एक कटाक्ष लाटक दुइ जूझा

सोतिल काल मेटि नहि गएऊ । अब वह गाल काल जग भएऊ

देखत तैन परी परिछाही । तेहिते रात स्याम उपराही

सोतिल देखि कपोल पर गंगन रहा धुव गाडि

खिननि उठै खिन बूढ़े डोलै नहि तिल छाडि ।[132]

---

130 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 326 पद 285

131 **मृगावती** पृष्ठ 44 पद 56

132 जायसी कृत **पदमावत** पृ0 123-24 पद 109

अंजन या काजल :

अंजन या काजल का प्रयोग भारत वर्ष मे चिरकाल से ही किया जाता रहा है। अजन का ही एक प्रकारान्तर काजल है स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य वृद्धि हेतु नेत्रो मे शलाका द्वारा सुरमा और काजल का प्रयोग करती थीं :

''प्यारी नैननि कौ अजन लै अपने नैननि अजत है''133

तथा

''नैन रेख कज्जल की, देखी सोभा कस देही''134

समकालीन साहित्य कृतियो मे काजल को नारी श्रृगार का एक अग माना गया है। 135 मध्ययुगीन स्त्रियां सुरमा और काजल की स्याही से अपनी भौहो का भी श्रृंगार करती थी .

''बरूनी(?) सघन बनावरि स[जी]

भारथ जीति करन तर भजी

करन अरजुन्न भई जसि क[या] (फुनि वह करन वहरोवहि यथा

सहज बरूनि जनु काजर दिया। यहइ सिगार बीर रस किया ''136

---

133 दाउद कृत **चादायन** 287/3, **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 79 पद 2137 पृ0 202 पद 3382 पृ0 140 पद 3063

134 मझन कृत **मधुमालती** पृ0 153 पद 482

135 **ढोला मारू रा दुहा** , पृ0 82 दोहा 353

136 कुतुबनकृत **मृगावती** पृ0 43 पद 54

अधर रंजन :

अधरो का सौन्दर्य उनकी लालिमा में निहित माना जाता है। अधरो की प्राकृतिक लालिमा को कृत्रिम साधनो से रजित कर अधिक गहरा करने का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। समकालीन साहित्य मे अधरो के श्रृगार हेतु मोम अलतक (आलता) के प्रयोग का भी उल्लेख मिलता है[137] अवलोकित काल मे ताम्बूल के सेवन द्वारा दातो तथा ओष्ठों को रगने का विशेष प्रचलन था।[138] पान के सेवन के पश्चात ही नारी का श्रृंगार सम्पूर्ण माना जाता है।[139]

भारतीय स्त्रियॉं चिरकाल से ही अपने हाथ तथा पाव को रजित करने हेतु मेहदी का प्रयोग करती रही है। हाथो का श्रृगार हथेली पर मेहदी रचा कर ही पूर्ण माना जाता था।[140] समकालीन साहित्य मे नख रंजन के उल्लेख हमे प्राप्त होते है:

''तरूवन्ह जानु रकत गा आई, कै महदी रे सुहागिनि लाई''[141]

---

137 **ढोला मारू रा दुहा** 353 पृ0 82 **विद्यापति पदावली** पृ0 243 पद 178

138 **चादायन** विश्वनाथ प्रसाद पृ0 67-88 पद 58 **चांदायन** माता प्रसाद गुप्त पृ0 348 पद 350

139 **चादायन** 248/2, ढोला मारू रा दुहा 353 पृ0 82, **मृगावती** माता प्रसाद गुप्त पृ0 73 पद 56 पृ0 221 पद 260 तथा **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 61 पद 2670 पृ0 57 पद 2644

140 **लोरकहा** डा0 माता प्रसाद गुप्त, पृ0 14 पद 7

141 कुतुबन कृत **मृगावती** पृ0 50 पद 64

इसी प्रकार पैरो को आलता से रजित करना भी विवाहित स्त्रियो का सौभाग्य चिन्ह माना जाता है।[142] अवलोकित काल मे एडियो के श्रृंगार हेतु जावक, महावर तथा आलता आदि द्रव्यो का प्रयोग किया जाता था।

''लटपटि पाग महावर के रग ''[143]

पूर्व मध्ययुगीन साहित्यिक रचनाओ मे गणिकाओ की श्रृगारिक विधियो का विस्तृत उल्लेख मिलता है वे अपने मुख का भली भॉति मण्डन करती, सिन्दूर लगाती, वेणी गूथती, टीका लगाती, दिव्य वस्त्र धारण करती, केश जाल को उभार कर सज्जित करती तथा विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पो द्वारा श्रृगार करती थीं।[144] इसी प्रकार समीक्षा धीन साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि मध्य युगीन स्त्रियॉं विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनो से भली भॉंति परिचित थी। सिर से नख तक श्रृगार वस्त्र और आभूषणों के प्रयोग के द्वारा वे अपने प्राकृतिक सौन्दर्य मे और अधिक वृद्धि का प्रयास करती थी।

---

142 **विद्यापति पदावली** प्रथम सस्करण 1952 पद 91 दोहा 12 प0 145 तथा पद 129 दोहा 10 पृ0 204

143 **सूर सागर** खण्ड दो, पृ0 151 पद 3121 पृ0 174 पद 3237 **विद्यापति पदावली** रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी द्वारा सम्पादित पद 62 पृ0 89

144 **कीर्तिलता** (डा0 वीरेन्द्र श्रीवास्तव) पद 134 - 40 पृ0 79 तथा **कीर्तिलता** (चिरगांव, झासी) साहित्य सदन, प्रथम सस्करण द्वितीय पल्लव छन्द 24 दोहा 136 पृ0 84, तथा **पदमावत** पृ0 44-45 पद 38

मध्यकालीन स्त्रियों का आर्थिक योगदान

विद्या एव ज्ञान प्राप्त करने के क्षेत्र मे भारतीय नर नारियो को वैदिक काल से एक ही स्तर पर आका जाता था।[1] परदा प्रथा के प्रभाव के कारण मुसलमान तथा हिन्दु दोनो की स्त्रियो की शिक्षा की ओर उचित अभिरूचि लेने से वचित रही।[2] तथा मध्यकालीन भारतीय स्त्रिया अपने विशेषकर कुलीन एव समृद्ध वर्ग की स्त्रिया अपने अभिभावको द्वारा नियुक्त निजी शिक्षको द्वारा शिक्षा प्राप्त करती थी।[3] कुलीन वर्ग व मुसलमान शासको के लोगो मे पुत्रियो की शिक्षा की स्वतंत्र व्यवस्था थी। कुछ ऐसी भी शिक्षण सस्थाओ की व्यवस्था थी जहां हिन्दु बालक तथा बालिकाओ के लिए प्राथमिक विद्यालय स्तर तक सह शिक्षा का प्रबन्ध था।[4] मुस्लिम बालिकाए भी प्राथमिक विद्यालय तक सह शिक्षा प्राप्त करती थी। इसके बाद की इनकी शिक्षा वैयक्तिक गृहो या किसी सस्था विशेष मे होती थी।[5] इन मध्यकालीन शिक्षण सस्थाओ व वैयक्तिक आश्रमो के शैक्षणिक केन्द्रों के अतिरिक्त मनोरजनात्मक तथा पौराणिक कथाएँ शिक्षा का एक उत्तम साधन थी. हिन्दू स्त्रियॉ इस कथा पद्धति से विशेषरूप से प्रभावित थीं।

---

1 **नागरी प्रचारिणी पत्रिका** भाग-10 वि0 स0 1986 पृ0 533,38 मे प्रकाशित श्रीमति अन्नपूर्ण देवी द्वारा लिखित स्त्री शिक्षा शीर्षक लेख।

2 एफ0 इ0 की0 **इण्डियन एजुकेशन इन ऐन्सियेन्ट एण्ड लैटर टाइम्स** ओ0 यू0 पी0, लदन द्वितीय सस्करण, 1938, पृ0 77

3 वही

4 ए एल श्रीवास्तव, **मेडियवल इण्डियन कलचर,** आगरा, प्रथम सस्करण, 1964, पृ0 113

5 रेखा मिश्रा, **वीमेन इन मुगल इण्डिया** (1526-1748) दिल्ली, नवम्बर 1967, पृ0 12

निरूपित काल मे पुरुषो और स्त्रियो की शिक्षा मे कोई विभेद दृष्टिगोचर नही होता।

विद्यालय की शिक्षा प्रदान करने के अतिरिक्त तत्कालीन बालिकाओ के गृहविज्ञान की भी विशेष शिक्षा-प्रदान की जाती थी। प्राथमिक शिक्षोपरान्त बालिकाएँ, प्रौढ़ स्त्रियो की, देखरेख मे गृह-विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करती थी। उच्च शिक्षा, प्राप्त करने का अवसर सौभाग्यशालिनी स्त्रियो को ही प्राप्त होता था।[6] समकालीन ग्रथो से कुलीन परिवार की महिलाओं की उच्च शिक्षा की पाठचर्या का ज्ञान होता है। योग्य राज कन्याओ को वेद, कामशास्त्र[7], छन्द शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, दर्शन शास्त्र, तर्कशास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, तत्र-विद्या, गणित, उपनिषद, सगीत शास्त्र[8] कल्पशास्त्र चित्रकला[9] गृह-विज्ञान[10] आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। हिन्दू बालिकाओ को पारिवारिक सुख शान्ति के लिए विश्वश्रेष्ठ विनयपाठ की विशेष शिक्षा दी जाती थी।[11]

चन्दबरदाई रचित प्रसिद्ध रचना 'पृथ्वीराज रासो' मे राजकुमारी सयोगिता की शिक्षा का उल्लेख उपलब्ध है। राजकुमारी सयोगिता मदना ब्राह्मणी द्वारा

---

6 एस० एम० जाफर, **कलचरल आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम रुल इन इन्डिया,** पेशावर प्रथम सस्करण 1929 पृ० 85।

7 मझनकृत **'मधुमालती',** डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित तथा मित्र प्रकाशन (प्रा०) लि०, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित, 1961, दोहा, 550, पृ० 395।

8 जायसी कृत **'पदमावत'** साहित्य सदन चिरगाँव (झासी) प्रथमावृत्ति, 2012 वि० स० दोहा 168 पृ०-161।

9 वही।

10 चन्द बरदायी कृत **'पृथ्वराज रासो'** साहित्य सस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, (राजस्थान) प्रथम सस्करण, वि०स० 2011 तृतीय भाग, दोहा, 17-पृ० 221।

11 वही दोहा-28 कवित उ० प्र० - 226-27।

सचालित विद्यालय मे अध्ययन करती थी। जहॉ अन्यान्य कुमारियो के सग कन्नौज नरेश जयचन्द की सुपुत्री भी विद्या अध्ययन करती थी।[12] राजकुमारी सयोगिता के साथ रजोगुण-युक्त एक सौ दस छात्राएँ भी अध्ययन करती थी, जिनमे एक सौ पॉच विविध देश के नरेशो की राजकन्याएँ सम्मिलित थी।[13] रूपवती सयोगिता की शिक्षा के लिए राजा जयचन्द ने उत्तम चरित्र युक्त वृद्ध शिक्षिका को नियुक्त किया था।[14] उसे आरम्भ मे गृहविज्ञान एव धर्म शास्त्र की शिक्षा दी गयी।[15] सयोगिता यौवनावस्था के प्रारम्भ मे जब बारहवर्ष नौ मास और पॉच दिन की हो गयी तो-शिक्षिका मदना उसके हृदय मे पटुता और सुघडता की शिक्षा उतारने लगी।[16] तदुपरान्त शिक्षिका के सयोग से संयोगिता नियम और विनयपाठ पढ़ने लगी।[17] नारी शिक्षा की प्रत्यक्ष झलक मलिक मुहम्मद जायसी रचित 'चित्ररेखा' से भी मितली है। नायिका चित्ररेखा का विद्यारम्भ पॉच वर्ष की अवस्था से होता है। वह गुरू गणेश के निरिक्षण मे अध्ययन करती है जब तक वह पूर्ण विदुषी नही हो जाती तब तक उसका अध्ययन क्रम निरन्तर चलता रहता है—

> ''पॉच बरिस मॅह भई सोबारी, रसना ऑब्रित बैन सॅवारी।
>
> लाग पढावई गुरू गनेसू, भई पडित सम सुनी बरेसू।[18]

---

12 वही, तृतीय भाग दोहा-1, पृ०-224।

13 वही दोहा-16, पृ० -221।

14 वही, दोहा:13, पृ०-219 तथा पृ० -245।

15 वही, दोहा-17, पृ०-221।

16 वही, दोहा-4, पृ०-216।

17 वही, **विनय मगल,** 19, पृ० 222।

18 मलिक मुहम्मद जायसी कृत **'चित्ररेखा'** हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम सस्करण, अप्रैल 1959, पृ०-81।

इसके अतिरिक्त मझनकृत मधु मालती से भी विक्रम राजकुमारी मधुमालती के विद्याध्ययन का उल्लेख मिलता है। वह पूर्ण शिक्षित थी। उसने 'कामशास्त्र' का अध्ययन किया था।[19]मधुमालती अपनी माता के आग्रह पर अपनी प्रिय सहेली प्रेमा को पत्र लिखती है। कवि मझन मधुमालती के पत्र लिखने का वर्णन इस प्रकार करता है—

''समाचार जेत इहा के रहे, तै सम लिखि कागर पर कहे''[20]

वह राजकुमार मनोहर के पास भी प्रेमपत्र प्रेषित करती है। विवाहोत्सव मे सम्मिलित होने के लिए अपनी अभिन्न सहेली प्रेमा को पत्र लिखकर आमत्रित करती है।[21] मधुमालती की सखी चित्रसेन की राजकुमारी प्रेमा भी शिक्षित थी। एक अवसर पर उसने राजकुमार मनोहर को अपनी सहेली मधु मालती का पत्र पढकर सुनाया था। साथ ही उसने अपनी सखी के पत्र का उत्तर कागज पर स्याही से सुन्दररीति से लिखकर दिया था।[22] कुतुबन कृत 'मृगावती' की नायिका मृगावती भी शिक्षित थी। उसे काम शास्त्र का ज्ञान था।[23] राजकुमारी पद्मावती की शिक्षा पॉच वर्ष की आयु से ही आरम्भ होती है। उसे विविध प्रकार की शिक्षाये दी जाती है साथ ही पुराणो का अध्ययन भी करती है। अध्ययन के बल पर ही वह पूर्ण विदुषी बन जाती है। रूप लावण्य के साथ-साथ उसके विद्वता की प्रसिद्धि

---

19 मझनकृत 'मधुमालती' मित्र प्रकाशन प्रा० लि०, इलाहाबाद, 1961 दोहा 450 पृ०- 395।

20 वही दोहा- 400 पृष्ठ -349 कवि।

21 वही दोहा-433 पृष्ठ -379।

22 वही दोहा-423 पृष्ठ -370।

23 कुतुबन कृत **मृगावती** सम्पादक डा० शिव गोपाल मिश्र प्रथम सस्करण, हि सा स द्वारा प्रकाशित प्रयाग शक सम्वत् 1885, पृष्ठ 143।

चारों दिशाओ मे फैल जाती है। जायसी ने पद्मावत मे इसका उल्लेख इस प्रकार किया है—

पॉच बरसि मॅह भई सो वारि। दीन्ह पुराण पढ़ै बैसारी।

मै पद्मावती पडित गुनि, चहुॅखण्ड के राजन्ह सुनी॥

सिहाल दीपराज हार बारि, महा सुख्म दैव औतारी।

एक पदुमिनी औ पडित पढ़ी, कहूॅ केहि जोग दैय असि गढी॥

जा कहॅ लिखि लच्छि घर होनी, असि सो पाव पढी औलानी।

सप्तदीप के बर औ ओनाही, उत्तर पावही फिरि-फिरि जाहीं।[24]

वह चित्रकला तथा वीणावादन मे भी निपुण दिखाई पडती है।[25] निरूपित काल की साक्षर हिन्दू महिलाओं मे लखीमा देवी, विश्वास देवी[26] तथा कवि विद्यापति की पुत्रवधू चन्द्रकला[27] की भी गणना की जाती है। इसके अतिरिक्त विविध स्थानो मे तत्कालीन शिक्षित नारियो मे सूर्यमती[28] लीलावती, राणकदेवी, लल्लेश्वरी (लल्लेयोगेश्वरी) को सस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन था। वह कश्मीर के प्रारम्भिक समाज तथा शिक्षा सुधारकों मे से एक थी। उसने सस्कृत के स्थान पर सुलभ कश्मीरी भाषा को अपने सिद्धान्तो के प्रचार का माध्यम बनाया।[29]

---

24 जायसी कृत **पद्मावत** सा० स० चिरगॉव झासी प्रथमावृत्ति वि० स० 2012 दोहा 53 पृष्ठ – 53।

25 वही दोहा–168 पृष्ठ–161।

26 विद्यापति कृत **कीर्तिलता** सा०स०चि०झा० प्र०स० 1962 पृष्ठ–10।

27 आर०–आर० दिवाकर बिहार थ्रू द एजेज, औरियन्ट लॉगमैन, 1959 पृष्ठ–414।

28 ए०बी० कीथ **ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर**, लण्डन प्र० स० 1920 पृष्ठ–281।

29 आर० के० परमकृत **ए हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन काश्मीर** (1320–1819)

तारा[30] और आनन्दी[31]के नाम आते है। तुर्क अफगान कालीन कुछ ज्ञान प्राप्त एव निपुण शासक नारी-शिक्षा की ओर अग्रसर थे। उन्होंने अपने राज्य मे बालिकाओ के लिए विद्या अध्ययन हेतु अनेक विद्यालयों का निर्माण कराया।[32] माबार का सुल्तान स्त्री शिक्षा के लिए बहुत उत्सुक था। इब्नबतुता ने उसके राज्य का भ्रमण किया और माबार (हनौर) की नारियो के बारे मे वह लिखता है—

''हनौर का शासक सुल्तान जलालउद्दीन बहुत शक्ति शाली तथा मृदु स्वभाव का था। वहाँ की समस्त स्त्रियो को कुरआन कठाग्र था। हनौर नगर मे बालिकाओ के तेरह तथा बालकों के लिए तेईस विद्यालय थे।[33] नारी शिक्षा की यह स्थिति देखकर इब्नबतूता को आश्चर्य हुआ। सल्तनत काल के मालवा के सम्राट गियासुददीन खिलजी (1463-1500 ई0) भी नारी शिक्षा के प्रति विशेष रूचि रखते थे उनके दरबार मे पद्रह हजार स्त्रियाँ थी। सम्राट की आज्ञा से उन स्त्रियो को अनेक प्रकार की कलाओं व्यवसायो और सगीत की शिक्षा प्रदान की गई। नारियो को विभिन्न समूहो मे बाट कर किसी न किसी कला के साथ जोडा गया था। उदाहरण के लिए एक समूह को राजमहल की पहरेदारी अस्त्रों, शस्त्रो की सुरक्षा और चाऊस (सेना तथा दरबार की पक्तियो को ठीक करने वाली) के लिए नियुक्त किया गया था। कजा (न्यायाधीश), एहतिसाब (धर्मिक नियमो की जॉच) अजान (नमाज के समय से सूचनार्थ) खुतबा (एक प्रकार का धार्मिक प्रवचन), इमामत (नमाज पढाने के नेतृत्व), बाज (धार्मिक प्रवचन), नियामत

पिपुल्स पब्लिशिग हाउस प्राइवेट लि० ने दिल्ली अगस्त 1969, पृष्ठ-109।

30 मनुशर्मा राणा सागा हि० प्र० पु० बनारस प्र० स० पृष्ठ-42।

31 वही।

32 एस० एम० जाफर **एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया** पेशावर, प्र० स०, 1936 पृष्ठ-198।

33 **दि रेहुॅला ऑफ इब्नबतुता,** ओरियन्टल इन्सिट्यूट, बडौदा, 1953 पृ० 179, पुनः देखिये वायजेज डि इब्नबतुता (अरबी मूल ग्रन्थ), भाग 4, पृ० 67।

(परामर्श दाता), इफ्ता (धार्मिक परामर्श दाता), किरअत (उचित स्वर मे कुरआन पाठ), और विद्या अध्यन का कार्य भार स्त्रियो को सौपा गया था। स्त्रियो की बस्ती मे अलग से मदरसा बनाया गया था। स्त्रियॉ सम्राट को कुरआन और हदीस सुनाती थी। यहॉ मालवा के सुल्तान गियासुद्दीन खिलजी के अन्त:पुर की लडकियो की शिक्षा का उल्लेख है। इन लडकियो में से प्रत्येक को उनकी कला के अनुसार किसी न किसी कला की शिक्षा दी जाती थी। कुछ को नृत्य और सगीत की कला अन्य को पढना सस्वर पाठ करना, वीणावादन, ढाल चलाना तथा कुछ को मल्लक्रीडा सिखाया जाता था।[34] राजपरिवारो की पढी लिखी और विदुषी नारियो का उल्लेख उपलब्ध है। उदाहरण के लिए इल्तुतमिश की पटरानी शाह तुरकान को शासन व्यवस्था की अच्छी तरह से ज्ञान था अपने बेटे रुकुनुद्दीन को (जो कि उसका अतिप्रिय पुत्र था) विलास मे डूबा हुआ देखकर शाह तुरकान ने शासन का कार्य-भार अपने हाथ में ले लिया और स्वय निर्णय देना शासन के कार्यो का सम्पादन रजाज्ञा आदि प्रेषित करना शुरू किया।[35]

इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरणो मे रजिया सुल्तान का नाम है। रजिया सुल्ताना एक योग्य पिता की पुत्री थी। युद्ध कला मे अच्छी तरह से प्रवीण थी। इतना ही नही युद्ध कला के अतिरिक्त एक योग्य राजा के लिए जिन प्रशसनीय गुणो की आवश्यकता होती है वे सभी गुण उसमे थे। वह अपने पिता इल्तुतमिश के शासन काल मे शासन व्यवस्था मे भाग लिया करती थी। रजिया सुल्ताना अपने

---

34 जे ब्रिग्स, **तारीख-ए-फरिश्ता,** भाग 4, पृ०-236, तथा मुल्लाअब्दुल बकी, **नहाबन्दी, मासीर ए रहीमी** भाग-1 एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल, 1924, पृ० 145, ख्वाजा निजामुउद्दीन अहमद, **तबकात ए अकबर** भाग-3 बिव, इण्ड, कलकत्ता 1939, पृष्ठ 544-545।

35 **मेनहाज उज शिराज तबकात-ए-नासिरी,** अनुवादक मेजर एच० जी० रेवर्टी लन्दन, 1881, पृष्ठ-6321।

काल की पूरी तरह से योग्य शासिका एव विदुषी नारी थी।[36] रजिया सुल्ताना को अश्वारोहण और सैन्य सचालन के बारे मे भी अच्छा ज्ञान था।[37] उसे नारी कर्तव्यो के ज्ञान के साथ ही राजनीति और राज्य से सम्बन्धित समस्तपक्षो का ज्ञान था।[38] वह कुरआन का पाठ का शुद्ध उच्चारण के साथ करती थी।[39] गुलाम वश के सुल्तान नासि उद्दीन के समय के इतिहासकार मिहिनाज-उस-सिराज ने अलाउद्दीन जहॉ रोजा की पौत्री राज कुमारी माहमलिका के जिसे जलाल-उ-दुनिया भी कहते है-विद्वता की बडी प्रशसा की है। उसके द्वारा लिखे गये लेख को ''राजकीय मोती' की सज्ञा दी है।[40] इसी प्रकार के अन्य उदाहरणो मे सुल्तान जलालउद्दीन की पत्नी का नाम है। बरनी लिखता है कि जलालउद्दीन के मरने के बाद अपने सबसे छोटे बेटे को दिल्ली का सिहासन प्रदान किया और 'मलिका जहॉ' स्वय सरक्षिका बनी। सम्पूर्ण राज्य व्यवस्था और शासन प्रबन्ध अपने हाथ मे ले लिया। उसके शासन काल मे राज्य से सम्बन्धित समस्त प्रार्थनापत्र उसके ही सामने रखे जाते थे। और वह उस पर स्वय निर्णय देती एव आज्ञा प्रदान करती थी।[41] इसी प्रकार सुशिक्षित स्त्रियो मे सुल्तान अलाउद्दीन की बेटी फिरोजा का नाम है। फिरोजा एक विदुशी स्त्री थी। उसे सकुन निकालने की विद्या का अच्छी तरह से

---

36 वही, पृ० (637-638)

37 ए० एल० श्री० **मेडियेवल इण्डियन कल्चर,** शिवलाल अग्र० एण्ड कम्पनी, आगरा प्र० स० पृ०-168।

38 जान एच पूल, **फेमस विमेन ऑफ इण्डिया,** सुशील गुप्त (इण्डिया), लि , कलकत्ता 12, द्वारा प्रकाशित, दि० स० , 1952, पृ० (83-84)।

39 जे ब्रिग्स, **तारीख-ए-फरीश्ता** भाग 1, पृ० 2/7।

40 **मिनहाज-उस-सिराज, तबकातए-नासरी** अग्रेजी अनुवाद, लन्दन, 1881 पृ० 392, तथा एस० एफ० जाफर **एजुकेशन इन मुस्लिम इण्डिया,** पेशावर, प्र० स० 1936, पृ० 192।

41 जियाउद्दीन बरनी, **तारीख ए फिरोजशाही** सैय्यद अहमद खा द्वारा सम्पादित विभ इण्डि कलकत्ता, 1862 पृ० 238।

ज्ञान था अच्छी ज्योतिष विद्या के ज्ञान के साथ ही उसे अपने पूर्व जन्म के बारे मे भली-भाति ज्ञान था।[42] गियासुउद्दीन तुगलक की बेटी खुदाबन्द ज्यादा पूर्णत· साक्षर महिला थी वह वाद-विवाद करने मे निपुण थी। फिरोज तुगलग के साथ काफी समय तर्क-वितर्क में बिताया करती थी।[43] सुल्तान बहलोल लोदी के राजमहल की सभी स्त्रियॉ पूरी तरह से साक्षर थी। उसके समय मे दरबार मे सत्तर गुलाम स्त्रियो को कुरआन अच्छी तरह से कठाग्र था। जब वह अपना वस्त्र बदलता था तो स्त्रियॉ कुरआन की पक्तियॉ पढती थी।[44] इसी प्रकार सिकन्दर लोदी के समय मे साधारण परिवार के स्त्रियॉ भी फातिहा (कुरआन का प्रथम अध्याय जो किसी मृत व्यक्ति की आत्मा की शान्ति के लिए पढ़ा जाता है) पढ लेती थी।[45] वाकयात-ए-मुश्ताकी मे उल्लिखित है कि सिकन्दर लोदी के शासन काल में दरबार मे दिलदार गाचा नाम की एक अत्यन्त विदुषी महिला थी।

इस प्रकार इस काल मे स्त्री शिक्षा केवल राजघरानों और समृद्ध व्यक्ति तक ही सीमित थी। उनकी स्वतंत्रता का हास पर्दा प्रथा से हुआ जिसके कारण शिक्षा की धीरे-धीरे अवनति होती चली गयी। समाज के निम्न वर्ग और गरीब परिवार की स्त्रियो को शिक्षा का उचित अवसर और अवकाश मिलना कठिन था। इसलिए ग्रामीण स्थानों का नारी-समूह यदि अशिक्षित रह गया तो इसमे कोई बड़ी बात नही है। विद्यार्जन के क्षेत्र मे कुछ हिन्दू शासक भी तुर्क-अफगान सुल्तानो

---

42 जयन्त कृष्ण दवे, **गुजराती साहित्य का इतिहास**, हिन्दी-समिती, सूचना विभाग उ० प्र० (लखनऊ) प्र० स० 1963, पृ० 83।

43 महदी हुसैन **द तुगलक डाईनेस्टी**, थाक्केर, स्पिक एण्ड कम्पनी (प्रा०) लि० कलकत्ता, 1963, पृ० 80।

44 निजामुद्दीन अहमद, तबकात-ए-अकबरी, भाग-3 बिब इण्डि०, कलकत्ता 1939, पृ० 54 7।

45 सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी, **उत्तर तैमुर कालीन भारत** भाग-1, हिस्ट्री डिपार्टमेट, अलीगढ मुस्लिम युनीवर्सिटी, अलीगढ, प्र० स० 1958 पृ० 123।

से कम नही थे। हिन्दू शासको ने अपने आत्मजो की सर्वागीर्ण और सम्पूर्ण शिक्षा के लिए उचित प्रबन्ध करते थे। राजाओ के पुत्रो को वेद वेदाग, व्याकरण, ज्योतिष[46], कामशास्त्र[47], सगीत[48] स्मृति, काव्य धर्मशास्त्र, दर्शन, शास्त्र आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। उन्हे मानसिक शिक्षा के साथ-साथ पुरूषार्थ प्राप्त करने के लिए शारीरिक शिक्षा भी प्रदान की जाती थी। मानसिक और शारीरिक शिक्षा सहगामी थी।[49] राजकुमारो की शिक्षा प्राय: पाच साल की उम्र से शुरू होती थी।[50] महाकवि चन्दवरदाई द्वारा रचित ग्रन्थ पृथ्वी राज रासो मे प्रसिद्ध राजपूत शासक पृथ्वी राज चौहान की शिक्षा का उल्लेख है। इस-ग्रथ से पता चलता है कि राजकुमार पृथ्वीराज ने अपने कुल के पुरोहित गुरू राम से विद्याप्राप्त किया था उनके गुरु ने उन्हे चौदह तरह की विधाओ में निपुण कराया और पाटी पर सुन्दर लिपि मे लिखने की कला भी सिखाई इसके बाद पृथ्वीराज ने बहत्तर कलाओ मे दक्षता प्राप्त करके निबंधों की जानकारी प्राप्त की साथ ही साथ प्रत्येक काम के कारणो की पूरी जानकारी प्राप्त करके वह चौरासी प्रकार के विज्ञानो के ज्ञाता बन गये। यहॉ कवि चन्दवरदाई ने चौहान राजा पृथ्वी राज की शिक्षा का उल्लेख इस प्रकार किया है—

---

46 मझन कृत ''**मधुमालती**'', मित्र प्रकाशन (प्रा०) लि० इलाहाबाद, 1961 छन्द 57, पृ० 47।

47 कुतबन कृत ''**मृगावती**'' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग शक सम्वत् 1885,- पृ० 143।

48 चन्दवरदाई रचित ''**पृथ्वीराज रासो**'' प्रथमभाग, साहित्य सस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ उदयपुर द्वारा प्रकाशित, प्र० स० वि० स० 2011 दोहा-63 पृ० 29।

49 मझन कृत ''**मधुमालती**'' मित्र प्रकाशन (प्रा०) लि०, इलाहाबाद 1961, छन्द 58, पृ0 48।

50 वही छन्द 56, पृ० (46-47)।

''कोइक दिन गुरू राम पै, पढी सु विधा अथ।

चवदे विद्या चतुर वर, लाई सीखपर लिप्प।

कला बहुत्तरी करी कुसल, अति निबद्ध जिय जानी।

हेत आदि जानत निपुन, चतुरा सीति विज्ञान।[51]

इसके साथ ही पृथ्वीराज ने सुन्दर कला एव छत्तीस तरह के शास्त्रो के सचालन की शिक्षा प्राप्त की और सत्ताइस तरह से शास्त्रो के पढने एव शब्दो के शुद्ध उच्चारण मे निपुण हो गये - कवि लिखता है

''सबद आदि दै निपुन अति सास्त्रह सत्ताबीस।[52]

महाकवि चन्दबरदाई ने लिखा है कि राजकुमार पृथ्वीराज उस समय की प्रचलित सस्कृत प्राकृत अपभ्रश, पिशाचिका, मागधी, एवं सुरसेनी—इन छः भाषाओं का ज्ञान रखते थे। ''पृथ्वी राज-रासो मे पृथ्वी राज की शिक्षा का उल्लेख इस प्रकार है—

''सस्कृत प्राकृत चैव, अपभ्रश पिशाचिका

मागधी, सूरसेनी च षट् भाषश्चैव ज्ञायते।''[53]

---

51 चन्दबरदायी रचित, **पृथ्वीराज रासो,** भाग-1 साहित्य स० राजस्थान, विश्वविद्यापीठ उदयपुर, प्र० स० 2011, दोहा-6061 पृ० 28।

52 वही, खण्ड-एक (**आदि -कथा**) दो०-64 पृ०-29।

53 वही, श्लोक-65 पृ० 29।

वह छत्तीस लक्षणो से युक्त-चित्रकला एव सगीत का भी ज्ञाता था।[54] महाभारत कालीन वीर अर्जुन (पार्थ) के समान ही पृथ्वी राज धनुर्विद्या मे भी पारंगत था। कवि ने उसका वर्णन इस प्रकार किया—

"पृथ्वीराज चौहान, बन पारथ बली, बडह।" [55]

मध्यकालीन हिन्दी ग्रथ मृगावती मे हमे राजपरिवारो मे शिक्षा के सदर्भ प्राप्त होते है यह स्पष्ट होता है कि उक्तकाल मे मानसिक एव शारीरिक दोनो प्रकार की शिक्षाए प्रदान किये जाने पर जोर था।[56] शिक्षा के अन्तर्गत पुराणो की व्याख्या नाट्य शास्त्र, छन्द शास्त्र, अमर कोष, अश्व विद्या, काम शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र तथा सगीत आदि मे निपुण किया जाता था।[57] मझन कृत मधुमालती जो मध्यकाल की एक अन्य प्रसिद्ध रचना है उसमे इनके अतिरिक्त व्याकरण, ज्योतिष, योगशास्त्र का भी उल्लेख हमे मिलता है।[58] इस प्रकार हम कह सकते है कि विवेच्य काल मे निश्चित पाठ्यखम के अन्तर्गत सुनियोजित शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। यह शिक्षा विशेष रूप से अभिजात्य को सुलभ थी। उपरोक्त काल मे हमें शिक्षाओ के केन्द्रो के रूप मे मदरसों मकतबो के साथ-साथ सूफी सतो के खानकहो के विशेष उल्लेख मिलते है। हालाकि खानकहो मे मूलतः धार्मिक व आध्यात्मिक शिक्षा पर बल दिया जाता था।[59]

---

54 वही, दोहा-64 पृ० 29।

55 वही, समय-6 (**आखेट वीर वरदान**) कवित 63, पृ० 128।

56 कुतुबन कृत '**मृगावती**' पृ० 101-102 उद्धत-साहू-पूर्वोक्त पृ० 170।

57 वही।

58 मझन कृत "**मधुमालती**" प0-47-48-छन्द, उद्धत साहू पुर्वोक्त पृ० 171।

59 साहू पूर्वोक्त पृ० 172 से 175।

अलबेरूनी ने अपनी पुस्तक मे प्रचलित हिन्दू समाज के विभिन्न सामाजिक वर्गो का विस्तृत वर्णन किया है। जाति प्रथा की चर्चा करते हुए वह अपनी व्याख्या इस प्रकार आरम्भ करता है। "हिन्दू अपनी जाति को वर्ण अर्थात् रग कहते है। तथा वशावली के दृष्टिकोण से उन्हे जातक अर्थात् जन्म कहते है। प्रारम्भ से ही ये चार जातियॉ थी।[60] ब्राम्हणो का उल्लेख करते हुए अलबेरूनी लिखता है — ब्राह्मण सर्वोच्च जाति के है जिनके विषय मे हिन्दू ग्रथो मे कहा गया है कि उनकी उत्पति ब्रह्मा के सिर से हुई है। चूकि ब्राह्मण ही परमात्मा की शक्ति का दूसरा नाम है। तथा सिर ही शरीर का सर्वोच्च भाग है। अत: ब्राह्मण ही समस्त जातियो के सिरमौर है। इसीलिए हिन्दू उन्हे मानव जातियो मे सर्वश्रेष्ठ मानते है।[61] हिन्दुओं के धर्म ग्रन्थो से उद्धृत करते हुए अलबेरूनी लिखता है क्षत्रियो को हृदय आतकित करने वाला वीर और उच्च विचार वाला, भाषण के लिए तैयार व उदार होना चाहिए, उसे आपत्तियो से निश्चित होकर केवल उन महान कार्यो की पूर्ति की अभिलाषा करनी चाहिए जिनसे चिर आनन्द की प्राप्ति हो।[62] अलबेरूनी वैश्यो का उल्लेख इस प्रकार करता है। "वैश्य का यह धर्म है कि वह कृषि करे तथा ब्राह्मणो को उनकी आवश्यकताओ से निवृत्त करे।[63] चौथा वर्ण शूद्र था जो अपने से ऊपर तीनो वर्णो की सेवा किया करता था। अलबेरूनी आगे लिखता है " शूद्र के बाद उन लोगों का स्थान है जिन्हे अन्तयज कहते है। जो विभिन्न प्रकार के सेवा कार्य करते है। जिनकी गणना किसी भी जाति मे नही होती। किसी विशेष शिल्पकार या पेशा करने वालो के रूप मे उनकी गणना होती

---

60 अलबेरुनी इण्डिया,1 (सचाऊ) पृ०-100।

61 अलबेरूनी इण्डिया-1 (सचाऊ) पृ० 100-101।

62 वही, पृ० 103।

63 वही, पृ० 136।

है। उनके आठ वर्ग होते है। जो कि धोबी, चमार और बुनकर को छोडकर परस्पर वैवाहिक सबध जोडते है। क्योकि उनके साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने की किसी ने कृपा नही की। ये आठ श्रेणिया है- धोबी, चमार, मदारी, डोम तथा ढाल बनाने वाला, नाविक, मछुआ, व्याधा और बुनकर ये गावो या नगरो के निकट चार जातियो से पृथक निवास करते है।[64] हादी, डोम, डोम्ब चाण्डाल तथा ब्राधातऊ की गणना निम्नतम वर्ग मे होती थी। और उन्हे किसी भी जाति या कबीले मे स्वीकृत नही माना जाता था अलबेरूनी लिखता है " वे दूषित कार्य करते है जैसे गाव की सफाई करना तथा अन्य सेवा मे उन्हे एक मात्र वर्ग का समझा जाता है। तथा अपने पेशे से वे पहचाने जाते है। वास्तव मे उन्हे अवैध बच्चो की तरह माना जाता है क्योकि सामान्यमतानुसार वे शूद्र पिता व ब्राहमणी माता के व्याभिचारो से उत्पन्न सन्तान है। अत: वे जाति भ्रष्ट पतित है।[65] विभिन्न जातियो और वर्गो के विभिन्न व्यवसायों का उल्लेख करते हुए अलबेरूनी लिखता है। चारों जातियो के प्रत्येक व्यक्ति को उसके व्यवसाय और जीवन प्रणाली के अनुसार हिन्दू उसे विशिष्ट नाम से पुकारते है। उदाहरणार्थ जब तक ब्राहमण अपने घर मे रहते हुए अपना कार्य करता है तब तक उसे उसके नाम से पुकारा जाता है। जब वह एक डोम का कार्य करता है तो उसे 'इश्तिन्' कहते है। यदि वह तीन अग्नि कार्य करता है तो वह 'अग्नि होत्रिन' कहलाता है। और जब वह अग्नि को नैवेध चढाता है तो 'दीक्षित' कहते है। यह प्रचलन ब्राहमणो की तरह अन्य जातियो मे भी है। निम्न श्रेणी की जातियो मे हादी सर्वश्रेष्ठ माने जाते है। क्योंकि वह स्वय को गदगी से दूर रखते है। तदुपरान्त डोम है, जो सारंगी बजाते है और गीत गाते है। और भी निम्न श्रेणी के लोग मारने की और अदालत द्वारा आरोपित

---

64 वही- पृ0-101

65 वही- पृ0 101-102

दण्डो को कार्यान्वित करने का पेशा करते है। सबसे निकृष्ट बधातऊ है जो कि केवल मृत पशुओ का ही मास नही, बल्कि कुत्ते तथा अन्य जानवरो का मास भी खाते है।[66] मौलाना दाउद दलमई द्वारा रचित एक समकालीन हिन्दी कृति चादायन मे हिन्दुओ की विभिन्न जातियो का अल्लेख हमे मिलता है, जैसे वाम्मन अर्थात ब्राहमण, खतरी क्षत्रिय गौर, ग्वाला, गहरवार अर्थात गहडवाल, राजपूत अग्रवाल, अग्रवाल वैश्य तिवारी ब्राहमणो की एक उपजाति, हजमनान, हज्जाम या नापित गन्धई जो अन्न और सुगन्धित तेल बेचता है, सोनी सोनार और ठाकुर क्षत्रियो की एक उपाधि।[67]

हमने इनका उल्लेख मात्र इसलिए किया है कि हम अब उनकी स्त्रियो की जानकारी भी प्राप्त कर ले। इन वर्गो की स्त्रियो के योगदान का भी मूल्यांकन हम अपने अध्ययन के आधार पर कर सकते हैं क्योकि इन वर्गो की महिलाए कन्धे से कन्धा मिलाकर अपने पुरूषो के साथ कार्य करके अपने परिवार व अपने पेशे को भी सम्मान व समृद्धि दिला रही थी।[68]

जैसा कि विदित ही है कि प्राचीन काल से ही नारी का प्रमुख कार्यक्षेत्र परिवार ही था, और परिवार के अभ्युदय के लिए वे स्वार्थो का उत्सर्ग करने मे अपना जीवन सार्थक मानती थी। मध्ययुगीन साहित्य में नारी के प्रमुख कर्तव्यो की विवेचना करते हुए लिखा गया है कि उनके मुख्य कर्तव्य थे परिवार के जनो की सेवा करना, भोजन बनाना एव बच्चो का पालन पोषण करना। आत्म सयम और

---

66 वही- पृ0- 102

67 **चॉदायन,** डा0 परमेश्वरी लाल गुप्ता, द्वारा सम्पादित एव हिन्दी ग्रथ रत्नाकर (प्रा0) लि0 बम्बई द्वारा प्रकाशित, प्रथम सस्करण, छन्द-26 पृ0-90

68 देखे, डा0 हेरम्ब चतुर्वेदी का लेख **'कॉन्ट्रीब्यूशन ऑफ द वुमैन ऑफ द प्रोफेशनल क्लासेज टूवर्डस द मेकिग ऑफ इण्डियन हिस्ट्री'**, अध्ययन खण्ड वर्ष पृ0-1

कुशलतापूर्वक धर के सभी कार्यो का प्रबन्ध करना इत्यादि।[69] इन गृहस्थ कार्यो के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे भी कार्य थे जिनके द्वारा महिलाए धनार्जन करती थी और अपने परिवार को आर्थिक सहायता प्रदान करने मे सहायक होती थी। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए मध्य काल मे स्त्रिया विभिन्न जीविका अपनाती थी। और समाज द्वारा उन पर कोई प्रतिबन्ध नही था। जीविका के द्वारा धर्नाजन करने वाली स्त्रियो का मध्ययुगीन समाज मे एक पृथक वर्ग था। इनके अन्तर्गत गणिकाये, देवदासिया, वारागनाये, सेवावृत्ति मे रहने वाली दासिया, ग्वालिन, नाउन तथा बारबनिताओं का उल्लेख किया जा सकता है।[70] साधारणतया सौन्दर्य यौवन व कार्यकुशलता द्वारा धनार्जन करने वाली स्त्रियां गणिकाये कहलाती थी।[71] समय-समय पर जैसे कि सार्वजनिक भोजो, व्योहारो, शादी-विवाह आदि मे मनोरंजन के लिये वेश्याओ व नर्तकियो को आमंत्रित किया जाता था, इनके निवास हेतु नगरो से अलग मुहल्ले बने हुए थे सामान्यत: इन्हे रगी, गणिका, पातुर[72] नर्तकी तथा वेश्या[73] आदि नामो से सम्बोधित किया जाता था। विधवा विवाह तथा नियोग प्रथा का समाज से विलोप हो जाने के कारण वेश्यावृत्ति मे वृद्धि हुयी तथा लोगो का समाज मे वेश्यावृत्ति मे झुकाव अधिक होने के कारण मध्यकाल मे इनकी संस्थाओ मे और भी वृद्धि हो गयी, जब विधवाये, त्यागमय एव कठोर तपस्यामय जीवन व्यतीत करने में असमर्थ होती तो उन पर दुराचारी होने का

---

69 अमीर खूसरो कृत हश्त -बहिश्त पृ0 28, पी एन ओझा, **नार्थ इण्डियन शोसल लाइफ,** दिल्ली, 1975, पृ0 119 **अलबेरूनी इण्डिया सचाऊ** भाग-1 पृ-181

70 माता प्रसाद गुप्त कृत **चादायन,** पृ0 42 पद-44, पृ0-69, पद 71 पृ0-186 पद-191, सूरसारावली पृ0-142 पद-885

71 माता प्रसाद गुप्त कृत **चादायन** पृ0-187 पद-192

72 कुतुबन कृत **मृगावती** पृ0-209 पद-246 पृ- 212-213 छन्द-250

73 माता प्रसाद गुप्त कृत **चादायन** पृ-244 पद-252

आरोप लगाकर घर से निकाल दिया जाता था। परिवार के इस निष्ठुर व्यवहार से पीडित विधवा स्त्री जीवन यापन हेतु कभी-कभी वेश्यावृत्ति को अपनाने को बाध्य हो जाती थीं। गणिका का जीवन सगीत और ललित कला का सम्मिश्रित स्वरूप था। यही उनका प्रधान व्यवसाय भी था। आज की तुलना में मध्यकालीन समाज मे गणिका आदर व सम्मान की पात्र थी। जनजीवन के सास्कृतिक कार्य कलाप और विलासमय जीवन की वह महत्वपूर्ण अंग बन चुकी थी।[74] उदार चरित्र और सदाचार गणिकाओ की महारानियो तथा अन्य कुलीन स्त्रियो से भी यदा कदा तुलना की गयी है। गणिकाओ मे श्रेष्ठ गुण की अपेक्षा की जाती थी। विशेष गुणो तथा व्यवहार से परिपूर्ण वे समाज मे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने की अधिकारिणी होती थी। ये गणिकाये प्राय: सुन्दर होती थी, अपने कपोल व शरीर के अन्य अगो मे विशेष रेखाकृति बनाती थी, जो चदन गोरोचन और कस्तूरी की होती थी।[75] उनके केश अत्यन्त लम्बे होते थे। ऑखे बड़ी-बडी होती थी तथा उनकी सुमधुर आवाज उनके सौन्दर्य मे और अधिक वृद्धि करती थी।

देवदासी प्रथा को वस्तुत: शासक एव अभिजात वर्ग ने प्रश्रय प्रदान किया था। सौराष्ट्र के सोमनाथ मदिर मे पांच सौ देवदासिया थी जो अपने नृत्य द्वारा देवताओ को प्रसन्न करने के लिए सदैव तत्पर रहती थी।

ग्रामीण समाज में बसने के कारण अहिरों के लिए प्राय: गवार अथवा गवारिन शब्द का प्रयोग किया गया है।[76] अपने श्रम से धर्नाजन करने के कारण वे

---

74 **अलबेरूनी इण्डिया**-भाग-2 सचाउ पृ0- 157 तथा **विद्यापति की कीर्तिलता** द्वितीय पल्लव, छन्द-24, दोहा-136, पृ0-84, छन्द-25 दोहा, 132-133

75 ऋतु जायसवाल "**वीमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी- फ्राम द 10वी टू 13वी सेन्चुरी एज द डिपिक्टेड इन कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिटरेचर** इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी फिल उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध पृ0 187-189

76 **सूरसागर**, द्वितीय खण्ड, पृ0 316 पद-3759

कीमती वस्त्रो जैसे लहगा इत्यादि धारण करती थी।[77] वे पूरे साजो श्रृगार के साथ रहती थी उनके लिए प्राय· ग्वालिन शब्द का प्रयोग भी हुआ है।[78] मध्यकाल में ये पेशेवर जातियो के रूप मे ऊभर कर आ चुके थे। इनकी स्त्रिया इनके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य के द्वारा आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाती थी।[79] उन्होने इस काल मे यादव जाति नाम का प्रयोग भी प्रारम्भ कर दिया था और वे आज तक उत्तर भारत मे इसी नाम से पहचाने जाते है।[80] इस जाति विशेष की स्त्रिया न केवल अन्य कार्य मे हाथ बटाती थी बल्कि वे अपने परिवार के पुरूषो के लिए खाना आदि बनाकर गाव के बाहर चारागाह तक पहुँचाती थी।[81] गाय भैसो द्वारा प्राप्त दूध से व दही जमाती थी और इसी से मक्खन निकालती थी दही और मक्खन का कारोबार वे मुख्यत: करती थी और इससे घर की आमदनी भी बढाती थी।[82] जायसी के पदमावत से हमे कायस्थ जाति एव उनकी स्त्रियो का उल्लेख मिलता हैं। जब वो लिखते है---

कैथिनि चली न समाइ न आगा।[83]

कायस्थ मूलत: लेखक एव प्रशासनिक पदो पर नियुक्त थे अत: धन एव पद के दृष्टिकोण से मध्यकालीन भारत मे वे एक महत्वपूर्ण समूहो के रूप मे स्थापित हो

---

77 **सूरसागर,** द्वितीय खण्ड, पृ0-250, पद-3519

78 देखे **सूरसागर** प्रथम खण्ड, पृ0 56 पद-172 **पद्भावत** पृ0-130-31 पद-135

79 हेरम्ब चतुर्वेदी, **''द रोल ऑफ प्रोफेशनल कास्ट वूमन''** अध्ययन खण्ड

80 हेरम्ब चतुर्वेदी, **द सोसाइटी ऑफ नार्थ इण्डिया इन द 16 सेन्चुरी**---1 अप्रकाशित शोध प्रबन्ध इलाहाबाद वि0 वि0 पुस्तकालय पृ0- 103

81 वही

82 वही

83 **पदमावत**- पृ0 177 पद- 185

गये थे।[84] मध्यकाल मे हमे पालकी ढोने वाले कहारो के निरन्तर उल्लेख मिलते है। उनकी स्त्रिया उनके कार्यो मे किसी न किसी रूप मे मदद करती थी[85] उस काल मे धोबी भी समाज के आवश्यक अग थे जिनके बिना लोग साफ सुथरे कपडे भी नही पहन सकते थे उनकी स्त्रिया अर्थात धोबिने न केवल धुलाई आदि मे उनकी मदद करती एव घर का काम-काज देखती अपितु लोगो के यहा पकडा पहुँचाने के कार्य मे सदैव उन्हीं के उल्लेख हमे प्राप्त होते हैं।[86] इसी प्रकार हमें नाउ की पत्नी नाइन के उल्लेख भी हमे प्राप्त होते है। तीज त्योहार मे ये महिलाओ के साथ श्रृगार से लेकर अपने जजमान के यहा ये अनेक प्रकार के कार्य करती थी जिसके लिए इनको अलग से इनाम दिया जाता था।[87] नाइन के साथ अपरिहार्य रूप से कनछेदन, विवाह आदि उत्सवो पर हमें सदैव बारिन का उल्लेख भी मिलता है, जो इन अवसरो पर हमे सदैव बारिन का उल्लेख भी मिलता है, जो इन अवसरो पर महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती थी। इसीलिए इनको इस कार्य के लिये अलग से न्योछावर दिये जाने का उल्लेख मिलता है। इस काल मे सुनारो का बहुत महत्व था। उनकी पत्नी या सुनारिन को भी पर्याप्त प्रतिष्ठा प्रदान की जाती थी। मध्यकाल के समृद्धि के द्योतक थे तथा लोगों के आवश्यकता के अनुसार आभूषण आदि का निर्माण करते थे। पदमावत मे जायसी राजकुमारी की सखियो के रूप मे एक सुनारिन का भी उल्लेख करते है---

चली सोनारी सुहाग सुहाती---[88]

---

84 हेरम्ब चतुर्वेदी शोध प्रबन्ध पूर्वोक्त पृ0-81

85 वही - पृ0 85-86

86 वही पृ0 86-87 तथा 168

87 वही- पृ0 87-88

88 **पदमावत,** उद्धत हेरम्ब चतुर्वेदी, शोध प्रबन्ध, पूर्वोक्त-99

इसी प्रकार हमे कोरी या रस्सी बनाने वालो की महिलाओं के सदर्भ मिलते है चूकि महिलाए और पुरूष दोनो मेहनत से कार्य करते थे अतः सामाजिक स्तर मे काफी नीचा स्थान होने के बावजूद वे सुख से जीवन यापन करते थे।[89] इसी प्रकार हमे तेलीयो की स्त्रियो के उल्लेख भी मध्यकाल मे प्राप्त होते है जो अपने पतियो के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर तेल निकालने का कार्य करती थी।[90] चर्म शिल्प मे प्रवीण चमार जाति का महत्व मध्यकाल मे काफी था उनकी स्त्रिया चमारी अथवा चमारिन अपने जाति के पुरूषो के साथ चप्पल व जूतो के निर्माण एव चर्म शिल्प के अन्य उत्पादो की रगाई के कार्य मे बराबरी की हिस्सेदारी करती थी।[91] इसी प्रकार मध्यकाल मे पान का प्रचलन बहुत अधिक था, जैसा कि अलबेरूनी के विवरण से स्पष्ट होता है इस जाति विशेष की स्त्रिया तम्बोलिनी अथवा तम्बोलिन पान लगाने से लेकर बेचने तक अपने यहा के पुरूषो का साथ निभाती थी।[92] हमें इस काल मे महिला लकड़ी काटने वालों के सदर्भ भी प्राप्त होते है जिन्हे लकडहारिन या कठिहारी कहा गया।[93] इसी प्रकार घास काटने वाले या उस घास को बेचने वालियो के रूप मे घासिन प्रसिद्ध थी।[94] तथा जो सब्जी उगाने और बेचने का कार्य करती थी उन्हे कुजडी कहकर सम्बोधित किया गया

---

89 वही, पृ0- 169

90 वही पृ0- 170

91 वही पृ0- 170

92 वही पृ0- 172

93 वही

94 वही

है।[95] अवलोकित काल मे कपडा उद्योग मे वस्त्रादि की रगाई के लिए रगरेजो के साथ-साथ इसी वर्ग की महिलाओ अथवा रंगरेजिनो का उल्लेख भी हमे प्राप्त होता है—

"जावक सौ कह पाग-रंगाई, रगरेजिनी-मिली को उबाल"[96]

किन्तु सबसे दिलचस्प सदर्भ कलवार जाति की स्त्रियों को कलवारी अथवा कलवारिन कहा गया है—

"चलकति-निकरी रूप सुनारी, निकरी मालिनी अऊ कलवारी"[97] इनका सबसे दिलचस्प उल्लेख यही है कि ये अपने पुरूष वर्ग के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी आर्थिक स्थिति बहुत मजबूत कर ली थी। जिसके परिणाम स्वरूप इनके सामाजिक स्तर मे भी अभूतपूर्व सुधार हुआ जैसा कि उपरोक्त पद से स्पष्ट होता है वे राजघराने की स्त्रियो के साथ बैठने लगी थी।[98] इसी प्रकार एक दिलचस्प उल्लेख हमे मध्यकालीन सामाजिक परिवेश मे भटियारिन अथवा सराय स्वामिनी का मिलता है। इसकी सरायों मे मात्र भूख-प्यास थकावट मिटाते तथा वे रात्रिविश्राम भी करते है। सराय की पूरी व्यवस्था भटियारिन ही करती थी।[99] इसी प्रकार हमें एक अन्य वर्ग का उल्लेख प्राप्त होता है जिसके स्त्री समूह का योगदान

---

95 वही

96 **सूरसागर**-खण्ड 2 पृ० 147 पद-3103।

97 **चादायन** पृ०-238 पद-245।

98 हेरम्ब चतुर्वेदी का शोध प्रबन्ध, पूर्वोक्त पृ०-173।

99 वही।

कम नही था। इक साल मे चूकि बाग-बगीचो का बहुत महत्व था अतः माली से अपरिहार्य होते थे। अधिक कार्य होने की वजह से मालियो के साथ-साथ हमे इस वर्ग की महिला अथवा मालिन के भी उल्लेख हमे मिलते हैं—

''लै लौ बैठ फूल फुलहारी, पान अपूरब घरै सवारी''[100]

इसके अतिरिक्त मालिने विवाहोत्सव पर दूल्हे द्वारा सिर पर बॉधा जाने वाला तोरण भी बनवाती थीं। इसीलिए विवाह तथा अन्य मागलिक अवसरो पर ये महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।[101] इसी प्रकार हमे मध्यकाल मे नट जाति की स्त्रियो के प्रदर्शन का उल्लेख प्राप्त होता है।[102] इनको जायसी बेडिनी कहता है[103] ये बॉस पर चढकर या रस्सी पर चलकर लोगों का मनोरजन करती थी—

''बेडिनि बांस चढ़ति जनु आहा''[104]

ये मुखौटे लगाकर नाच गाकर भी लोगो का मनोरजन करती थी।[105] मध्यकाल मे हमें महिलाओ द्वारा पुरुषो के समान ही श्रम करने के भी उल्लेख मिले है। उनमे से एक उल्लेख महिला पानी भरने वालों अथवा पनिहारिनो का भी है—

---

100 **पदमावत** - पृ०-45-46 पद-39।

101 हेरम्ब चतुर्वेदी, **शोध प्रबन्ध,** पूर्वोक्त, पृ०-174-175।

102 **सूरसागर** खण्ड 1 पृ०-16 पद-45।

103 हेरम्ब चतुर्वेदी **शोध प्रबन्ध** पू० - पृ० 175।

104 **चांदायन,** माता प्रसादगुप्त पृ० - 186, पद - 191।

105 हेरम्ब चतुर्वेदी, **शोध प्रबन्ध** पू० पृ०-175।

''कूउटा एकु पच पनिहारी, टूटी लाज भरै मतिहारी कहू कबीर इक बुधि भीचारी, न ओहू कूअरा न पनिहारी''106

कुए पर पानी भरने का वर्णन लगभग कई मध्यकालीन कवियो ने किया है

पनिहारी कह देखि भुलाना

जेहिरे गाव ऐसी पनिहारी''107

समाज मे एक वर्ग 'दूती108 का भी था जो आर्थिक रूप से आत्म निर्भर था। दूती को 'कुट्टिनी' के नाम से भी जाना जाता था109 ये मत्रो की शक्ति से सामने वाले को वश मे कर लेती थी। इसका विवरण हमे जायसी कृत पदमावत मे मिलता है-

''कुमुदिनी कहा देखु मै सो हौ, मानुस काह देवता भो हौ।

जस कॉवरू चमारी लोना, को न छरा पाढित औटोना।

बिसहर नॉ चहि पाढ़ित मारे, औ धरि यूँ दहि धालि पेटारें।

बिरिख चलै पाढ़ित की बोला, नदी उलटि बह परबत डोला।

पाढ़ित हरै पंडित मति गहरे औरू को अध गुग औबहिरै

पाढित औसी देवतन्द लागा, मानुस का पाढित हुति भागा।

---

106 **सत कबीर** पृ०-14 पद - 12 तथा पू० सख्या -53 पद-50।

107 **मृगावती** पृ0-206, पद-172 तथा **पदमावत** पृ0 37 पद -32

108 **पदमावत** पृ0 780 पद-548

109 वही पृ0 780 पाद टिप्पणी-4

पाढित कै सुठि काढत बानी, कहा जाइ पदुभावति रानी।

दूति बहुत पैज कै बोली पाढित बोल।

जाकर सन्त सुमेरू है लागै जगत न डोल।'[110]

अर्थात ये अपनी मत्र शक्ति से सभी को वश मे कर लेती है। तथा वाकपटु होती थी। ये वर्ग समाज मे अत्यन्त सक्रिय वर्ग था जिन्हे राजा महाराजा का सरक्षण प्राप्त थ। तथा आवश्यकतानुसार इनका उपयोग किया जाता था।[111]

दासी वर्ग -

मध्ययुगीन समाज मे स्त्रियो का एक ऐसा वर्ग था जो आत्मनिर्भर होकर जीवन यापन करता था, इनका प्रमुख कार्य उच्च वर्ग की सेवा करना था। ये वर्ग दासी वर्ग था। राज परिवारो और धनिको के वैभव वर्णन मे सहस्त्रो दासियो का वर्णन समकालीन साहित्य मे उपलब्ध होता है।[112] दासी को अनेक नामो से सम्बोधित किया जाता था जैसे-दूती अथवा चेरी।[113] प्राय ये कार्यानुसार नाम भेद थे किन्तु यह विभाजन स्पष्ट नहीं है। राज कन्याए एव रानियां सदैव ही अनेक दासियो से घिरी रहती थी। कन्या के विवाह मे दहेज मे उनके साथ दासियो को भी प्रदान किया जाता था यह प्रथा मध्ययुगीन अभिजात्य वर्ग मे विद्यमान थी-

---

110 **पदमावत**- पृ0 781 पद- 585

111 **विद्यावती की पदावली** प्रथम , पृ0-82 पद-60 तथा **सूरसागर** खण्ड-2 पृ0 207 पद- 3411

112 **पदमावत**- पृ0 746 - 747 पद- 564

113 **पदमावत** - पृ0 477 पद- 385

''डाडी सहस चली सग चेरी''[114]

दासियो को सम्पत्ति के रूप मे भी लेना देना चलता था।[115] क्रय की हुई दासी को अपने स्वामी के परिवार मे सभी प्रकार के कार्य करने पडते थे।

यर्थात मे दासी परिवार का एक अभिन्न अग मानी जाती थी। तथा परिवार के प्रत्येक सदस्य से उसके प्रति सद्व्यवहार की अपेक्षा की जाती थी।[116] कन्याओ की सखी के रूप मे जो दासियाँ होती थी उनके साथ कन्याओ का व्यवहार सौहार्दपूर्ण होता था। तथा हास परिहास चलता रहता था उन्हे परिवार की अन्य स्त्रियो के साथ आमोद प्रमोद के भी पर्याप्त अवसर मिलते थे।[117]

गणिका अथवा वेश्या

सौन्दर्य, यौवन व कला कौशल द्वारा धर्नाजन करने वाली स्त्रिया प्राय: गणिका कहलाती थीं। समीक्षाधीन अवधि मे इनकी संख्या बहुत अधिक थी। सार्वजनिक भोजो, शादी-विवाह, त्योहारो आदि मे मनोरजन हेतु समय-समय पर नर्तकी व वेश्याओ को आमंत्रित किया जाता था। इनको सामान्यत: नर्तकी[118]

---

114 **पदमावत** पृ0-477 पद-385

115 वही

116 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 - 133 पद- 416

117 **पदमावत**, पृ0 746-447 पद-564

118 **चैतन्य भागवत**, पत्रिका हाउस बाग बाजार कलकत्ता पृ0-60

वेश्या अथवा बेसा[119] छिनार[120] पातुर या पतुरिनी[121] आदि नामो से पुकारा जाता था। इनके निवास हेतु नगरो मे अलग से मुहल्ले बने हुए थे-

''पुनि सिगार हाट घनि देसा, कह सिगार तह बैठी बेसा

मुख तबोर तन चटि कुसुमी, कानन्ह कनक जराऊ खुँभी

हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाही, नर मोहहिं सुनि पैगुन जाही

भौह धनुक तह नैन अहेरी, मारही बान सान सौ फेरी

अलक जोल डोल हसि देही, लाइ कटाख मारि जिउ लेही

कुच कचुक जान हुँ जुग सारी, अचल देहि सुभा वहि ढारी

लेत खेलार हारि तेन्ह पासा, हाथ झारि होइ चलहि निरासा।''[122]

उपरोक्त से स्पष्ट है कि वे अलग से बाजार मे निवास करती थी। तथा हाव भाव से लोगो को अपनी ओर आकृष्ट करती थी। और उनका मन बहलाती थी तथा पान का सेवन करती थी। विभिन्न प्रकार के सुन्दर वस्त्र व जडाऊ गहने पहनती थी। जब तक उनके पास धन होता था तब तक उनकी जान पहचान रहती थी। धन समाप्त हो जाने पर वे उन्हें पहचानती तक न थी-

---

119 **चादायन** माता प्रसाद गुप्त- पृ0-244 पद- 252

120 वही पृ0-243 पद-251, तथा पृ0-260 पद-267

121 **मृगावती** , कुतुबन कृत पृ0-209- पद-246 तथा पृ0-212-213

122 **पद्मावत**- पृ0- 44-45 पद-38

''चेरक लाइ हरहि मन जौ लहि गथ है फेट

साठि नाठि उठि भए- बटाऊ न पहिचान न भेंट।''123

अलबेरूनी वेश्याओ की चर्चा करते हुए लिखता है कि '' लोग वेश्याओं को अपमान की दृष्टि से नही देखते और उसके लिए उन्हे सामाजिक अनुमति मिली हुई है। वेश्याओ को दण्ड देने के मामले मे हिन्दु क्रूर नही है। इस सम्बन्ध मे दोष राजाओ का है न कि समस्त राष्ट्र का। यदि ऐसा न होता तो ब्राम्हण या पुरोहित नाच-गान और क्रीडा करने वाली स्त्रियो को अपने मूर्ति मदिरो में घुसने नही देते। यही नही राजाओ ने उन्हे आर्थिक कारणो से नगर में आकर्षण के रूप मे रखा था। ताकि प्रजाजन आनन्द ले सकें। इससे करो और दण्ड के रूप मे जो आय होती थी उससे सेना पर होने वाले व्यय की प्रतिपूर्ति की जाती थी।''124 ऐसा आर्थिक कारण से किया जाता था।

मध्यकालीन कवि विद्यापति ने भी ''कीर्तिलता'' में जौनपुर की रूपवती स्त्रियो की, जो वार-वनिताओ के रूप मे कार्य करती थी, उनकी विस्तृत चर्चा की है। जौनपुर की वेश्याए अवैध तरीको से अपनी जीविका चलाती थी और लोग अपनी काम-पिपासा के लिए उनका इस्तेमान करते थे।125 ये लुभावनी औरते एक बाजार मे एकत्र होती थी और अन्य युवतियों को अपने पेशे में लाने के लिए

---

123 **पद्मावत**- पृ0- 44-45 पद- 38

124 **अलबेरूनी इण्डिया** भाग-2 (सचाउ)-पृ0-157

125 विद्यावती रचित **कीर्तिलता,** सम्पादक बी एस अग्रवाल, प्र0- साहित्य सदन चिरगाव (झासी) प्रथम सस्करण 1962, द्वितीय पल्लव, छन्द, 16, दोहा-113-118, पृ0 78-79

प्रलोभन देती थी।[126] उनकी लज्जा अस्वाभाविक थी और रूप रग कृत्रिम। वे दूसरो को लुभाने के लिए विनम्रता का प्रदर्शन करती थी। जबकि उन्हें केवल धन से प्रेम था, साथ ही वे अपना धन बढाने के लिए अत्यधिक लुब्ध थी। अपने पति से वचित होते हुए भी वे अपनी माग मे सिन्दूर भरती थीं जो वास्तव मे उनकी बदनामी का प्रतीक था। इसका उल्लेख विद्यावती ने इस प्रकार किया है-

''लज्जा कित्तिम कपट तारूण

धन निमित्ते धाए प्रेम

लोर बिना सौभागे कामन

बिनु स्वामी सिदूर परा परिचय अपमान।''[127]

जौनपुर की वेश्याए सुलतान इब्राहिम शाह के संरक्षण मे आनद और समृद्धि का जीवन बिताती थी।[128]

जायसी ने अपने साहित्य पदमावत मे भी सिघल की वार-वनिताओ की चर्चा की है, जो अपने मकानो के छज्जो पर बैठकर विविध हाव-भाव से लोगो को आकर्षित करती थी।[129] मध्यकालीन साहित्य मे गणिकाओ की श्रृंगार विधियों

---

126 वही, छन्द-24, दोहा-138 पृ0-85

127 वही, द्वितीय पल्लव, छद-25, दोहा-132-133 पृ0- 82-83 तथा द्वितीय पल्लव छद-16 दोहा-113-118 पृ0-78-79

128 **कीर्तिलता** प्रकाशक साहित्य सदन चिरगाव (झासी), प्रथम सस्करण, 1962 द्वितीय पल्लव, छद-25, दोहा- 153 पृ0-911

129 जायसी का **पद्मावत,** प्रकाशक साहित्य सदन चिरगाव (झासी) द्वितीय सस्करण वि0 स0, 2018 सर्ग-2 छद -38 पृ0-44-45

का भी उल्लेख मिलता है। जैसे वे पत्रावली एव तिलक का विधान पूरा करती थी।[130] तथापि कतिपय विवरणो से यह भी प्राप्त होता है कि समाज मे उनके प्रति हेय दृष्टिकोण था।[131]

इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि गणिका का सर्वप्रथम धर्म धर्नाजन करना था। समाज का एक ऐसा वर्ग था जो इनके सानिध्य मे जाकर इनके व्यवसाय को प्रोत्साहित करता था। इसका प्रधान कारण सगीत व नृत्य के प्रति आकर्षण व लोगों की सौन्दर्य व काम पिपासा थी।

---

130 विद्यावती की '**कीर्तिलता**' द्वितीय पल्लव, छद-24, दोहा-136 पृ0-84

131 वही, छद-25, दोहा- 132-133

मध्यकालीन स्त्रियों के आमोद-प्रमोद के साधन

मध्य कालीन समाज मे परदा प्रथा द्रढ होने के कारण स्त्रियो की स्वतत्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लग चुके थे। किन्तु साहित्यिक उद्धरणो के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इस युग मे स्त्रियो की सर्वागीण उन्नति का पूर्ण ध्यान रखा जाता था। तथा साथ ही उनके आमोद प्रमोद की भी पर्याप्त व्यवस्था थी । परम्पराओ के अनुसार बसत के अवसर पर कन्याएं, युवतियॉ और स्त्रियॉ विभिन्न प्रकार की उद्यान क्रीडा , सलिल क्रीडा और कंदुक क्रीडा इत्यादि मे भाग लेती थी।[1]

''काहूँ गही ऑब कै डारा । काहूँ बिरह जॉबु अति झारा ॥

कोइ नारग कोइ झार चिरौंजी। कोइ कटहर बडहर कोइ न्योजी ॥

कोइ दारिउँ कोइ दाख सोखीरी। कोइ सदाफर तुरंज जभीरी

कोइ जैफर औ लौग सुपारी। कोइ कमरख कोइ गुवा छुहारी

कोइ बिजौर कोइ नरियर जोरी। कोइ अॅबरा कोइ बेर करौदा

काहुँ गही केरा की धौरी। काहूँ हाथ परी निबकौरी

काहुँ पाई निअरै काहूँ कहँ गए दूरि

काहूँ खेल भएउ बिरव काहूँ अब्रित भूरि ।[2]

---

1 पदमावत पृ0 212, पृ0 187

2 वही

इसी प्रकार बसन्त का विविध चित्रण सूरदास जी ने किया है :

बार बार सो हीरा है सुनावति । ऋतु बसत आयो समुझावति ॥

विविध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमत अपार॥

नव पल्लव बन सोया एक । यबिहरत हरि सग सखी अनेक॥

कुहू कुहू कोकिला सुनाई। सुनि सुनि नारि परम हरषाई ॥

फाग चरित रस साध हमारै। खेलहि सब मिली सग तुम्हारै ॥

सुनि सुनि सूर स्याम मुसुकाने । ऋतु बसत आयौ हरषाने ॥[3]

बसन्त ऋतु मे ही बसत पंचमी का त्योहार होता है बसन्त के मौसम मे फूल पत्ती के लहराने से चारो तरफ प्रकृति के श्रृगार का आभास होता है और इसी लिए बसन्तोंत्सव के लिए बसंत पंचमी उपयुक्त दिवस प्रतीत होता है, जिसमे स्त्रियाँ नृत्य गान खेल कूद का आनन्द उन्मुक्त भाव से उठाती है-

''दैय दैय कै सिसिर गँवर, सिरी पचमी पूजी आई

भएउ हुलास नवल रितु भौहाँ, खिनुन सोहाई धूप औ छाहाँ

पदुमावति सब सखी हकॉरी, जॉवत सिहॉल दीप की बारी

आजु बसत नवल रितुराजा, पचमि होई जगत सब साजा

नवल सिगार बनाफति कीन्हा, सीस परासन्ह सेदुर दीन्हा

बिगासि फूल फूले बहु बाँसा, भँवर आई लुबुधे चहुँ पासाँ

---

3 सूरसागर खण्ड 2 पृ0 229 पद 3461

पियर पात दुःख झरे निवाते, सुख पालौ अपने होई राते

अवधि आई सो पूजी जो इहाँ मत कीन्ह

चलहु देव मढ जोहने चहाँ सो पूजा दीन्ह'' 4

पचमी के दिन ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सारा जगत ही सज गया हो और प्रकृति और जगत की सज्जा के साथ स्त्रियाँ भी अपनी सज्जा श्रृगार कर के पचमी की पूजा करने निकलती है ऐसा माना जाता था कि इसके पूजन से इच्छाओ की पूर्ति होती है ।5

जायसी कृत पद्मावत में भी जायसी ने बसन्त त्योहार के उत्सव का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। जिसमें स्त्रियाँ इस त्योहार को वाद्य यत्र के साथ नाच गाकर मनाया करती थीं-

''फर फूलन सब डारि औनाई। झुँड बाँधि कै पचमि गाई।

बाजे ढोल दुंद औ भेरी । मंदर तूर झाझ चहुँ फेरी।

सँख सींग डफ सगम बाजे। बसकारि महुवर सुर साजे।

औरन कहा जेत बाजन भले। भाँति भाँति सब बाजत चले।

रथन्ह चढी सब रूप सोहाई। लै बसत मढ मँडप सिधाई।

नवल बसत नवल वै बारीं। सेंदुर बुक्का होइ धमारी ।

खिनहि चलहि खिन चाँचरि होई । नाच कोड भूला सब कोई ।

---

4 **पद्मावत** पृ0 207-208 पद 183

5 **पद्मावत** - वही

सेदुर खेह उठा नस गँगन भएउ सब रात

राति सकल महि धरती रात बिरिख बन पात ।''6

बसन्त पचमी के त्योहार मे झुण्ड बाध करके एक सखी को बीच मे करके और सब सखियाँ मण्डल बनाकर हाथो से ताल देती हुई घूमती और गाती है। इसे तालक रास भी कहा जाता था।7 साथ ही चाँचरि नामक नृत्य भी होता था। जिसमे हाथो मे छोटे छोटे डडे लेकर लड़के लडकियो की टोली का 'मडली नृत्य' होता था जिसे लकुट रास भी कहते है।8 बहुत ही धूमधाम से मनाया जाने वाला यह त्योहार होता था।

बसन्त के ही मौसम मे होली का प्रसिद्ध त्योहार पडता है प्रकृति की भॉति स्त्री पुरूष सब रग खेलते हुए विभिन्न रगो मे रग जाते है -

''फाग चरित रस साध हमारै खेलहि सब मिली सग तुम्हारै

सुनि सुनि सूर स्याम मुसुकाने रितु बसन्त आयो हरसाने''9

चूँकि होली का त्योहार कृष्ण की गोपियों के साथ छेड़ छाड और होली खेलने का त्यौहार माना जाता है । अत: बृज की होली और उसमे कृष्ण की भूमिका की चर्चा के माध्यम से मध्यकालीन कवियो ने होली के माहौल का सफल चित्रण अपने काव्य मे किया है —

---

6 **पदमा्वत** - पृ0 215 पद 189

7 **पदमावत** - पृ0 216 पाद टिप्पणी 1

8 **पदमावत्** - पृ0 216 पाद टिप्पणी 7

9 **सूर सागर** खण्ड 2 पृ0 229 पद 3461

"होली खेलत बृज खोरिनि मै, बृज बाला बनि बनि बनवारी

डफ की धुनि सुनि बिकल भई सब, कोऊ न रहति घर घूघट नारी

जाहि अबीर देत आँखिनि मै, ताही कौ छिरकत पिचकारी

सौही तेल अबीर अगरचा, तैसी जरद केसरि चटकारी

उडा गुलाल लाल भए बादर, रॉगे गए सिगरे अटा अटारी

सूरदास बारी छवि ऊपर, कल न परति छिनु बिनु गिरिधारी"[10]

अबीर कुमकुम , गुलाल, चोवा एव चदन के साथ साथ पिचकारी से रग खेलने का व्यापक चित्रण मिलता है। होली गाने के साथ साथ मृदग, बीन, बासुरी, डफ आदि के बजने के उल्लेख भी हमे प्राप्त होते है तरूणि बालाए एव सभी सब कुछ भूलकर होली के रग मे रग जाते है ।

"इत श्री राधा उत श्री गिरिधर , इत गोपी उत ग्वाल

खेलत फाग रासिक ब्रज बनिता, सुदर स्याम तमाल

चोबा चदन, अबिर कुमकुमा, छिरकत भरि पिचकारी

उडत गुलाल, अबीर, जोतिरवि दिसि दीपक उंजियारी

ताल मृदग बीन, बॉसुरि डफ, गावत गीत सुहाए

रासिक गुपाल, नवल ब्रज बनिता, निकसि चौहरै आए

झूमि झूमि झूमक सब गॉवति, बोलति मधुरी बानी

---

10 सूर सागर खण्ड 2 पृ0 238 पद 3489

देति परस्पर गारि मुदित मन, तरूनि बाल सयानी

सुरपुर नरपुर नागलोक जल थल क्रीडा सुख पावै

प्रथम बसत पचमी लीला सूरदास जस गावै[11]

गायन में भी विशेष रूप से होली के विशेष राग धमार के गायन का भी उल्लेख मिलता है-

''चैत बसन्त होई धमारी मोही लेखे ससार पुजारी

पचम विरह पच सरमोरे रकत रोई सगरो बन ठारै ''[12]

इसी अवसर पर एक अन्य प्रकार का मनोरा झूमक नामक गीत गाया जाता है ये एक विशेष प्रकार का राग भी होता है -

कवल सहाय चली फुलवारी । फर फूलन्ह कै इहा बारी

आयु आयु मह करहि जोहारू यह बसन्त सब कर त वहारू

चही 'मनोरा झूमक' होई । फर और फूल लेई सब कोई

फागु खेलि पुनि दाहब होली। सै तब खेह उड़ाउब झोली

आजु साज पुनि देबस न दूजा। खेलि बसत लेहु दै पूजा

भा आयसु पदुमावति केरा। बहुरिन आई करब हम फेरा

तस हम कँह होइहि रखवारी । पुनि हम कहाँ कहाँ महबारी

---

11 **सूरसागर** खण्ड 2 पृ0 232 पद 3472

12 **पद्मावत** पृ0 427 पद 353

''पुनि रे चलब घर आपुन पूजि बिसेसर देउ

जोहिका होई हो खेलना आलु खेलि हॉसि लेउ ''13

इसी प्रकार हमे अन्य रगो के साथ साथ टेसू से बने रगो से निर्मित रगो से होली खेलने के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं -

बूड़ि उठे सब तरिवर पाता । भीज मजीठ टेसू बन राता

मौरे ऑब फरै अब लागै । अबहुँ सॅवरि घर आउ सभागे

सहस भाव फूली बनफती । मधुकर फिरे सॅवरि मालती

प्रथम बसन्त नवल रितु आई । सुरितु चैत बैसाख सोहई

चदन चीर पहिरि धनि अगा । सेदुर दीन्ह बिहॉसि भरि मगा

कुसुम हार और परिमल बासु । मलयागिरि छिरिका कबिलासू

सौर सुपेति फूलन्ह डासी । धनि और कंत भिले सुखवासी

पिउ संजोग धनि जोबन बारी । भँवर पुहुप संग करहि धमारी

होइ फागु भलि चॉचरि जौरी । बिरह जराइ दीन्ह जसि होरी

धनि ससि सियरि तपै पिउ सुरू । नखत सिगॉर होहि सब चुरू

''जेहि घर कता रितु भली आउ बसता तित्तु

सुख बहरावहि देवहरै दुक्ख न जानहिकिन्तु ,14

---

13 पद्मावत, पृ0 211 पद 186

14 पद्मावत पृ0 403 पद 335

उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि चॉचरि नृत्य इस मौसम का विशेष नृत्य था जिसमे स्त्री पुरूष दोनो हाथो मे रगीन छोटे छोटे डडे लेकर गाते हुए मडल बनाकर नाचते है अब भी मध्यप्रान्त में इसे चॉचर कहा जाता है । इसे डॉडिया रास के नाम से भी जाना जाता है फागुन मे अथवा विवाहोत्सव मे चॉचर होती है चॉचर नृत्य मे ताल की गति पर जिनके डडे नहीं मिलते वे रास से बाहर होते जाते है 15 चॉचरि नृत्य को लकुट रास भी कहते हैं।16

इसी तरह बसन्त ऋतु की भॉति सावन भादो तक एक उन्मुक्त माहौल सा रहता है सावन मे पानी बरसने से लेकर झूला झूलने तक दादर मोर की आवाजे बिज्जू के चमकने से लेकर हिडोलों या झूला झूलने तक का एक माहौल बना रहता है ।

''रितु पावस बिरसै पिउ पावा । सावन भादो अधिक सोहावा

कोकिल बनै पॅति बग हूरी । धनि बिसरी जेउॅ बीर बहूटी

चमकै बिज्जू बरसि जगसोना । दादर मोर सबद सुढिलोना

रग राती पिय सग निसि जागें । गरजै चमकि चौक कठलागै

सीतल बुदॅ ऊच चौबारा । हरियर सब देखिय ससारा

मलै समीर बास सुख बासी । बेइलि फूल सेज सुखडासी

हरियर भूमि कुसुमी गोला । और पिय सगम रचा हिडोला ''

---

15 **पदमावत** पृ0 405 पाद टिप्पणी 6 पद 335

16 **पदमावत**- पृ0 सख्या 215 पाद टिप्पणी 7 पद 189

पौन झरक्के हिय हरख लागै सियरि बतास

धनि जानै यह पौनु है पौनु सो अपनी आस ''17

इसी तरह सावन मे स्त्रियो का एक विशेष त्योहार तीज होता था तीज मे भी व्रत पूजन नाचने गाने का एक वातावरण सा बनता था स्त्रियाँ पूरे श्रृगार के साथ अपने सुहाग की कामना करती थीं सावन मे होने के कारण तीज त्योहार मे भी झूला हिडोला या हिडोर झूलने का उल्लेख हमे मिलता है —

''गोपी गोविद कै हिडोरे झूलन आइ

रगमहल मै जहॅ नद रानी। खेलै तीज सुहाइ ।

श्रीखंड खम्भ मयारि सहित। सुसमर मख बनाइ

तापर कितिक जु भ्रमत भॅवरा । डॉडी जटित जराइ

सुढि हेम पटुसि मध्य हीरा । पूलि रोचन लाइ

सखी बिबिध बिचित्र राग । मलार मगल गाइ

नद लाल पावसकल, दसिनी नागरि नव संग

बोलत जु 'दादुर पपीहा' करत कोकिल रग

तहॅ बहि निर्बत बचन मुखरित, अलि चकोरविहग

बलभद् सहित गुपाल झूलत। रधिका अरधंग

जल भरित सरवर सघन तरूवर, इन्द्र धुनुष सुदेस

---

17 **पदमावत्**- पृ9 स0 407-408 पद सख्या 337

धन स्याम मध्य सुपेद बग जुरि। हरिन महि चँहुदेस

तहँ गगन गर्जत बीजु तरपत मधुर मेह असेस

झूलत विह्वल स्याम स्यामा, सीस मुकुतित केस

तारक तिलक सुदेश झुलकत खचित चूनी लाल

नव अकृत विकृत बढन प्रहासित कमल नैन बिसाल

करज मुद्रिका किकिनी कटि, चाल गज गति बाल

सूर मुररिपु रंग रंगे, सखी सहित गुपाल ''18

हमे अपने अध्ययन काल मे जैनियो तथा हिन्दुओ मे एक माह का व्रत करने वालो का अलग से उल्लेख मिलता है यह व्रत अश्विन शुक्ल ग्यारह से कार्तिक शुक्ल ग्यारह तक रखा जाता है और कार्तिक शुक्ल बारह को किया जाता है ।

यदि कोई व्रत करते हुए बीच मे मूर्छित हो जाए तो उसके लिए दुग्धाहार का विकल्प है । अर्थात यह व्रत अत्यन्त कठोर था और प्राय: लोग इसे पूरी शुद्धता के साथ नहीं कर पाते थे अत: फलाहार का विकल्प दिया जाता था।

''पैग पैगपर कुआँ बावरी। साजी बैठक औ पॉवरी,

औरू कुड बहु ठावहि ठाऊँ । सब तीरथ औ तिन्हके नाऊँ

मढ़ मंडप चहुँ पास सॅवारे । जपा तपा सब आसन मारे

---

18 सूर सागर द्वितीय खण्ड पृ0 स0 228-229 पद सख्या 3460

कोई रिखेस्वर कोइ सन्यासी। कोई रामजन कोई मसवासी

कोई ब्रह्म चर्ज पँथ लागे। कोइ दिगम्बर आछहि नाँगे

कोइ सरसुती सिद्ध कोइ जोगी । कोइ निरास पथ बैठ बियोगी

कोइ महेसुर जँगम जती। कोइ एक परखे देवी सती

सेवरा खेवरा बान परस्ती सिध साधक अवधूत

आसन मारि बैठ सब जारि आतमा भूत''19

इसी तरह हमे दिवाली का उल्लेख मिलता है जो हिन्दुओ मे अत्यन्त ही हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। दिपावली मे दीप मालाओ के प्रकाश से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे धरती और आकाश सब तरफ दीप ही दीप जल रहे हैं। दीवाली मे स्त्रियो के सज संवर के नाचने गाने का भी उल्लेख हमे मिलता है। दिपावली कार्तिक की पूर्ण मासी को मनाया जाने वाले त्योहार है और इसी दिन मध्य काल में सौभाग्यवती स्त्रियो द्वारा मुनिवरा पूजा का भी उल्लेख हमे मिलता है यह पूजा सप्तऋषियो को अर्पित की जाती थी —

कार्तिक सरद चद उजियारी। जग सीतल हैं बिरहैं जारी

चौदह करा कीन्ह परगासू । जानहुँ जरै सब धरति अकासू

तन मन सेज करै अगिऽाहू। सब कहँ चाँद मोहि होइराहू

चँदु खंड लागै अंधियारा । जौ धर नाहिन कत पियारा

---

19 **पदमावत** पृ0 34 पद 30

अबहुँ निठुर आव एहिबारा । परब देबारी होइ ससारा

सखि झूमक गावहि अग मोरी । हौ झूरौ बिहुरी जेहि जोरी।

जेहि घर पियु सो 'मुनिवरा पूजा'। मो कहँ बिरह सवति दुख दूजा ।

सखि मानहि तेवहार सब गाइ देवारी खोलि

हौ का खेलौ कत बिनु तेहि रही छार सिर मोति''20

इसी प्रकार हमें 'गोवर्धन पूजा' के उल्लेख मिलते है इस दिन गोबर से निर्मित पहाड को पूजा जाता है। कृष्ण कथा से जुडी इस लोक प्रथा वस्तुतः कृष्ण द्वारा इन्द्र के प्रकोप से बचने के लिए गोवर्धन पर्वत को तर्जनी पर उठा लेने की स्मृति मे ऐसा आयोजन किया जाता है । इस दिन नाना प्रकार के पकवान बनाकर इन्द्र के प्रलयकारी प्रकोप से बचाने के लिए गोवर्धन के प्रति ऋण चुकाया जाता है।

''तात गोवर्धन पूजहुँ जाइ मधुमेवा पकवान मिठाई

व्यजन बहुत बनाइ ।''21

गोवर्धन की पूजा में अनाज के ढेर सारे पकवान बनाये जाते थे, इसीलिए इस त्योहार को अन्नकूट के नाम से भी जाना जाता था—

'''अन्न कूट' विधि करत लोग सब नेम सहित करि करि पकवान''22

---

20 **पदमावत** पृ0 421 पद 348

21 **सूरसागर** प्रथम खण्ड, पृ0 स0 436 पद 1442 तथा पृ0 437 पद स0 1448

22 **सूरसागर** प्रथम खण्ड पृ0 434 पद 1434

इस पूजा का मध्य काल में इतना अधिक प्रचलन हो गया था कि लोगो के बीच इतनी मान्यता हो गयी थी कोई भी मनोकामना पूर्ण करनी हो तो गोवर्धन की पूजा का व्रत ले लेना चाहिए —

''मेरी कहि सत्य करि मानहुँ गोवर्धन की पूजा ठानहुँ।''[23]

मध्य काल मे स्त्रियो के मध्य निर्जला एकादशी नामक व्रत बहुत प्रचलित था। एकादशी के दिन स्त्रिया जल की एक बूँद भी नहीं ग्रहण करती थी। यह व्रत भी मनोकामना की पूर्ति हेतु था—

''तौ हम बात सीखि कै नाही हाँ बुधि कहौं जाइ जौ गही

मिरगावति रानी है भावा। करइ एकादसि निरजल आवा ।''[24]

इस काल मे स्त्रियो के आमोद-प्रमोद के बहुत सीमित साधन थे अतः वे हर तीज त्योहार पर सज सवर कर नाच गाकर अपना मनोरजन कर लेती थी । मध्य कालीन साहित्य कार जायसी ने अपने साहित्य पदमावत मे जल क्रीडा की चर्चा की है जिसमें पदमावती अपनी सखियो के साथ जल मे क्रीडा करने जाती है—

''लागी केलि करै मझ नीरा, हँस कजाइ बैठ होइ तीरा ।

पदुमावति कौतुकि करिराखी तुम्ह ससि होहु तराइन साखी।

बादि मेलि कै खेल पसारा । हारू देइ जौ खेलत हारा

---

23 **सूरसागर,** प्रथम खण्ड पृ0 454 पद 1517

24 **मृगावती** पृ0 57 पद 75

सवरहि सॉवरि गोरिहि गोरी। आपनि आपनि लीन्ह सो जोरी ।

बूझि खेल खेलहु एक साथा। हारून होइ पराएँ हाथा।

आजुहि खेल बहुरिकित होई । खेल गएँ कत खेलै कोई ।

धनि सो खेल खेलाहि रस पेमा। रौताई औ कूसल खेमा ।

मुहमद बारि परेम की जेऊँ भावै तेऊँ खेल

तीलहि फूलहि सग जेउँ होइ फुलाएल तेल ।''[25]

खेल कूद एवं मनोरंजन

मध्यकालीन स्त्रियो के बीच लुका छिपी का खेल भी प्रचलित था।[26] जिसे चचरि भी कहा जाता था।

चौपड भारत मे खेला जाने वाला एक बहुत पुराना खेल है जिसे कभी कभी चौसर या पचीसी भी कहा गया है। यह खेल हिन्दुओ मे और भी विशेष रूप से राजपूतो में बहुत लोकप्रिय था। इसका विविध वर्णन जायसी ने अपनी प्रसिद्ध रचना पदमावत में किया है—

अैसे राजकुॅवर नाहि मानौ । खेलु साहिर पॉसा तौ जानौ ।

कच्चे बारह बार फिरासी। पक्के तौ फिरि घिरन रहासी

---

25 पदमावत पृ0 73 पद 63

26 जायसी ग्रथावली मे सग्रहित **जायसी का अखरावट** सम्पादक रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिणी सभा प्रथम सस्करण वि0 स0 2008 पृ0 319

रहै न आठ अठारह भाखा। सोरह सतरह रहै सो राखा

बसतएँ ढरै सो खेलनिहारा । ठारू इग्यारह जासि न मारा

तू लीन्हे मन आछासिदुवा । औ जुग सारि चहासि पुनिछुवा ।

हौ नव नेह रचौ तोहि पाहाँ । दसौ दाउ तोरे हिय याहाँ।

पुनि चौपर खेलौ कै हिया । जौ तिरहेल रहै सो तिया ।

जेहि मिली बिछुरन औतपनि अत तत तेहि नित

तेहि मिली बिछुरन को सहै बरूबिनु मिलै निचित ।''[27]

डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने पदमावत का टीका लिखते हुए मध्यकालीन परिवेश मे इस खेल के वास्तविक स्वरूप को उभारा है।

चौपड के खेल मे तीन पासे और चार रग की सोलह गोटे होती है । प्रत्येक पासा हाथी दांत का बना चार या पांच अंगुल लम्बा चौपहल टुकडा होता है। उसमे एक पहल में एक बिदी (इक्का) और दूसरे मे दो (दुआ) तीसरे मे पाच (पजा) और चौथे मे छ: (छक्का) बिदिया होती है । ऐसे ही तीनो पासो पर बिदिया के एक से निशान होते हैं। तीनों पासो को हाथ मे लेकर ढरकाते है जो बिदियो तीनो पासो के ऊपर के पहल मे दिखाई पडती है उन्ही का जोड दॉव कहलाता है। चौपड़ के कपडे मे चार फडे होती है प्रत्येक फड़ पर तीन पक्तियो मे घर बने रहते हैं। प्रत्येक पक्ति मे आठ घर होते हैं । इस प्रकार एक फड़ में 24 और कुल चौपड़ में 16 घर होते हैं। घर को सस्कृत मे पद कहते हैं चारों फडो के

---

27 **पदमावत** पृ0 365 पद 312

बीच मे एक बडा सा घर होता है। जिसे कोठा कहते है। इस कोठे मे चारो फडो की गोटे बैठती या पुगती है तब इन्हें पक्की गोटे कहते हैं।

चार रग की सोलह गोटे में प्रत्येक रग की चार चार गोटें होती है। काली, पीली गोटो का जोड़ा और लाल हरी गोटो का जोड़ा प्राय: माना जाता है । जब चार व्यक्ति खेलते है तो काली पीली वाले आमने सामने बैठते हैं और एक दूसरे के गुइयाँ होते है । इसी प्रकार लाल हरी गोटों के भी । गुइयाँ एक दूसरे की गोटे नही मारते बल्कि एक की चार गोटे पहले पहले पुग जाने पर गुइयाँ अपना दॉव साथी को दे देता है तब से दुपासिया अर्थात् दोनो पासो का सांझा करके खेलने वाले कहे जाते है।

चौपड़ का खेल दो प्रकार का है। सादा जिसमे चार व्यक्ति खेलते हैं और रगबाजी जिसमें दो व्यक्ति प्राय: स्त्री और पुरूष खेलते है। रंगबाजी का खेल कठिन है और उसमे प्रतिबन्ध अधिक है । जायसी ने यहाँ रंगबाजी के खेल का ही वर्णन किया है।[28] चौपड़ को चौसर या पच्चीसी भी कहा गया है।[29] शतरज का खेल भारतीयो के बीच प्राचीनतम काल से ही प्रसिद्ध रहा है। बाद मे यह खेल रईसो के बीच अधिक लोकप्रिय हो गया क्योंकि इस खेल को खेलने मे बहुत समय लगता था। जो आम आदमी नहीं दे सकता था । अलबेरूनी इस खेल मे हिन्दुओं की अभिरूचि का भी उल्लेख करता है।[30] अमीर खुसरो ने भी समृद्ध वर्गो के मध्य इसके प्रचलन का उल्लेख किया है। उसके अनुसार ''किसी परिवार या एक दूसरे से सम्बन्धित व्यक्तियो के मनोविनोद के साधनो मे इसका महत्वपूर्ण

---

28 **पदमावत** पृ0 366

29 किसोरी प्रसाद साहू **मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष** पृ0 244

30 **अलबरूनीज इण्डिया** (सचाऊ) पृ0 183-185

स्थान है।[31] इसका उल्लेख मलिक मोहम्मद जायसी ने अपनी पुस्तक पद्मावत मे किया है।[32] ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चूँकि यह घर के अन्दर खेला जाने वाला खेल था तथा इसमे समय लगता था। अत: उस काल मे स्त्रियो के बीच यह मनोविनोद के लिए प्रचलित रहा होगा। वाह्य मनोविनोद मे चौगान का उल्लेख हमें मिलता है—

''होई मैदान परी अब गोई । खेल हाल दहुँ काकर होई ।1।

जोवन तुरै चढी सो रानी। चली जीति अति खेल सयानी ।2।

लट चोगान गोई कुर्च साजी, हिम मैदान चली ले बाजी ।3।

हाल सो करे गोई लै बाढ़ा । कूरी दुहँ बीच कै काढा ।4 ।

भये पहार दुर्वो वै कूरी। दिस्टि नियर पहूचत सुठि दूरी ।5 ।

ठाढ बान अस जानहुँ दोउऊ । सालहि हिय कि काढै कोऊ ।6 ।

सालहि तेहि न जासु हिय ठाढे ।'सालहि' तासु चहै ओन्ह काढ़े ।7 ।

मुहमद खेल पिरेम का धरी कठिन चौगान

सीस न दीजै गोई जौ हाल न होई मैदान ॥''[33]

जिस प्रकार से हम आज पिकनिक मनाने के लिए किसी वाह्यस्थल पर जाकर खेलकूद नाच गाना खाना पीना करते है। उसी प्रकार मध्यकाल मे भी इस

---

31 अमीर खुसरो उद्धत **साहू** पृ0 243

32 **पदमावत** पृ0 751-755 पद 567

33 **पदमावत** पृ0 831 पद 628

प्रकार के अवसरो का लाभ उठाकर मनोविनोद किये जाने का हमे उल्लेख मिलता है। नदी तट पर इस प्रकार के आयोजनो की प्रथा बहुत थी —

''गई ब्रजनारि गगा तीर

सग राजति कुँवरि राधा भई शोभाभीर

देखि कहरि तरग हरषि रहत नहि मन धीर

स्नान कौ वे भई आतुर सुभग जल गभीर

कोऊ गई जल पैठि तरूनि और खडी तीर

तिनहि कई बुलाऊ राधा करति सुख बनु कीर

एक एकाहि भुज भरि एक हिरकति नीर

सूर राधा हसति दाढ़ी भीजि छवि तनु धीर ।''34

इसी प्रकार मध्यकाल में कठपुतली का नाच भी मनोविनोद का एक प्रचलित साधन था जिसमे काठ की पुतलियो को पतले से धागे से सचालित करके उन्हे खेलता कूदता नाचता गाता अनेकानेक भाव भगिमाओ मे दिखाया जाता था। कहानी नाटक कहने व खेलने का यह एक प्रचलित माध्यम था—

''कतहूँ कथा कहै कहु कोई। कतहू नाच कोउ भलि होई

कबहूँ छरहटा पेखन लावा । कतहूँ पाखड काठ नचावा ।

कतहूँ नाद सबद होई भला । कतहूँ नाटक चेटक कला ।35

---

34 **सूरसागर** द्वितीय खण्ड पृ0 1 पद 2368

35 **पदमावत** पृ0 45, 46 पद य39

मध्यकाल में स्त्रियो के लिए नाच गाने और उसी के दौरान वाद्य यन्त्रो मे प्रशिक्षित प्रवीण होकर उनको बजाकर मनोरजन करने के उल्लेख मिलते है। इसमे नृत्य का सर्वाधिक महत्व होता था और हमे इसके विषय मे विस्तृत जानकारी पदमावत के वर्णनों से होती है ।

दूऔ नवल भर जोबन गाजी

अहरि जानु अखारे बाजी ।[36]

वाद्य यन्त्रो मे हमें सिगी का उल्लेख मिलता है—

''निकसा राजा सिगी पूरी झाड़ि नगर मेला होई दूरी

राये राने सब भये वियोगी । सोरह सहस कुँवर भये जोगी ।[37]

इसी प्रकार हमे पदमावत मे अनेक पदो मे नाना प्रकार के वाद्य यन्त्रों के उल्लेख प्राप्त होते है —

''तबहूँ राजा हिय न हारा, राज पँवरि पर रचा अखारा ।

सौहें साहि जहँ उतरा आछा, ऊपर नाच अखारा काछा ।

जत्र पखाउज आउझ बाजा, सुरमंडल रबाब भल साजा

बीन पिनाक कुमाइच कही, बाजि अँविरती अति गहगही

चग उपग नागसुर तूरा, महुवरि बाज बसि भल पूरा

---

36 **पदमावत** पृ0 555 पद 444

37 **पदमावत** पृ0 151 पद 134

हुरूक बाज डफ बाज गभीरा औ तेहि गोहन झॉझ मजीरा

तत वितंत सिखर धन तारा, पाचों सबद होइ झनकारा

जस सिंगार मन मोहन पातर नॉचहि पॉच

पातसाहि गढ छेंका राजा भूला नॉच [38]

उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि जंत्र भी एक प्रकार का यत्र होता था, लकडी की गज भर लंबी खोखली नली के दोनो सिरों पर तूबे के अधकटे भाग लगाए जाते है और गर्दन पर सोलह खूटियॉं होती है जिनमे पाच लोहे के तार बाधे जाते हैं। खूटियो के द्वारा ही स्वरो का उतार चढ़ाव किया जाता है।[39] ज्ञात होता है पद्रहवी शती के लगभग पखावज अपनी भाषा में आया । पोपली के अनुसार पखावज का चलन उत्तरी भारत मे होता है और भृदग का दक्षिण मे होता है।[40]

---

38 **पदमावत** पृ0 687-688 पद 527

39 **पदमावत** पृ0 689 पाद टिप्पणी 3

40 **पदमावत** पृ0 689 पाद टिप्पणी 3

अध्याय- सप्तम

उपसंहार

स्त्री सस्कृति के उद्भव एव विकास मे न केवल केन्द्रिय भूमिका निभाती है बल्कि किसी भी देश की सस्कृति का मुख्य मापदण्ड भी स्त्री वर्ग की दशा ही रही है। ये उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है, क्योकि स्त्री ही सास्कृतिक धरोहर की मुख्य मूल वाहिका मानी जाती है। समाजशास्त्रियो के अनुसार सामाजीकरण का पहला पाठ बालक अपनी माँ की गोद मे ही पढता हैं।

चौदहवी पन्द्रहवी शताब्दी की महिलाओ का सामाजिक स्तर तथा कन्या जन्म को लेकर विभिन्न प्रकार की मान्यताए प्रचलित थी। भारतीय परम्पराओ के अनुसार पारिवारिक सतुलन के लिए पुत्र अथवा पुत्री मे कोई भेद नही था, किन्तु बदलत हुए सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिवेश के कारण कालान्तर मे पुत्री का जन्म बहुत अच्छा नहीं माना जाता था। धीरे-धीरे इस्लामी प्रभाव के कारण स्त्रियों के क्षेत्र सीमित एव उनके अधिकार कम होने लगे, विशेष रूप से हिन्दू राजघरानो में जायसी कृत 'पद्मावत' के इस उद्धरण से यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है जब, रत्नसेन के घर पद्मावती का जन्म होता है।

तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों मे पुत्र ही महत्वपूर्ण था, एक तो वंश चलाने के लिए दूसरा युद्ध के समय योद्धा के रूप मे।

समकालीन साहित्यिक ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट है कि, हिन्दू राजकुलो मे स्त्री शिक्षा को पर्याप्त महत्व दिया गया था। कन्याओ का शिक्षित व प्रशिक्षित होना उनकी सुन्दरता के साथ-साथ एक सकारात्क गुण माना जाता था। चौदहवी व पन्द्रहवीं शताब्दियो मे धार्मिक ग्रन्थो के पठन-पाठन पर विशेष जोर दिया जाता था। विदुषी कन्याओं का परिवार व समाज में सम्मान होता था। समकालीन

परिस्थितियो मे परिवर्तन के कारण विवाह की आयु मे भी परिवर्तन होने लगे। परिवर्तित राजनीतिक व सामाजिक परिवेश के कारण मध्ययुगीन भारत मे अल्प आयु में विवाह का प्रचलन अधिक हो गया था तथा स्त्रियो की युद्वपरक परिस्थितियो मे असुरक्षा के कारण ही बाल-विवाह का प्रचार हो गया था। समकालीन इतिहासकारो के अनुसार हिन्दू बहुत कम आयु मे अपनी कन्याओ का विवाह सम्पन्न कराने लगे थे। बारह वर्ष तक की कन्या विवाह के लिए उपयुक्त समझी जाती थी।

हिन्दू सस्कृति में विवाह का एक महत्वपूर्ण स्थान है, जिसे एक सामाजिक,धार्मिक सस्कार के रूप मे ग्रहण किया गया। विवाह स्त्री व पुरूष की पूर्णता है। वश, कुल और परिवार की निरन्तरता विवाह सस्था से ही बनी रहती है विवाह के उपरान्त पुत्री को माता-पिता से अलग होना पडता है। मध्यकालीन मान्यता के अनुसार वर प्राप्ति तथा विवाह हो जाना स्त्री के लिए बहुत बडी उपलब्धि होती थी। स्त्रियों मे बहुविवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। हॉलाकि साहित्यकारों ने इसे अशुभ या अनैतिक माना है। इस काल में स्त्रियो के लिए सुहागिन होना सम्मान जनक माना जाता था तथा वे प्रशसा की पात्र होती थी।

बहुविवाह तथा विशेषकर बहु पत्नीत्व की प्रथा राजघरानो एव समृद्ध परिवारों तक सीमित थी। जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक क्लेश, गृह कलह, प्रतिद्वन्दिता व राजनैतिक दांव-पेंच देखने को मिलते है। यही नही बहुविवाह प्रथा के कारण सपत्नियो मे द्वेष होना स्वाभाविक था। जिसके परिणामस्वरूप गृह-कलह उत्पन्न होता था। भले ही स्त्री दूसरी पत्नी के रूप मे किसी भी घर मे प्रवेश करे फिर भी उससे आशा की जाती थी कि वह पति के समक्ष पूर्ण समर्पण करेगी।

वैदिक युग से ही कन्या विवाह के साथ कन्या को धन आदि से समृद्व करके विदा करने का प्रचलन रहा है। विशेष रूप से वस्त्र-आभूषण इत्यादि प्रदान

किये जाते रहे है। इस प्रथा ने धीरे-धीरे दहेज प्रथा का रूप ले लिया था, अतः पूर्व मध्ययुग मे इसके सस्कार सामाजिक, धार्मिक न होकर सामाजिक-आर्थिक हो गये, क्योकि उस युग के सामन्तीय परिवेश मे दहेज लेना व देना सामाजिक स्तर का द्योतक था। धनिक वर्ग तथा राज परिवार दहेज के रूप मे चल व अचल सम्पत्ति भी प्रदान करते थे। जिसमे वस्त्र, स्वर्ण, रत्नाभूषणो के साथ-साथ हाथी तथा घोडे भी दिये जाते थे। इसके अनेको उल्लेख हमें समकालीन साहित्यो मे मिलते है। दहेज के साथ-साथ दास-दासियां, नौकर-चाकर इत्यादि भी भेजे जाते थे।

जिस प्रकार वर्तमान मे ग्रामीण भारतीय परिवेश मे स्त्रियां अपने चेहरे को ढककर रखती थी इसके लिए वे पर्दे का प्रयोग करती थी। इस पर्दे को घूघट के नाम से जाना जाता था। पर्दे का ज्यादातर प्रयोग अभिजात्य वर्ग तथा समृद्ध परिवारो तक ही सीमित नही था, बल्कि सभी वर्ग की स्त्रिया पर्दे व घूघट का प्रयोग करती थी। सामाजिक समारोहो तथा घर से बाहर जाते समय घूंघट करना अनिवार्य सा हो गया था। पर्दा एक प्रकार से सम्मान का प्रतीक था। मध्यकाल में प्राचीनकाल से चली आ रही पर्दा प्रथा, मुस्लिम रीति रिवाजों से बल पाकर और भी सशक्त हो गयी थी। विवाह विच्छेद से सम्बन्धित एक भी साक्ष्य हमें मध्यकाल मे नही मिलते है।

सिद्वान्त रूप मे तो हिन्दू परिवार में स्त्री को गरिमायुक्त पद प्राप्त था तथा कोई भी अनुष्ठान उसके बिना पूर्ण नही होता था, किन्तु व्यवहार मे पतिव्रत धर्म एव पति-सेवा ही स्त्री का कर्तव्य माना गया। पति को स्वामी व पत्नी को दासी के रूप मे प्रतिबिम्बित करने का प्रयास मध्यकालीन साहित्य मे किया जाता था।

विधवा स्त्री की अपेक्षा समाज मे सुहागिन स्त्री का ज्यादा महत्व था। विधवाओ का जीवन अत्यन्त कठिन तथा दुःखद था। सन्तान उत्पत्ति के समय स्त्री

को अत्यन्त कष्टदायी परिस्थितियो से गुजरना पडता था। मातृत्व अपने आप में गौरव की बात समझी जाती थी। माँ के रूप मे एक स्त्री मे दयालुता, सहनशीलता, एव सह्दयता जैसे गुण होने की आशा की जाती थी, एव यह आशा की जाती थी कि वह अपने सन्तान को गुणवान एव सुकर्मी बनायेगी।

जहा तक नारी की दशा के रूप में ससुराल के सम्बन्धो की बात आती है, ससुराल पक्ष मे बहुओ को सासों द्वारा प्रताडित किया जाता था। समकालीन साहित्यिक स्रोतों से यह सुस्पष्ट हो जाता है, कि अपने जेठ से भी प्रायः बहुओ को एक भय सा बना रहता था। ऐसे अनेक उल्लेख मिलते है, जिसमे लगता है कि सास व ननद बहुओ की विरोधी रहा करती थीं साथ ही बहुओ को गाली देने तथा उसकी निन्दा करने मे पीछे नहीं रहती थी।

जहा तक हिन्दुओ के सामाजिक जीवन के बारे मे प्रश्न उठता है, सस्कारो का विशेष महत्व आदि काल से ही रहा है। सस्कारों से ही मनुष्य का व्यक्तिक तथा सामाजिक विकास किया जाता था। ताकि आगे चलकर मानव अपना तथा अपने समाज का समुचित विकास कर सकने मे सफल हो सके। धर्म के बिना मानव का कल्याण हो सकना सम्भव नहीं माना जाता है, अतः धर्म ही संस्कार का मूल आधार माना गया है। सस्कार मनुष्य के जन्म से लेकर उसकी मृत्यु तक साथ रहता है।

यदि सस्कारो के महत्व के बारे में प्रकाश डाले तो हम पायेगे कि, वैदिक युगीन जीवन से ही सस्कारो का प्रचलन रहा है। सूत्रो तथा स्मृतियो मे सस्कारो पर विस्तार से लिखा गया है अधिकतर धर्म शास्त्रो ने मानव जीवन मे मुख्य रूप से सोलह सस्कारो को माना है। फिर भी समाज में जिन सस्कारो का प्रचलन ज्यादा रहा है, उन सस्कारो को ही प्रचलन मे लिया गया।

हिन्दू संस्कारो मे प्रथम गर्भाधान संस्कार माना गया है। बच्चे का गर्भ मे आना ही गर्भाधान सस्कार माना जाता है। वैदिक काल से पूर्व मध्यकाल तक इस सस्कार का महत्व रहा। धीरे-धीरे इस संस्कार का प्रचलन कम हो गया।

पुत्र की प्राप्ति के लिए गर्भ के तीसरे माह मे पुसवन सस्कार सम्पन्न किया जाता था। हिन्दू परिवारो मे उत्तराधिकार एव वशावली की प्रत्याशा मे पुत्र जन्म का अधिक महत्व था। पुत्र ही वश वृद्धि का द्योतक तथा श्राद्ध एव पिण्डदान मे सहायक था। अतः पुत्र पैदा होने में आने वाली विध्न-बाधाओं का नाश करने के लिए इस सस्कार को किया जाता था। धार्मिक महत्व के साथ इस सस्कार का आयुर्वेदिक महत्व भी था। गर्भ के चौथे माह में सीमान्तोन्नयन सस्कार होता था। इस सस्कार का उद्देश्य ये था, कि स्त्री स्वस्थ रहे तथा वीर पुत्र को जन्म दे सके।

हिन्दू समाज मे प्रचलित सोलह संस्कारो मे से कुछ का ही पालन हिन्दू समाज मे रहा जैस- जातकर्म, नामकरण, चूडाकरण, उपनयन, विवाह तथा मरणोपरान्त के कर्म अधिक महत्वपूर्ण होते है। महत्वपूर्ण सस्कारो मे जातकर्म सस्कार था बालक के ऊपर अनिष्टकारी शक्ति का प्रभाव न रहे इसलिए इस सस्कार को सम्पन्न किया जाता था। ये संस्कार बाह्मणो द्वारा सम्पन्न करवाया जाता था। पूजनोपरान्त दान देने का उल्लेख भी प्राप्त होता है, जिसमे धन व वस्तुओं के साथ गाय-दान महत्वपूर्ण होता था।

सस्कारो मे नाल काटने का सस्कार भी महत्वपूर्ण माना गया है। इसको सम्पन्न करने के लिए दाई अधिक 'नेग' मागा करती थी विशेषकर पुत्र जन्म के समय यह नेग अपने आप में ही ज्यादा देना पड़ता था।

हिन्दू समाज में पुत्र जन्म के अवसर पर खुशी-खुशी मगल गीत गाने का प्रचलन था। इस अवसर पर चौक पूरा जाता था तथा इस खुशी के मौके पर गाने

के साथ ही नाचने का भी प्रचलन था। पुत्र जन्म के अवसर पर हर्ष एव उल्लास के साथ नाच-गाकर खुशिया मनायी जाती थी तथा भोजनोत्सव का भी आयोजन होता था। पुत्र जन्म के शुभ अवसर पर अनेक प्रकार के आयोजन किये जाते थे। इसी अवसर पर बधाई दी जाती थी।

छठी पूजन एक विशेष सस्कार था जो कि सन्तानोत्पत्ति के छठवे दिन सम्पन्न किया जाता था। इसी दिन बच्चो को नहला-धुला कर साफ सुथरा किया जाता था तथा लोगो को इस शुभ अवसर पर आमन्त्रित करके भोजन कराया जाता था। पुत्रो के जन्म पर अधिक उल्लास का वातावरण रहता था। वैसे तो 'छठी पूजन' का महत्व जितना पुत्र जन्म के अवसर पर रहा करता था, उतना ही पुत्री के जन्म पर महत्वपूर्ण माना जाता था।

'छठी पूजन'' के साथ ही हिन्दु समाज मे 'बरही' नामक सस्कार का भी विशेष महत्व था। 'बरही' के शुभ अवसर पर विभिन्न धार्मिक सस्कार सम्पन्न होते थे, साथ ही खाने-पीने का आयोजन भी सम्पन्न होता था। 'छठी पूजन' के दौरान 'गौरी-गणेश' के पूजन का विशेष महत्व था। इस शुभ अवसर पर विभिन्न धार्मिक गीत गाये जाते थे, साथ ही ईश्वर की आरती करने के बाद बालक की भी आरती उतारी जाती थी। इस अवसर पर नाउन को नेग मिलता था। नाउन सभी के महावर लगाती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस शुभ अवसर पर बच्चे को उपहार में झूला दिया जाता था, या शिशु के लिए पालना बनवाया जाता था। इसके अनेक उल्लेख हमे मिलते है। शिशु को काजल और रोली लगायी जाती थी।

'बरही' के इस अवसर पर विधि-विधान से बच्चे को स्नान कराया जाता था तथा साथ ही साथ मगल गीत गाये जाने का भी प्रचलन था। इस कार्यक्रम का आयोजन रनिवास तक ही सीमित था। मगल गीत गाने के साथ बच्चे का न्योछावर भी किया जाता था। प्रचलित प्रथा के अनुसार बालक की जन्मपत्रिका अथवा

कुण्डली भी इसी दिन ब्राह्मणो से बनवायी जाती थी। जन्म समय देखकर भविष्य बताने का काफी प्रचलन था।

हिन्दू सस्कारो मे नामकरण सस्कार का भी विशेष महत्व था। इस सस्कार मे सन्तान को नाम प्रदान किया जाता था। नाम का हिन्दू धार्मिक दर्शन मे भी विशेष महत्व था। नाम ही शुभ कर्मो तथा भाग्य का आधार था।

संस्कारो मे वर्षगांठ का विशेष महत्व था, जो आज भी प्रचलित है। बालक के जन्म के एक वर्ष पूरा होने पर इस सस्कार को धूमधाम से मनाया जाता था। आज भी भारतीय सस्कृति तथा पाश्चात्य सस्कृति दोनो मे ही वर्षगाठ धूमधाम से मनायी जाती है।

सस्कारो मे विद्याध्ययन सस्कार का भी विशेष महत्व था। मान्यता के अनुसार पाच वर्ष की आयु के बाद बालक तथा बालिका को विद्याध्ययन के लिए विधिवत् विद्यार्थी के रूप में विद्यालय भेजा जाता था। विद्यारम्भ के लिए सामान्यतया कोई अवस्था निश्चित नहीं थी। बच्चे विशेष रूप से लिखना, पढ़ना, बोलना व्यवहारगत विधि-विधान से परिचित होने के साथ-साथ भाषा, साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, धर्म एव गणित का अध्ययन करते थे। जहा तक बालिका शिक्षा का प्रश्न है राजाओ के यहा की जो योग्य कन्यायें हुआ करती थी। उन्हे कामशास्त्र, छन्दशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र, पुराण धर्मशास्त्र, उपनिषद, तन्त्रविद्या, गणित, कल्पशास्त्र, सगीतशास्त्र तथा चित्रकला आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

उस समय के साहित्यो से इस बात की जानकारी प्राप्त होती है कि हिन्दू राजाओ ने अपनी पुत्रियो के सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षा की समुचित व्यवस्था की थी। उन्हे वेद, वेदाग, व्याकरण, ज्योतिष, कामशास्त्र, स्मृति, काव्य, धर्मशास्त्र,

दर्शन आदि की शिक्षा दी जाती थी। मानसिक तथा शारिरिक अथवा सैन्य शिक्षा सहगामी थी। प्राय: पाच वर्ष की आयु से ही राजाओ की पुत्रियो की शिक्षा व प्रशिक्षण प्रारम्भ होता था।

सस्कारो में विवाह सस्कार का भी प्रत्येक समाज मे विशेष महत्व था। व्यक्ति की नवीन सामाजिक, धार्मिक एव सास्कृतिक स्थिति विवाह के बाद ही प्रारम्भ होती है। एक नारी के जीवन की महत्वपूर्ण अवस्था ही विवाह सस्कार होता है।

विवाह शब्द के अनेक पर्याय है जैसे- उद्वाह, परिणय, उपनयन, पाणिग्रहण आदि। विवाह का सामान्य अर्थ या, विशिष्ट रूप से वहन करना अर्थात् विवाह मे वधू को विशेष रूप से पिता के घर से पति के घर मे ले जाना। विवाह का अभिप्राय है समाज द्वारा सन्तानोत्पत्ति के लिए स्थापित दाम्पत्य सम्बन्ध की स्वीकृत पद्वति /कन्यादान का समाज मे विशेष महत्व था।

विवाह सस्कार पद्वति मे समय-समय पर अनेक विधान प्राचीनतम काल से ही जुड़ते चले गये। जो आज भी समाज मे प्रचलन मे है।

मानव जीवन मे हिन्दू धर्म-दर्शन के अनुसार गृहस्थ आश्रम का विशेष महत्व था। हिन्दू दर्शन के अनुसार मनुष्य जब तक गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके सन्तानोत्पत्ति नही करता, वो पितृ ऋण से उऋण नही हो सकता था। इसलिए सन्तानोत्पत्ति के लिए गृहस्थाश्रम मे विधिवत् प्रवेश करना अनिवार्य है।

मानव जीवन मे विवाह का अत्यन्त महत्व था। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि वैवाहिक अनुष्ठानो के अन्तर्गत सर्वप्रथम कन्या विवाह मे उपयुक्त वर खोजने का विधान था। यथा सामर्थ्य धन-धान्य, फल-फूल मिठाई वगैरह 'वर' को प्रदान

कर कन्या के विवाह का प्रस्ताव रखा जाता था। बरीक्षा तथा तिलक भी विवाह के पूर्व होने वाली रस्म है। इसके बाद ही विवाह की तैयारी की जाती थी।

विवाह मे सबसे पहले वधू पक्ष के घर बरात लेकर आने के पहले वर-पक्ष के लिए जनवासे की व्यवस्था की जाती थी। जहा पर बारात ठहराने की व्यवस्था रहती थी। जनवासे मे खाने पीने की व्यवस्था रहती थी । कन्या के घर मे शुभ प्रतीक के रूप मे बदनवार लगाया जाता था। पाच व्यक्तियो के सहयोग से मण्डप की स्थापना की जाती थी, जिसके नीचे विवाह सम्पन्न होता था। साथ ही विवाहायोजन मे मगल-कलश की स्थापना भी शुभ मानी जाती थी। इस कलश को 'शुभ कलश' भी कहते थे। इसी के साथ मगल गान भी गाना शुरू हो जाता था। कन्या पक्ष द्वारा 'सुहाग' नामक गीत मुख्य होता था जो विवाह के समय गाया जाता था।

सर्वप्रथम विवाह मे वर-पक्ष का आगमन होता था, जिसे 'बारात' कहते थे। इनके स्वागत मे वधु पक्ष मगल गान करते थे। वेदी के निर्माण एवं हवन का भी महत्व था। वेदी के चारों ओर वर-पक्ष प्रदक्षिणा लेते थे, जिसे 'भावर' कहते थे। भावर के लिए पति-पत्नी के वस्त्रो को एक गाठ से जोड़ देते थे। भावर के बाद कन्यादान की रस्म मे वधू के माता-पिता मत्रोच्चारण के मध्य कन्या को वर को सौप देते थे। इस तरह हिन्दू विवाह सम्पन्न होता था। 'कन्यादान' का सामाजिक, सांस्कृतिक महत्व के साथ ही धार्मिक महत्व भी था। कन्यादान मुक्ति के मार्ग मे किये गये सत्कर्म के रूप मे उल्लेखित किया गया है।

विवाह मे दहेज देने का भी प्रचलन था। दहेज मे जडाऊ वस्त्र, स्वर्ण, चादी, माणिक्य, मुक्ता तथा साथ में नौकर, नौकरानी भी कन्या के साथ भेजे जाते थे। जिसकी जितनी सम्पन्नता एवं समृद्धि थी उसके द्वारा उतना ही दहेज लिया दिया जाता था।

हिन्दू सस्कारो मे 'गौना' एक महत्वपूर्ण रस्म थी जो विवाह के बाद सम्पन्न होती थी। कम उम्र मे विवाह होने पर कुछ वर्षो बाद ही 'गौना' होता था। 'गौना' ही वस्तुत· कन्या की विदाई होती थी। कन्या के गौने के लिए मुहूर्त आदि निकालने का उसी प्रकार का प्रावधान था, जैसे विवाह मे होता था। गौने के समय घर की बडी बूढी महिलाए कन्या को नये अथवा वैवाहिक जीवन के लिए शिक्षाए देती थी।

निष्कर्षत· हम कह सकते है कि कन्यादान, गौना, विदा की समस्त रीतियो के द्वारा ही विवाह सम्पन्न होता था।

मध्यकाल मे सती प्रथा अपने आप में सामाजिक कुरीति थी। विधवा स्त्री या तो सती हो जाती थी या जीवित रहकर कठोर सामाजिक नियमो का पालन करती थी। हिन्दू समाज मे स्वय को पति के शव के साथ प्रज्जवलित कर लेने की प्रथा अत्यन्त प्रचलित थी। ऐसा माना जाता था कि विवाहित स्त्री का जीवन पति की सेवा मात्र था उसके बिना स्त्री का जीवन अधूरा था, अतः सती प्रथा मध्ययुगीन पुरूष प्रधान समाज की कुप्रथा थी।

मध्यकालीन साहित्यिक उल्लेखों से स्पष्ट है कि, जब स्त्री सती होने जाती थी उस समय वह हाथ में सिघौरा (सिंदूर-पात्र) लिए होती थी, क्योकि वही सुहाग का प्रतीक होता था।

पति की मृत्यु हिन्दू स्त्री के जीवन की सबसे दुखद घटना मानी जाती थी। जो महिलाए सती नहीं होती थी, उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे माता-पिता के घर सादगी से जीवन व्यतीत करें। जो स्त्री स्वेच्छा से सती होना चाहती थी उन्हे रोका नही जाता था।

'जौहर प्रथा' नारी की प्रतिष्ठा का प्रतीक था। समकालीन साहित्यिक रचनाओ से हमे जौहर प्रथा के प्रचलन का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इसको स्त्रियो के शौर्य का प्रदर्शन माना जा सकता है। उनसे यह आशा थी कि मध्यकालीन युद्धपरक परिस्थितियो मे शत्रुओ के हाथ में पडकर अपनी अस्मिता की रक्षार्थ यही वीरता एव निडरता का उपाय अथवा विकल्प है। राजपूत युग के सामन्ती परिवेश की कुप्रथाओ मे एक 'जौहर प्रथा' भी थी, जिसके अनुसार जीवित महिलाए समूह मे अग्नि में आत्मदाह कर लेती थी, अथवा सहर्ष मृत्यु का वरण कर लेती थी। पुरूष पूर्ण वीरता से युद्ध मे लड़ता था और उस युद्ध का मूल्य, स्त्री समूह ''जौहर'' द्वारा अदा करती थी।

साहित्य एव कला में किसी भी युग की नारी की वेश-भूषा एंव आभूषण का जो वर्णन प्राप्त होता है उससे प्रत्येक वर्ग की नारी की सामाजिक स्थिति स्पष्ट हो जाती है। भारत मे विभिन्न ऋतुओ के अनुसार ही वस्त्र धारण किये जाते थे। साडी, चुनरी, लहंगा, चोली, कंचुकी या अगिया नामक वस्त्र इस युग की स्त्रियो मे विशेष लोकप्रिय वस्त्र थे। भारत के विभिन्न प्रदेशों मे पहनी जाने वाली साडी के विभिन्न रूपो का वर्णन भी इस युग के साहित्यिक ग्रन्थो मे मिलता है।

'सुरग पटोरी' का उल्लेख भी समकालीन साहित्य से प्राप्त होता है 'पटोरी' रेशमी कपडे से बनी एक साडी को कहा जाता था। सम्भवत. यह पटोर नामक वस्त्र से बनाया जाता था। इसी प्रकार 'विरोदक साडी' का उल्लेख भी हमे समकालीन साहित्य मे प्राप्त होता है।

सम्पन्न वर्ग की स्त्रियां मलमल या रेशम की साडिया पहनती थी। ये साड़िया महगी होती थी। अत: साधारण वर्ग इसे पहनने मे सक्षम नही था। साधारण वर्ग की स्त्रिया अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार साधारण कपड पहना

करती थी। महगे वस्त्रो के स्थान पर कुछ रगीन तथा कढ़े हुए कपडे पहन कर शौक पूरा किया जाता था।

खिरोदक नाम साड़ी का भी इस काल मे प्रचलन था। साडी के साथ-साथ कोछा या कछनी भी महिला पहनती थी। वक्ष-स्थल को ढकने के लिए स्त्रिया 'अगिया' या कचुकी धारण करती थी जिसे 'चोली' भी कहा जाता था।

फुंदिया, कसनिया, हटागी, चोली, इत्यादि शरीर के ऊपरी भाग मे धारण किये जाने वाले भारतीय स्त्रियों के प्रचलित परिधान थे। आन्तरिक वस्त्र के रूप मे स्त्रिया आगिया का प्रयोग करती थी इस युग मे लहगा तथा 'घाघरा' स्त्रियो मे अत्यन्त लोकप्रिय था। 'पटोर' लहगे का विवरण भी हमे विवेच्युगीन साहित्य से प्राप्त होता है। घाघरा विशेषत: मुस्लिम स्त्रियों मे अधिक प्रचलित था। महिलाए चुनरी का प्रयोग शरीर के उपरी भाग को ढ़कने के लिए करती थी। चीर (सूती कपडा) का भी पर्याप्त विवरण हमे समकालीन साहित्य से प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार तथा रंग के चमाऊ (चमडे के) जूते (पाई, पादत्री) पहनने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

अपने सौन्दर्य मे वृद्धि हेतु स्त्रियाा अनेक प्रकार के आभूषण धारण करती थी। सिर से पाव तक शरीर के प्रत्येक अंग को आभूषणो से सुसज्जि त करना स्त्रियो की सामान्य दुर्बलता थी। स्त्रियो की सौन्दर्य प्रियता प्राग्वैदिक काल से ही रही है। केवल वैधव्य की अवस्था में वह अपने आभूषणों को उतारती थी और सिर से सिन्दूर को मिटा देती थी।

स्त्रियो के विभिन्न आभूषणों का विस्तृत विवरण हमे मध्यकालीन इतिहासकारो व साहित्यकारो की कृतियो से प्राप्त होता है। शीश के आभूषणो मे मुकुट, जडाऊ, टीका, एव शीश फूल का भी विवरण मिलता है। शीशफूल

लोकप्रिय शीश आभूषण था। साथ ही बेदी का उल्लेख भी समकालीन हिन्दी साहित्य मे प्राप्त होता है। केश सज्जा हेतु महिलाए बालो को वेणी से सजाती थी। सिन्दूर की बिन्दी लगाने का प्रचलन था।

'कर्णफूल' कानो मे धारण किया जाता था। इसके अतिरिक्त 'खूट' का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कर्ण आभूषण के प्रति स्त्रियो मे विशेष रूचि थी। कुण्डल भी कानो मे पहनने का आभूषण था। राजकीय एव सम्पन्न वर्ग की महिलाए कानो मे स्वर्ण कुण्डल पहना करती थी। हीरे-जवाहारात से जड़े हुए कुण्डल के अनेक उल्लेख भी हमे प्राप्त होते है। इसके अतिरिक्त 'खुम्भी' नामक आभूषण कान मे पहना जाता था।

इस काल की स्त्रिया नाक को भी विविध प्रकार की कलात्मक आभूषणो से अलकृत करती थी। नकफूली, बेसर, बेसनी, नथ या नथिया इत्यादि नाक मे धारण करने वाले अलकारो का उल्लेख समकालीन साहित्य मे मिलता है ।

हार गले मे पहने जाने वाले आभूषणो मे प्रमुख था। मोतियो तथा स्वर्ण निर्मित हार वक्ष स्थल तक लटकता रहता था। अन्य ग्रीवा आभूषणो मे सिकड़ी हँसली , कंठसिरी, दुलरी, तिलरी, आदि का उल्लेख हमे समकालीन साहित्यो में प्राप्त होता है अत: इनका प्रयोग विवेच्यकाल मे होता था। सुहागिन स्त्रियाँ गले मे मगल सूत्र पहनती थीं ।

इस काल की स्त्रियाँ अपनी भुजाओ व हाथो को अलकृत करने हेतु विभिन्न प्रकार के हस्त अलंकारो का प्रयोग करती थी, जिनमे बाजूबद, अगद, केयूर, टाड या टड्डे आदि का विवरण समकालीन साहित्य मे उपलब्ध होता है। कलाई को सुशोभित करने वाले विविध अलकारो मे सलोनी नामक आभूषण का मध्ययुगीन साहित्य मे उल्लेख प्राप्त होता है। बाहुओ के अन्य आभूषणों में

बरया अथवा वलया तथा बाहूरखा अथवा बेरखा उल्लेखनीय है कलाई को सुशोभित करने वाले विविध अलंकारो मे ककण हथपूर, चूडे, चूडी, तथा वलय का उल्लेख मिलता है। ककण अथवा कगन कलाई पर धारण किया जाता था।

हथपूर से तात्पर्य पाँच जजीरो वाले उस वलय से है जो करमूल पर पहना जाता था। इसकी प्रत्येक जंजीर अगूठियो के साथ बधी होती है ।

विवेच्य युग मे दसो उगलियो मे अगूठी धारण करना वैभव व सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता था। उंगली के अन्य अलंकारो मे आरसी का उल्लेख प्राप्त होता है ।

स्त्रियो मे कटि प्रदेश को अलकृत करने वाले आभूषणो के प्रति विशेष आकषर्ण रहा है । कटि प्रदेश मे धारण किये जाने वाले अलकारो मे घुद्रघण्टी किनकिनी जैसे अलंकारो का वर्णन भी इस काल के साहित्य मे उपलब्ध है ।

पदाभूषणो मे पाजेब पायल नूपुर झाझर, घुघरू आदि स्त्रियो के अत्यन्त प्रचालित चरणाभूषण थे। चूडा पिण्डिलयो पर धारण किया जाता था, इसे पादचूडा भी कहा जाता था। अनवट तथा बिछुआ विवाहित महिलाओ के अत्यन्त लोकप्रिय आभूषण थे।

इस प्रकार अवलोकित काल की महिलाए शरीर के अन्य अंगो की भॉति अपने पैरो को भी विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य पदाभूषणो से अलकृत किया करती थी। जो इसकी सौन्दर्य प्रियता एव आभूषण प्रियता का परिचायक है।

इस प्रकार इस युग की स्त्रियॉ प्राय: सिर से पॉव तक कलात्मक आभूषण पहनती थी । श्रृगार एव सौन्दर्य प्रतीक होने के साथ ही विभिन्न आभूषण स्त्री के लिए सौभाग्य एवं सुहाग के द्योतक भी माने जाते रहे है निस्सदेह

दुर्भाग्य वश यदि वह विधवा हो जाती थी तभी वह अपने अलकारो का परित्याग करती थी।

सौन्दर्य तथा शारीरिक लावण्य मे वृद्धि हेतु स्त्रियाँ विभिन्न प्रसाधनो का प्रयोग सदैव से करती रही हैं। इस युग की स्त्रियाँ सोलह श्रृगार से भली भाँति परिचित थी ।

षोडस श्रृगार मे उबटन, सुगन्धित स्नान वेणी माग भरना कालज, बिन्दी तिल, मेहदी महावर, पुष्प माला तथा पान रचना सुन्दर वस्त्र विविध आभूषण व दर्पण की गणना भी होती थी। स्वय को आकर्षक बनाने के लिए स्त्रियाँ कुमकुम सुगन्धित कस्तूरी विलेपनो तथा चंदन लेप का प्रयोग करती थी। श्रृंगार सज्जा से पूर्व सुगन्धित पदार्थ जैसे भृगमद व कर्पूर आदि से जल को सुवासित कर स्नान किया जाता था।

उपर्युक्त विवेचनाओ द्वारा स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ अपने शारीरिक लावण्य तथा सौन्दर्य के प्रति जागृत थी।

केशों के सुरूचिपूर्ण विन्यास द्वारा सौन्दर्य मे वृद्धि करना स्त्रियो को सदैव से प्रिय रहा है। केश विन्यास की कला मे इस युग की स्त्रिया पर्याप्त निपुण थीं। धनिक वर्ग की स्त्रियो के केश दासियाँ प्रसाधित करती थीं । इन दासियो को समकालीन हिन्दी साहित्य मे केश कारिणी कहा गया है। केशो को विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पंदार्थो (अगरू चंदन तथा बेला चपा) से सुगन्धित कर कलात्मक ढग से गूँथकर सित्रया अपनी केश राशि की वेणियाँ बनाती थी।

केशों को पुष्पो से सुसज्जित किया जाता था तथा पुष्पों को आभूषणो की भाँति पहना जाता था हिन्दू विवाहित स्त्रियो मे माग मे सिन्दूर भरना अत्यन्त शुभ माना जाता रहा है अतः स्त्रियाँ अपनी माग सिदूर एव मोतियो से अलकृत

करती थीं बिन्दी अथवा तिलक कस्तूरी चदन एव कुमकुम आदि से अकित किया जाता था।

आलोच्यकाल मे नारियाँ अपनी ठोड़ी पर तिल बना कर अपने मुख की शोभा में वृद्धि करती थी। स्त्रियाँ अपनी सौन्दर्य वृद्धि हेतु नेत्रो एव भौहो मे शलाका द्वारा सुरमा और अजन अथवा काजल लगाया करती थीं।

अपने ओष्ठ को रगने के लिए स्त्रियाँ पान का प्रयोग करती थी साथ ही मोम और अलतक के प्रयोग का भी उल्लेख मिलता है। स्त्रियाँ हाथ पॉव को रजित कर ने के लिए मेहदी का प्रयोग करती थी पैरो एव ऐडियो के श्रृगार हेतु जावक, महावर तथा आलता आदि द्रव्यो का प्रयोग करने का प्रचलन था।

पूर्व मध्य युगीन साहित्यिक रचनाओ मे गणिकाओ की श्रृंगार विधियो का विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है।

इस प्रकार विवेचन से यह स्पष्ट है कि स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार के वस्त्र आभूषण श्रृंगार एव प्रसाधनो के प्रयोग द्वारा अपने प्राकृतिक सौन्दर्य को द्विगुणित करने का प्रयास करती थी ।

जहाँ तक विद्याध्ययन की बात आती है वैदिक युग से ही हम बालक बालिकाओं की शिक्षा मे समानता पाते हैं। स्त्री शिक्षा मे पर्दा प्रथा हिन्दू मुसलमान दोनो में बाधक रहा । मध्युगीन समृद्ध स्त्रिया निजी शिक्षको से शिक्षा प्राप्त करती थीं। कुलीन वर्ग में मुसलमान शासको के यहाँ स्त्री शिक्षा की स्वतंत्रता थी। कुछ विद्यालयो मे प्राथमिक स्तर तक सह शिक्षा भी थी। इस काल मे बालक बालिकाओ की शिक्षा मे अन्तर नहीं प्रतीत होता है ।

विद्यालयी शिक्षा के अतिरिक्त बालिकाअे को गृह विज्ञान की विशेष शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। कुलीन स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। योग्य

राजकन्याए वेद, कालशास्त्र, छन्दशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, दर्शनशास्त्र, तर्क शास्त्र, पुराण, धर्मशास्त्र, तन्त्र विद्या, गणित, उपनिषद, सगीत, शास्त्र, कल्प शास्त्र, चित्रकला, तन्त्र कला, गृह विज्ञान आदि की शिक्षा प्राप्त करती थीं । विश्व श्रेष्ठ विनय पाठ की विशेष शिक्षा हिन्दू बालिकाओं को दी जाती थी।

निरूपित काल की साक्षर हिन्दू नारियो मे लखीमा देवी, विश्वास देवी, चन्द्रकला आदि थी । तत्कालीन शिक्षित स्त्रियो मे सूर्यमती लीला वती, राणकदेवी, लल्श्वरी(लल्ले योगेश्वरी) आदि थी । स्त्री शिक्षा की ओर अग्रसर कुछ तुर्क आफगान कालीन शासक स्त्री शिक्षा के लिए जागरूक थे, इसलिए अनेको विद्यालयो का निर्माण करवाया सल्तनत काल में गियासुद्दीन खिलजी (1463–1500 ई) नारी शिक्षा के लिए जागरूक थे। स्त्रियो को कला व्यवसाय सगीत की शिक्षा दी जाती थी, स्त्रियो के लिए अलग से मदरसा बनाया गया था।

इल्तुतमिश की पटरानी शाह तुरकान को शासन व्यवस्था का अच्छी तरह से ज्ञान था। इसी प्रकार रजिया सुल्ताना एक योग्य पिता की पुत्री थी। वह युद्धकला मे प्रवीण योग्य शासिका विदुषी नारी, अश्वारोहण मे कुशल, अच्छी सैन्य सचालिका थी। इसी प्रकार अन्य विदुषी नारियों मे माहमालिका का नाम है इनके द्वारा लिखित लेख को ''राजकीय मोती'' की संज्ञा दी गयी है। मालिका जहाँ फिरोजा, खुदाबन्द, दिलदार गाचा आदि का नाम विदुषी नारियो मे था।

नारी शिक्षा उच्च वर्ग तक ही सीमित थी पर्दा प्रथा के कारण धीरे धीरे नारी शिक्षा का पतन होता गया। निम्न परिवार की स्त्रियो को शिक्षा का उचित अवसर प्राप्त नही होता था। इस प्रकार स्त्रियो का यह वर्ग शिक्षा प्राप्त नही कर सका ।

शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हिन्दू राजाओ ने भी अपने पुत्रो के लिए किया था। उन्हें वेद वेदाग व्याकरण, ज्योतिष, कामशास्त्र सगीत, स्मृति काव्य, धर्मशास्त्र दर्शनशास्त्र तथा मानसिक शिक्षा के साथ शारीरिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। राजपूत शासक पृथ्वीराज चौहान ने बहत्तर कलाओ की शिक्षा प्राप्त की ।

इस समय मानसिक तथा शारीरिक दोनों शिक्षाओ पर ध्यान दिया जाता था। शिक्षा मे अन्तर्गत पुराणो की व्याख्या, नाटयशास्द्ध , छन्दशास्त्र, अमर कोष अश्व विद्या, काम शास्त्र, चिकित्सा शास्त्र तथा संगीत आदि मे निपुण किया जाता था। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि निश्चित पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सुनियोजित शिक्षा का प्रबन्ध किया गया था। मदरसो, मकतबो के साथ साथ सूफी सन्तो को खानकाहो के विशेष उल्लेख मिलते हैं खानकाहों में धार्मिक अध्यात्मिक शिक्षा की प्रधानता थी।

हिन्दू समाज कई वर्गो मे बंटा था। प्रारम्भ से ही चार वर्ण थे। इनमे ब्राह्मणो को सर्वश्रेष्ठ माना गया। दूसरे स्थान पर क्षत्रियो को रखा गया । तीसरे स्थान पर वैश्य और चौथा स्थान शूद्रो का माना गया। इन चारो के अतिरिक्त जो थे उन्हे अन्तयज कहा गया । इनकी गणना किसी जाति में नहीं होती थी । इनमे धोबी, चमार, मदारी, डोम, तथा ढाल बनाने वाला, नाविक मछुआ व्याधा और बुनकर लोग आते थे।

आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता प्राप्त करने हेतु इस युग की स्त्रियाँ विभिन्न जीविका अपनाती थी। परिवार ही स्त्री के कार्य क्षेत्र का मुख्य बिन्दु रहा है । अपने परिवार को उन्नति के मार्ग पर ले जाने मे ही नारी अपने परिश्रम को सार्थक मानती है । गृहस्थ कार्यो के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे भी कार्य थे जिनके द्वारा महिलाए धनोपार्जन करती थी तथा अपने परिवार को आर्थिक सहायता

प्रदान करती थी । इसके अतिरिक्त धनार्जन करने वाली स्त्रियो मे गणिकाए , देवदासियाँ, वारागनाए, सेवावृत्ति में संलग्न दासिया ग्वालिन, नाउन, तथा वारवनिताओं का भी उल्लेख किया जा सकता है। सार्वजनिक भोजो त्योहारो तथा शादी मे वैश्याओ, नर्तकियो को बुलाया जाता था। इन्हे रंगी, गणिका, पातुर नर्तकी तथा वैश्या कहा जाता था। सगीत गणिकाओ का प्रधान व्यवसाय था मध्य काल मे गणिकाओ का आदर व सम्मान था।

मध्य युगीन सामन्ती परिवेश मे ईश्वर की पूजा आराधना उन्हें प्रसन्न रखने तथा देव मन्दिर को गुजायमान रखने के लिए मन्दिरों मे नर्तकियों का होना आवश्यक माना जाता था। इस विचार धारा के परिणाम स्वरूप देवदासी वर्ग की उत्पत्ति हुई। मध्यकाल की पेशेवर जातियों में ग्वालिन कहारिन, धोबिन, नाऊन, लकड़हारिन, घोसिन, कुजडी, कलवारिन, भटियारिन, मालिन, बेडिनी, परिहारिन, दूती आदि थी । मध्ययुगीन समाज मे स्त्रियो का एक वर्ग ऐसा था। जिनका कार्य था उच्च वर्गो की परिचर्या करना। राजपरिवारो और धनिको के वैभव वर्णन मे सहस्त्रो दासियो का उल्लेख मिलता है। रानियाँ सदैव दासियो से घिरी रहती थीं। सम्पत्ति के रूप मे दासियों का आदान प्रदान भी होता था। कन्या के दहेज में तथा हस्तगत सम्पत्ति में दासियाँ भी सम्मिलित होती थीं ।

गणिकाए सौन्दर्य, यौवन व कला कौशल द्वारा धनार्जन करने वाली स्त्रिया थी। विशिष्ट अवसर पर इनको बुलाया जाता था। ये अलग अलग मुहल्लो मे रहती थी ये अपने हाव भाव से लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती थीं। इनका सर्वप्रथम धर्म धनोपार्जन करना था समाज का कुछ वर्ग ऐसा भी था जो इनके पास जाकर इनके कार्य को प्रोत्साहित किया करता था। इसका मुख्य कारण लोगो का संगीत प्रेमी होना था।

उपर्युक्त विवेचनाओ से यह स्पष्ट है कि इस काल की नारी का अर्थोपार्जन में योगदान था तथा न सिर्फ वे अपने परिवार घर गृहस्थी अपितु अपने व्यवसाय के प्रति जागरूक रहती थीं। परिश्रम करके अपने परिवार की उन्नति मे सहायक होती थीं। इस काल के साहित्य से यह आभासित होता है कि इस युग मे स्त्रियो की स्वतत्रता पर किंचित प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे, किन्तु इनके आमोद प्रमोद तथा मनोरजन की पर्याप्त व्यवस्था थी। विभिन्न धार्मिक त्योहारो उत्सवो उद्यान क्रीडा, झूला नृत्य सगीत आदि मे स्त्रियाँ भाग लेती थीं। इस युग के साहित्यकारो ने साहित्य के माध्यम से स्त्रियो के आमोद प्रमोद मय जीवन की अभिव्यक्ति बडी सजीवता से की है। समीक्षाधीन अवधि में महिलाओ के मनोरजन एवं मनोविनोद के कई स्रोत थे । यह उल्लेखनीय है कि इनमे से कुछ तो अभी लोकप्रिय है, भले ही समय मे परिवर्तन के साथ साथ इनके स्वरूप मे कुछ परिवर्तन हो गया हो। इस युग के साहित्य मे धार्मिक त्योहारों, उत्सवो, उद्यान क्रीडा, झूला नृत्य संगीत आदि में महिलाओ के भाग लेने के विवरण प्राप्त होते हैं।

सामाजिक उत्सवों मे महिलाओ की स्थिति किंचित थी। हिन्दुओ के धार्मिक त्योहार संख्या में अनेक थे जो प्रायः सभी महत्वपूर्ण ऋतुओ में सम्पन्न होते थे इन धार्मिक त्योहारो के अवसर पर स्त्रियाँ विशेष रूचि प्रदर्शित करती थी। इस काल के साहित्यकारो ने हिन्दू त्योहारो का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है, इनके अनुसार हिन्दू त्योहार अधिकांश महिलाओ और बच्चो द्वारा मनाये जाते थे।

सबसे महत्वपूर्ण त्योहारों के रूप मे बसन्त पचमी, होली, तीज, दीपावली, गोवर्धन पूजा, एकादशी आदि का विस्तृत वर्णन इस युग के साहित्य मे उपलब्ध

होता है। बसन्त पचमी का त्योहार बसन्त ऋतु का पूर्व सूचक है जो माघ मास मे मनाया जाता है । इस अवसर पर बालिकाये व युवतिया और महिलाए अनेक प्रकार की उद्यान क्रीडा सलिल क्रीडा और कदुक क्रीड़ा आदि में भाग लिया करती थी। बसंत का विविध चित्रण सूरदास जी ने अपने साहित्य मे किया है।

बसन्त ऋतु में फूल पत्ती के लहराने से ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति अपने पूरे सोलह श्रृंगार मे है । इस अवसर पर महिलाए नृत्यगान, खेलकूद आदि का भरपूर आनन्द उठाती है।

इस दिन ऐसा लगता है कि मानो पूरे ससार की सजा हो। प्रकृति और संसार की सजावट के साथ महिलाए भी अपना श्रृगार करके पचमी की पूजा करती है ऐसी मान्यता थी कि इस पूजन से इच्छाओ की पूर्ति होती है। इस त्योहार को स्त्रियाँ विभिन्न प्रकार से मनाती थी जैसे - वाद्य यन्त्र के साथ नाच गाकर तालक रास चचरि नृत्य लकुट रास करके ।

होली, जैसा कि आज भी ये हिन्दुओ का सबसे महत्वपूर्ण और लोकप्रिय त्योहार है । यह प्रसिद्ध त्योहार बसन्त ऋतु मे ही पडता है। इस अवसर पर सभी वर्णो और वर्ग के लोग एक दूसरे को रग लगाते थे । यह त्योहार कृष्ण की गोपियो के साथ छेड छाड और होली का त्योहार माना जाता है। अबीर, कुमकुम गुलाल, चोबा एव चन्दन के साथ साथ पिचकारी से रग खेलने का व्यापक चित्रण मिलता है। इस अवसर पर गायन मे विशेष रूप से होली, धमार के गायन का उल्लेख मिलता है । ''मनोराझूमक'' नामक गीत भी गाया जाता था । इसी प्रकार टेसू से बने रगो से भी होली खेलने का उल्लेख मिलता है। चॉचरी नृत्य इस मौसम का विशेष नृत्य था। इस नृत्य को 'डाडिया रास' के नाम से भी जाना जाता है ।

इस प्रकार बसन्त ऋतु की तरह सावन, भादो तक एक उल्लासमय वातावरण बना रहता है । तीज सावन मे मनाया जाने वाला स्त्रियो का एक विशेष त्योहार था। स्त्रियाँ पूरे श्रृंगार के साथ अपने सुहाग की कामना करती थी। इसी प्रकार धार्मिक व्रतो में जैनियो और हिन्दुओ मे एक माह का व्रत करने का उल्लेख मिलता है।

दीपावली जिसे सामान्यत: दिवाली कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण हर्षोल्लास का पर्व है । यह दीप-मालाओ के प्रकाश का त्योहार है । रात मे चारो तरफ दीपों की रोशनी अत्यन्त मनोहर लगती है। स्त्रियाँ हर्ष से सज सवर कर नाचती गाती है । यह त्योहार कार्तिक मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है । इसी दिन स्त्रियो द्वारा 'मुनिवर पूजन' का भी उल्लेख हमे प्राप्त होता है ।

गोवर्धन पूजा का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इस अवसर पर अनेक प्रकार के अन्नो से पकवान बनाने के कारण इसे अन्नकूट भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त निर्जला एकादशी का व्रत भी स्त्रियाँ किया करती थीं ।

आमोद प्रमोद के सीमित साधन होने के कारण स्त्रियाँ प्रत्येक तीज त्योहारो पर श्रृगार करके एवं नाच गाकर अपना मनोरजन कर लिया करती थीं। इस काल के साहित्य मे वर्णित जल क्रीडा, लुका छिपी का खेल (चचरी), पौपड (चौसर या पचीसी) आदि इस युग के स्त्रियो के मनोरजन के अन्य लोकप्रिय माध्यम थे ।

मध्यकालीन साहित्यकार जायसी ने अपने साहित्य पद्मावत मे जल क्रीडा की चर्चा की है जिसमे पद्मावती अपनी सखियो के साथ जल मे क्रीडा करने जाती है । लुकाछिपी का खेल भी मध्यकालीन स्त्रियो के बीच प्रचलित था। इस खेल को चचरी भी कहा जाता था। अन्य प्रमुख खेलो मे चौपड का उल्लेख है। चौपड़ भारत मे खेला जाने वाला एक अत्यन्त प्राचीन खेल है। इस खेल को चौसर

या पचीसी भी कहते हैं। यह खेल हिन्दुओ मे और विशेष रूप से राजपूतो मे बहुत लोकप्रिय था। इस खेल का वर्णन जायसी ने अपनी प्रसिद्ध रचना पद्मावत मे किया है। इस खेल के वास्तविक स्वरूप को मध्यकालीन परिवेश मे डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने पद्मावत का टीका लिखते हुए उभारा है।

वर्तमान मे लोग पिकनिक मनाने के लिए घर से बाहर किसी रमणीक स्थान पर खेलकूद, नाच गाना, खाना पीना करते हैं। वैसे ही मध्य काल मे ऐसे अवसरो का लाभ उठाकर मनोविनोद किये जाने का हमे उल्लेख मिलता है। नदी तट पर जाकर ऐसे आयोजन किये जाते थे।

अन्य मनोरजन के साधनों में कठपुतली का नाच भी मनोविनोद का एक मुख्य साधन था। कहानी, नाटक कहने व खेलने का यह एक प्रचलित माध्यम था। महिलाओ के लिए नाच गाने और वाद्ययन्त्रो मे प्रशिक्षित प्रवीण होकर उनको बजाकर मनोरजन करने का उल्लेख प्राप्त होता है। नृत्य का अधिक महत्व था। वाद्ययन्त्रो मे ''सिगी'' का उल्लेख मिलता था। ''जंत्र'' भी एक प्रकार का यन्त्र होता था।

उपर्युक्त विवेचनाओं द्वारा यह स्पष्ट होता है कि इस काल मे समाज मे पर्दा प्रथा दृढ होने के कारण महिलाओ की स्वतत्रता पर प्रतिबन्ध लग चुके थे। किन्तु साहित्यिक उद्धरणो से यह जानकारी प्राप्त होती है कि इस काल मे महिलाओ की उन्नति का पूर्ण ध्यान रखा जाता था और साथ ही उनके आमोद प्रमोद एव मनोरजन की पर्याप्त व्यवस्था भी की जाती थी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्राथमिक स्त्रोत

अथर्ववेद	सम्पादक आर रौथ एव डब्ल्यू डी हिटने, बर्लिन 1856, सपादक श्रीपाद शर्मा, औंधनगर - 1938
बृहदाख्यक पुराण	सम्पादक - एच शास्त्री, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, 1891
चदायन	मौलाना दाऊद दलमई कृत, सम्पादक- डा0 परमेश्वरी लाल गुप्त, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, प्रथम सस्करण - 1964
चाँदायन	माता प्रसाद गुप्त, प्रकाशक राम जी गुप्त, प्रमाणिक प्रकाशन 35 लाजपत कुज, सिविल लाइन, आगरा
चाँदायन	सम्पादक डा0 विश्वनाथ प्रसाद, प्रकाशक क0 मू0 हिन्दी तथा भाषा विज्ञान, विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय
देवलरानी खिज्र खाँ	अमीर खुसरो कृत, अलीगढ - 1917

ढोला मारू रा दुहा — सम्पादक रामसिह सूर्चकरण पारेख एव नरोत्तम स्वामी, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, द्वितीय सस्करण सवत् - 2011, सारनाथ, वाराणसी 1936

हश्त -बहिश्त — अमीर खुसरो कृत, सम्पादक मौलाना सैयद सुलेमान अशरफ- अलीगढ 1918.

कीर्तिलता — विद्यापति ठाकुर कृत, सम्पादक वासुदेव शरण अग्रवाल, प्रकाशक- साहित्य सदन चिरगॉव (झासी) 1962

विद्यापति की पदावली — सम्पादक श्री बसन्त कुमार माथुर, प्रकाशक- भारतीय भाषा भवन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1952

लैला - मजनूॅ — अमीर खुसरो कृत, नवल किशोर प्रेस, तृतीय सस्करण, दिसम्बर- 1880

मतला-उल-अनवार — अमीर खुसरो कृत, दो भागो मे, लखनऊ- 1884, पुनः वही, प्रकाशक मुर्तजाबाई प्रेस, दिल्ली

पृथ्वी राज रासो — चन्दबरदाई कृत, चार भाग, सम्पादक कविराज मोहन सिह, साहित्य सस्थान विश्वविद्यापीठ उदयपुर, राजस्थान, विक्रम सवत् -2011-2012

विद्यापति की पदावली — विद्यापति ठाकुर, सम्पादक श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी, प्रकाशक- हिन्दी पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय प्रथम सस्करण - 1892, सम्पादक बसन्त कुमार माथुर, प्रकाशक- भारतीय भाषा भवन दिल्ली- 1952

सत कबीर — सम्पादक - डा0 रामकुमार वर्मा, प्रकाशक- साहित्य भवन (प्रा0) लि0, इलाहाबाद - 1966

कबीर ग्रन्थावली — सम्पादक माता प्रसाद गुप्त, प्रकाशक - साहित्य भवन (प्रा0) लि0, जीरो रोड, इलाहाबाद द्वितीय सस्करण, 1992

मृगावती — सम्पादक माता प्रसाद गुप्त, प्रकाशक रामजी गुप्त, प्रमाणिक प्रकाशन, 35, लाजपत कुज, सिविल लाइन्स, आगरा- 1968

मधुमालती	सम्पादक - डा0 शिव गोपाल मिश्र, प्रकाशक- हिन्दी प्रचारक प्रतिष्ठान, वाराणसी
मधुमालती	सम्पादक - डा0 माता प्रसाद गुप्त, प्रकाशक- मित्र प्रकाशन इलाहाबाद - 1961
सूरसागर	सम्पादक - नद दुलारे वाजपेयी, प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
सूरसागर सटीक	सम्पादक - हरदेववाहरी डा0 राजेन्द्र कुमार, लोकभारती प्रकाशन तृतीय स्कन्द
पदमावत	मलिक मुहम्मद जायसी कृत सम्पादक - वासुदेव शरण अग्रवाल प्रकाशक - साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)
जायसी ग्रन्थावलि	अखरावट एव आखिरी कलाम, सम्पादक - डा0 राम चन्द्र शुक्ल प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी- पंचम सस्करण सवत 2008

चित्ररेखा — मलिक मुहम्मद जायसी कृत, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी प्रथम सस्करण, अप्रैल 1959

लोर कहा — सम्पादक - डा0 माता प्रसाद गुप्त, प्रकाशक- प्र0क0मु0हिन्दी तथा भाषा विज्ञान, विद्यापीठ, आगरा वि0वि0

मीराबाई की पदावली — सम्पादक परशुराम चतुर्वेदी, प्रकाशक - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, एकादश सस्करण, शक् 1884

सहायक स्त्रोत - हिन्दी ग्रन्थ

मोतीचन्द्र — प्राचीन भारतीय वेशभूषा, भारती भण्डार, प्रयाग सवत् - 2007.

रिजवी सैयद अतहर अब्बास — आदि तुर्क कालीन भारत (1206 ई0 - 1290 ई0) हिस्ट्री डिपार्टमेन्ट अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़- 1956

डा0 किशोरी प्रसाद साहू — मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ पक्ष, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना - 1981

जयन्त कृष्ण दवे	गुजराती साहित्य का इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ0प्र0 लखनऊ
मनु शर्मा	राणा सागा हि0प्र0पु0 बनारस
गौरी शंकर हीरा चन्द्र ओझा	मध्यकालीन भारतीय सस्कृति, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद उत्तर प्रदेश, तृतीय सस्करण 1951
हरिश्चन्द्र वर्मा	मध्यकालीन भारत खड - 1 (750-1540) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय
पी0 एन0 चोपड़ा, बी0 एन0 पुरी, एम0 एन0 दास	भारत का सामाजिक, सास्कृतिक और आर्थिक इतिहास, भाग - 2 (मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड) प्र0 स0 1975
आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव	दिल्ली सल्तनत- 711 से 1526 प्रकाशक, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, अस्पताल मार्ग आगरा- 3

प्रारम्भिक मुस्लिम विद्वानों, विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त आदि

अबूरेहान अलबेरूनी	अलबेरूनी इडिया (दो भागो मे) अनुवाद - डा0 एडवर्ड सी सचाऊ, प्रकाशक एस0 चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली प्रथम भारतीय पुर्नमुद्रण 1964
इब्नबतूता	दि रेहला ऑफ इब्नबतूता, सटिप्पणी, अनुवादकर्ता, डा0 मेंहदी हुसैन, ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट बडोदा 1953
जियाउद्दीन बर्नी	तारीख -ए-फिरोजशाही, सम्पादक सैयद अहमद खॉ बिब इण्डिया, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगला, कलकत्ता, 1862
मुहम्मद कासिम हिन्दू बेग फरिश्ता	गुलशन-ए-इब्राहीमी उर्फ तारीख-ए-फरिश्ता (फारसी मूल ग्रन्थ, बम्बई 1832) पुन: जॉन ब्रिक्स द्वारा अग्रेजी अनुवाद हिस्ट्री ऑफ दि राइज ऑफ मुहम्मडेन पावर इन इण्डिया टिल द इयर 1612 (चार भागो मे) प्रकाशन आर0 कम्बो एण्ड कम्पनी कलकत्ता 1909-10

मुल्ला अब्दुल बकी नहबन्दी — मासीर-ए-रहीमी भाग एक सम्पादक शमशुल उल्मा, एम0 हिदायत हुसैन एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बगाल 1924

मिनहाज-उस-सिराज — तबकात-ए-नासीरी बिब इण्डिया, कलकत्ता 1864 पुन. वही अग्रेजी अनुवाद दो जिल्दो मे अनुवादक मेजर एच जी रेबल्टी, गिलवर्ड एव रिविगटन, लदन 1881

ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद — तबकाते-अकबरी भाग एक अनुवादक ब्रजेन्द्र नाथ डे, बिब इण्डिया, वर्क न0 225 प्रकाशक रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बेगाल, कलकत्ता 1927 तथा पुन: वही भाग 3 कलकत्ता 1939

सहायक स्रोत - अंग्रेजी

ए एस अल्तेकर — एजूकेशन इन एन्शियेन्ट इंडिया, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स बनारस, तृतीय सस्करण - 1948

ए एस अल्तेकर	राष्ट्र कूटाज एण्ड देयर टाइम्स पूना 1934
ए एस अल्तेकर	स्टेट एण्ड गवर्नमेन्ट इन एन्शियेन्ट इडिया, बनारस 1949
के एम अशरफ	लाइफ एण्ड कडीशन ऑफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान नई दिल्ली- 1959
एस पी गुप्ता	कास्ट्ययूम्स, टेक्सटाइल्स, कॉस्मेटिक्स एण्ड कॉफ्योर इन एन्शियेन्ट एण्ड मेडिवल इंडिया, दिल्ली - 1973
एस एम जाफर	एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया, प्रकाशक एन मुहम्मद सादिक खॉं, पेशावर- 1936
एस एम जाफर	सम कल्चरल आस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पेशावर 1939
एस एम जाफर	एम एम लॉ एन्शियेन्ट हिन्दू पॉलिटी (एन सी मेहता) इलाहाबाद मई 1928
के पी जायसवाल	हिन्दू पॉलिटी कलकत्ता 1924, द्वितीय संस्करण, बंगलोर 1943

ए बी कीथ	ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर, ऑक्सफोर्ड 1953
एफ ई की	इण्डियन एजूकेशन इन एन्शियेन्ट एण्ड लेटर टाइम्स, डॅडली ब्रदर्स, किग्सवे, लन्दन 1938
पी एन ओझा	नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ, दिल्ली 1975
जान एच पूल	फेमस वीमेन ऑफ इण्डिया, कलकत्ता 1954
ए राशिद	सोसाइटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, कलकत्ता 1969
डा आशीर्वादी लाल	मेडिवल इण्डियन कल्चर, प्रथम सस्करण,
श्रीवास्तव	शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा 1964
शकुन्तला राव शास्त्री	वुमैन इन सेक्रड लॉज, बम्बई 1953
बी ए स्मिथ	दि ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड द्वितीय सस्करण 1923

महदी हुसैन	दि तुगलक डाईनेस्टी, थाक्केर, स्पिंक एण्ड कम्पनी (प्रा) लि0, कलकत्ता 1963
आर के परम	ए हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन काश्मीर (1320-1819) पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लि0 दिल्ली अगस्त 1969
आर आर दिवाकर	बिहार थ्रू द एजेज, ऑरियन्ट लॉगमैन 1959

जर्नल तथा रिपोर्ट

अध्ययन, इलाहाबाद

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, काशी

शोध प्रबन्ध

डॉ0 हेरम्ब चतुर्वेदी — ''दि सोसाइटी ऑफ नार्थ इण्डिया इन द 16वी सेन्चुरी एज डिपिक्टेड थ्रू कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिटरेचर'', 1990, इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय, अप्रकाशित शोध ग्रन्थ

डॉ0 ऋतु जायसवाल — वूमेन्स पोजीशन एण्ड रोल इन नार्थ इण्डियन सोसाइटी फ्रॉम द 10 टू दि 13 सेन्चुरी एज डिपिक्टेड इन दि कन्टम्प्रेरी हिन्दी लिट्रेचर 1997, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पुस्तकालय अप्रकाशित शोध ग्रन्थ।